कृषि-कोष

प्रथम खण्ड

('अ' से 'घ' तक)



सम्पादक

डॉ० विश्वनाथप्रसाद

अनुसन्धान-सहायक

श्री श्रुतिदेव शास्त्री : श्री राधावल्लभ शर्मा

कृषिकोश

[भाषाविज्ञान के सिद्धान्तों के अनुसार बिहारी बोलियों के विविध क्षेत्रों से संगृहीत जन-समाज में प्रचलित कृषि-सम्बन्धी शब्दों का उनके स्थानीय तथा वैयुत्पत्तिक पर्याय-सहित प्रामाणिक सचित्र अभिधान]

प्रथम खण्ड

['अ' से 'घ' तक]

सम्पादक

डॉक्टर विश्वनाथ प्रसाद

अनुसन्धान-सहायक

श्रीश्रुतिदेवशास्त्री : श्रीराधावल्लभ शर्मा



बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्

पटना-४

प्रकाशक : बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्
आचार्य शिवपूजन सहाय मार्ग
सैदपुर, पटना - ८०० ००४

द्वितीय संस्करण : विक्रमाब्द २०५७, ई० सन् २००१

मूल्य : १२५.०० रुपये

मुद्रक : इन्द्रप्रस्थ इन्टरनेशनल
द्वारा तरुण प्रिन्टर्स, शाहदरा, दिल्ली-३२

द्वितीय संस्करण की भूमिका

किसी भी भाषा की जीवंतता उसके संवर्द्धनशील शब्दकोश की संपन्नता से निर्धारित होती है। इसके अनेक स्रोतों में सबसे प्रमुख स्रोत है आंचलिक शब्द-स्रोत।

यह सोचते हुए तकलीफ होती है कि शहरीकरण और प्रौद्योगिक विकास की अंधी दौड़ में अपनी-अपनी बोलियों से, अपने-अपने लोकगीतों और संस्कार-गीतों से हमारी नयी पीढ़ी का संपर्क टूट रहा है।

इसका जो दुखद परिणाम है वह है : हिंदीभाषा में आंचलिक शब्दों का अवरुद्ध प्रवाह, गत्यवरोध और इनके प्रति दयनीय उदासीनता।

ऐसी स्थिति में **कृषिकोश–** जैसे शब्दशोधक ग्रंथ का महत्त्व असंदिग्ध रूप से बढ़ जाता है। बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् ने सामूहिक प्रयास और कठिन परिश्रम से कृषिकोश तैयार करवाया था। बिहार की क्षेत्रीय बोलियों में कृषि-संस्कृति में प्रचलित (और अब लगभग विस्मृत) शब्दों का प्रस्तुत कोश परिषद् के शोधकार्यों में उल्लेखनीय माना जाता है।

कृषिकोश के दो खंड क्रमशः प्रकाशित किये गये थे। प्रस्तुत प्रथम खंड में 'अ' से 'घ' तक के शब्द गृहीत हुए हैं। वर्णमाला के शेष शब्द द्वितीय खंड में समाहित हैं।

आशा है, ग्रामीण अंचलों में प्रचलित शब्दों के अर्थ और तत्संबंधी विमर्श की जब भी अपेक्षा होगी, प्रस्तुत कोश निश्चिय ही उसमें सहायक होगा।

रामधारी सिंह दिवाकर
(निदेशक)

दीपोत्सव
विक्रम सं० २०५०
२६ अक्तूबर, २०००

वक्तव्य

बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद् के लोकभाषा-अनुसन्धान-विभाग द्वारा जो 'कृषिकोश' तैयार कराया जा रहा है, उसका यह पहला खण्ड हिन्दी-संसार के सामने उपस्थित है। मैथिली, मगही और भोजपुरी के क्षेत्रों से संगृहीत—'अ' से 'घ' तक के—शब्द इसमें हैं। उनके अर्थ, व्युत्पत्ति, पर्याय आदि के अतिरिक्त वस्तु-विशेष का बोध करानेवाले शब्दों से सम्बद्ध आवश्यक चित्र भी दिये गये हैं।

इस कृषिकोश के आगामी खण्ड भविष्य में क्रमशः निकलते जायेंगे। उनके निर्माण और सम्पादन में जो कठिनाइयाँ हैं, उन सबका अनुमान सम्पादकीय 'निवेदन' और 'प्रस्तावना' पढ़कर किया जा सकता है। तब भी दूसरा खण्ड, जिसमें 'च' से 'न' तक के शब्द होंगे, सम्पादित हो रहा है और आशा है कि अगले साल तक वह तैयार हो सकेगा। इस तरह का कोश बनाना बड़ा बीहड़ काम है, इसलिए सभी खण्डों के निकलने में काफी समय लगने की संभावना है।

इसमें तो केवल तीन ही क्षेत्रीय भाषाओं के शब्द हैं। वे भी सीमित जनपद से ही संकलित हैं। फिर भी, कई शब्द ऐसे सुघड़-सलोने दीख पड़े हैं, जो शिष्ट साहित्यिक भाषा में जड़े जाने योग्य हैं। यदि कृषिप्रधान भारतवर्ष की अन्यान्य क्षेत्रीय भाषाओं के भी कृषि-विषयक शब्दों के ऐसे कोश प्रकाशित हो जायें, तो साहित्य की शब्द-सम्पत्ति बहुत अधिक बढ़ जायगी। जब खेती के धन्धे की तरह दूसरे धन्धों के शब्द-कोश भी निकल जायेंगे, तब ऐसा प्रतीत होता है कि जनसाधारण के लिए तथाकथित आंचलिक भाषाओं में लिखे और छापे जानेवाले साहित्य—कविता, कहानी, उपन्यास, नाटक आदि—की नैसर्गिक शोभा निखर उठेगी।

लोक-भाषाओं का जो साहित्य लोक-कण्ठों में बसा हुआ है, उसका उद्धार और प्रचार भी धीरे-धीरे हो रहा है। पारखियों का ध्यान उनके शब्दों, मुहावरों, कहावतों, गीतों आदि की ओर तेजी से जा रहा है। साहित्यानुरागी पाठक भी लोक-साहित्य के गुणग्राही होते जा रहे हैं। यह शुभ लक्षण है।

विश्वविद्यालयों के साथ-साथ आकाशवाणी-केन्द्रों में भी लोक-भाषाओं को आदर मिल रहा है। साहित्य-संसार के विद्वान अनुसन्धायक उनपर शोध, विचार-विमर्श, आलोचन-विवेचन तथा ग्रन्थ-लेखन-कार्य बड़ी लगन से करने लगे हैं। सभा-सम्मेलनों और पत्र-पत्रिकाओं में भी उनकी महत्ता प्रकट हो रही है।

किन्तु, लोक-भाषाओं का महत्त्व वहीं तक मान्य होना चाहिए; जहाँतक वे जनसम्पर्क बढ़ाने, भारत की मौलिक लोक-संस्कृति की सुरक्षा, लोक-कलाओं के विकास और साहित्य को समृद्धिशाली बनाने में सहायक हों। पर यदि राजनीतिक स्वार्थ साधने के उद्देश्य से उनके प्रति अवांछनीय आग्रह दिखाया जायगा, तो देश के खण्ड-खण्ड हो जाने की आशंका है। भाषाधार-प्रान्त-निर्माण का दुष्परिणाम प्रकट हो चुका है। पुनः लोक-भाषाओं के आधार पर टुकड़ों में बँटनेवाले देश की कल्पना अतिशय भयावह है।

यह बात जानकार विद्वानों को मालूम है कि अखिलभारतीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के एक चिरस्मरणीय सभापति ने डॉक्टर ग्रियर्सन को पत्र लिखकर उनसे पूछा था कि आपने भारत में तो २४४ भाषाएँ खोज निकालीं, पर यह बताइए कि आपके योरप और ब्रिटेन में कितनी भाषाएँ हैं। इस जिज्ञासा को डॉक्टर ग्रियर्सन ने केवल खेद-प्रकाश द्वारा ही शान्त किया था। तब निष्कर्ष यह निकाला गया कि उन्हें अपने देश में बन्दर-बाँट-नीति बरतना अभीष्ट नहीं था। किन्तु भारत में भाषाओं और धार्मिक सम्प्रदायों अथवा मतमतान्तरों का संख्या-बाहुल्य सारे संसार को दिखाने में चाहे उनका जो भी उद्देश्य निहित रहा हो, यह तो मानना ही पड़ता है कि अँगरेजी लिखे-पढ़े भारतवासियों में लोकभाषाओं के अध्ययन-अनुशीलन का अनुराग उत्पन्न करने का श्रेय योरप के कतिपय विद्वानों को ही है, जिसके लिए उपकृत भारतवासी आज भी उनका सादर स्मरण करते हैं।

भारत-संघ के सभी राज्यों में लोक-भाषाएँ हैं। सबके बिखरे साहित्य का संग्रह और अध्ययन होना चाहिए। इससे प्रान्तीय राजभाषाएँ तुष्ट-पुष्ट होंगी और आदान-प्रदान के चक्र-प्रवर्त्तनानुसार उनसे राष्ट्रभाषा हिन्दी भी रस-सञ्चय करके लाभान्वित होगी। यहाँ एक बात और भी विद्वानों के लिए विचारणीय है। प्रान्तीय स्वतंत्रता के संरक्षण की दृष्टि से संविधान-स्वीकृत राजभाषाओं को शिक्षा अथवा राजकाज का माध्यम बनाना समीचीन समझा जा सकता है, पर मातृभाषा की परिभाषा को अतीव संकीर्ण करके लोक-भाषाओं का प्रयोग राजभाषा के रूप में करना राष्ट्र की संघ-शक्ति को छिन्न-भिन्न कर डालने के समान है। राष्ट्रीय एकता को अखण्ड रखने के विचार से सावधान रहते हुए लोक-भाषाओं को उचित उत्तेजन अवश्य मिलना चाहिए।

अस्तु; इस कोश के प्रस्तुत प्रथम खण्ड के सुयोग्य सम्पादक डॉक्टर विश्वनाथप्रसाद सारन-जिले के छपरा-नगर-निवासी और हिन्दी-संसार के भाषाविज्ञान-शास्त्रियों में परम प्रसिद्ध हैं। आप संस्कृत के साहित्याचार्य और हिन्दी के साहित्यरत्न, संस्कृत और हिन्दी के एम्० ए० तथा बी० एल्० हैं। लन्दन-विश्वविद्यालय से आपने पी-एच्० डी० की उपाधि पाई है। सन् १९५५-५६ ई० में आप डेकन-कॉलेज (पूना) के पोस्ट ग्रैजुएट ऐण्ड रिसर्च इंस्टिच्यूट (राकफेलर फाउण्डेशन, यू० एस्० ए०) में लिंग्विस्टिक्स के प्रथम विजिटिङ्ग प्रोफेसर थे। आप पटना-विश्वविद्यालय में हिन्दी-विभागाध्यक्ष हैं, पर इस समय अवकाश लेकर आगरा-विश्वविद्यालय में के० एम्० मुन्शी इंस्टिच्यूट ऑफ हिन्दी स्टडीज ऐण्ड लिंग्विस्टिक्स के डाइरेक्टर पद पर आसीन तथा उसके त्रैमासिक मुखपत्र 'भारतीय

साहित्य' के प्रधान सम्पादक भी हैं। आपके द्वारा सम्पादित 'भोजपुरी कवि और काव्य' नामक पुस्तक गत वर्ष परिषद् से ही प्रकाशित हो चुकी है। जब आप परिषद् के लोक-भाषा अनुसन्धान-विभाग के अध्यक्ष थे, तब आपके ही तत्त्वावधान में मगही-संस्कार-गीतों का एक सटीक संग्रह-ग्रन्थ तैयार हुआ था। आपके द्वारा सम्पादित उस ग्रन्थ का प्रकाशन निकट भविष्य में ही होनेवाला है। आपको इस कोश के सम्पादन-कार्य में अपने जिन अनुसन्धान-सहायकों का सहयोग प्राप्त हुआ है, उनकी योग्यता आदि के विषय में आप स्वयं लिख चुके हैं। उनमें श्रीश्रुतिदेव शास्त्री भागलपुर-जिले और श्रीराधावल्लभ शर्मा चम्पारन-जिले के निवासी हैं।

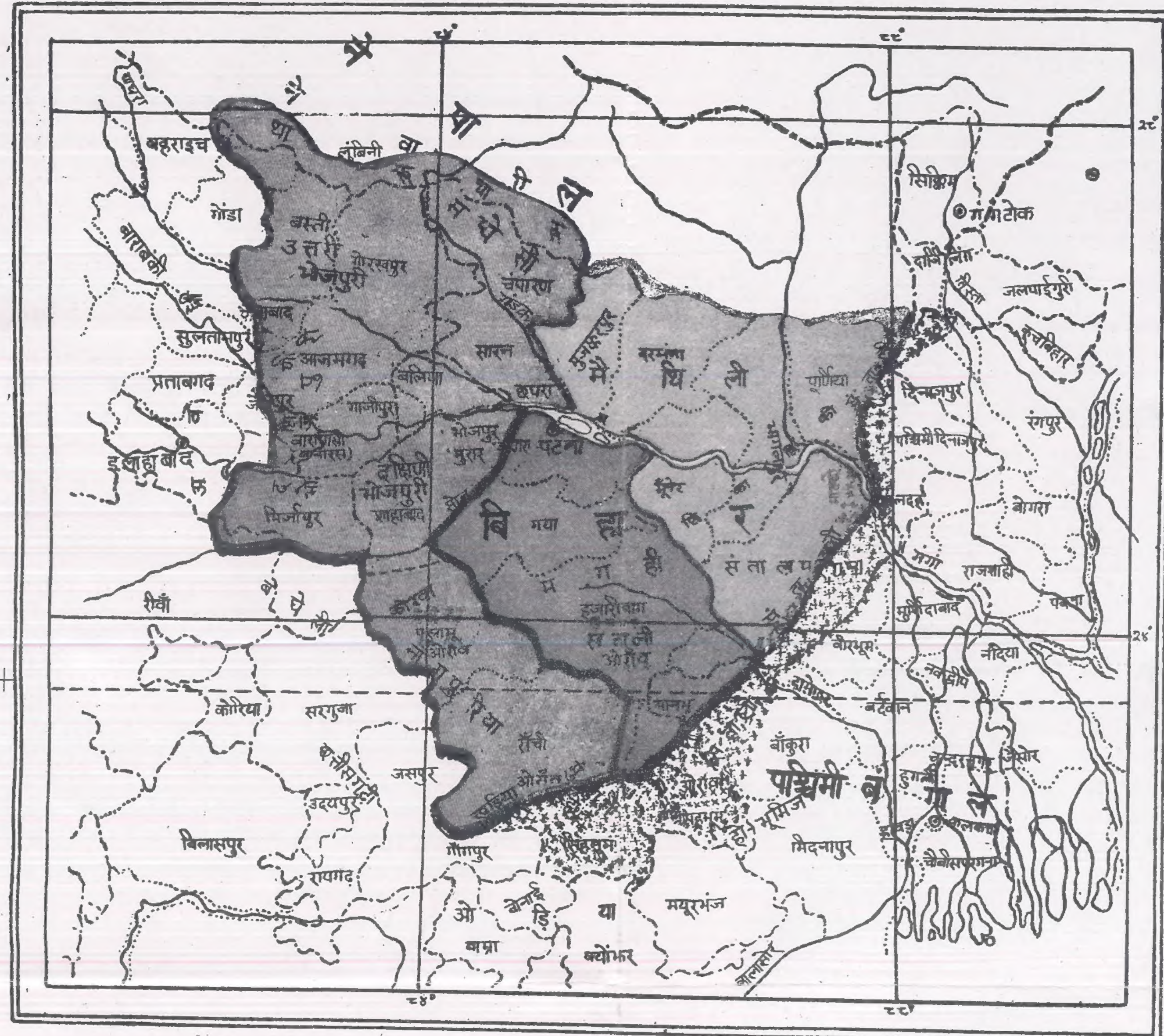
आशा है कि यह कोश लोकभाषाओं के गुणज्ञों को प्रचुर प्रेरणा और प्रोत्साहन प्रदान करेगा। साथ ही, हमें यह भी आशा है कि साहित्य के अभ्युदय की आकांक्षा रखनेवाले सुधी सज्जन इस प्रथम प्रयास की त्रुटियों से हमें अवगत कराके अपनी स्वाभाविक सहृदयता का परिचय देने की कृपा करेंगे।

श्रीरामनवमी, शकाब्द १८८१
सन् १९५९ ई०

शिवपूजनसहाय
(संचालक)

बिहार की अन्य बोलियों के साथ-साथ भोजपुरी के क्षेत्र, सीमा तथा उसके विविध भेदों का मानचित्र

माप - एक इंच = ७० मील



निवेदन

बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद् के जन्म के तीन-चार साल पहले ही मेरे मन में यह विचार उठा था कि इस प्रकार का एक प्रामाणिक पारिभाषिक कोश तैयार हो, जिसमें जन-समाज में प्रचलित विभिन्न व्यवसायों के सजीव शब्दों का वैज्ञानिक ढंग से संग्रह हो; क्योंकि मेरी यह निश्चित धारणा रही है कि हमारी पारिभाषिक शब्दावली के अभाव को केवल अँगरेजी के उधार या अनुवाद से नहीं भरा जा सकता, वरन् यह दारिद्र्य तो दूर हो सकता है—हमारी अपनी ही चिरसंचित शब्द-संपत्ति से, जो हमारी जनपदीय बोलियों में खोई-खोई-सी पड़ी हुई है। उसका उद्धार करके उसमें नई प्राण-शक्ति भरी जा सकती है, जिससे वह एक विस्तीर्ण धरातल पर हमारी आवश्यकता की पूर्ति कर सके। उस समय उस विचार को क्रियान्वित करने के लिए मैंने जो एक छोटी-सी योजना बनाई थी, उसमें मुझे विशेष प्रेरणा दो हितचिन्तकों से मिली थी—एक तो पूज्यचरण आचार्य श्रीबदरीनाथ वर्मा से और दूसरे स्वर्गीय श्रीरामधारी प्रसाद से। इनके अतिरिक्त इस कार्य में मुझे पुनः प्रवृत्त करने में बिहार के चिरस्मरणीय शिक्षा-सचिव श्रीजगदीशचन्द्र माथुर, आई० सी० एस्० का, जो इस समय आकाशवाणी के डाइरेक्टर जनरल हैं, विशेष हाथ था। आप सबके प्रति परम श्रद्धापूर्वक कृतज्ञता व्यक्त करना मैं अपना कर्त्तव्य समझता हूँ।

जब से मैंने यह कार्य प्रारंभ किया, तब से मेरी प्रेरणा के स्रोतों में प्रमुख स्थान रहा है, बिहार राष्ट्रभाषा-परिषद् के सुयोग्य संचालक श्रीशिवपूजनसहायजी का। उनका विशेष सहयोग और साहाय्य न मिला होता, तो इसमें पग-पग करके आगे बढ़ना और आज इस स्थिति में पहुँचना कि इसका प्रकाशन हो सके, मेरे लिए कदापि संभव न होता। इसके संपादन में मुझे अपने आदरणीय श्रीलक्ष्मीनारायण 'सुधांशु' और श्रीरामधारी सिंह 'दिनकर' से भी पर्याप्त बल और सहायताएँ मिलती रही हैं। उनके सुझावों से हमने बहुत लाभ उठाया है। इनके अतिरिक्त परिषद् के वर्त्तमान अध्यक्ष श्रद्धेय कुमार गंगानंद सिंह, श्रीराजा राधिकारमणप्रसाद सिंह, बन्धुवर श्रीरामवृक्ष बेनीपुरी, विद्वद्वर श्रीराहुल सांकृत्यायन, डॉ० कामिल बुल्के, पं० छविनाथ पाण्डेय प्रभृति महानुभावों से हमें जो बहुमूल्य प्रोत्साहन और समर्थन प्राप्त होता रहा है, उसके लिए आप सबके प्रति सादर आभार प्रकट करना मेरा कर्त्तव्य है।

परिषद् के प्रकाशन-विभाग का भी जो सक्रिय सहयोग हमें मिलता रहा है, उसके लिए श्रीअनूपलाल मण्डल और श्रीहलधर त्रिपाठी 'सहृदय' को मेरे हार्दिक धन्यवाद हैं।

परन्तु उन्हें किन शब्दों में धन्यवाद दूँ, जो मेरे दायें-बायें हाथ की तरह प्रारंभ से अबतक अनवरत मेरे साथ इस काम में लगे रहे हैं। क्या उनके बिना यह कार्य इस रूप में संभव हो सकता था! मैं यहाँ अपने कार्य के अभिन्न अंग श्रीश्रुतिदेवशास्त्री (पालि-साहित्याचार्य, न्यायाचार्य, व्याकरण शास्त्री, प्रभाकर, पूना स्कूल ऑफ लिंग्विस्टिक्स द्वारा प्रशिक्षित तथा श्री राधावल्लभशर्मा साहित्यालंकार, पूना स्कूल ऑफलिंग्विस्टिक्स द्वारा प्रशिक्षित का उल्लेख कर रहा हूँ। कितनी लगन से आप दोनों ने मेरे साथ इस कार्य को आरंभ किया था! मेरे स्नातकोत्तर कक्षा के अन्य छात्रों तथा अनुसंधित्सु विद्यार्थियों की ही तरह सदा मेरे साथ कोश-विज्ञान के इस नये विषय के अध्ययन तथा ज्ञानार्जन में तत्पर, सदा इस लोक-विद्या के अध्यवसाय में निरत, सदा मेरे निर्देशों के यथावत् पालन में तन्मय भाव से लीन आप दोनों की प्रशंसनीय प्रगति का पता मुझसे अधिक और किसको होगा! इस कार्य में श्रुतिदेवजी का विशेष क्षेत्र था—व्युत्पत्ति निर्वचन और राधावल्लभजी का क्षेत्रीय संग्रह का परीक्षण। हमें अभी कृषि-कोश के दूसरे और तीसरे खंडों को भी, जो प्रायः समाप्तप्राय हैं, अविलम्ब प्रकाशित करना है। आप दोनों की दक्षता और कार्य-तत्परता का हमें पूरा भरोसा है और आशा है कि आप सफलता के साथ इस कार्य के संपादन में दत्तचित्त रहेंगे।

इस कोश-कार्य में अपने सभी सहायकों का उल्लेख करना मैं यहाँ आवश्यक समझता हूँ :—

सहायक

अनुसन्धान और सम्पादन

१. श्रीश्रुतिदेव शास्त्री
२. श्रीराधावल्लभ शर्मा
३. श्रीविक्रमादित्य मिश्र

संग्रह

१. श्रीगणेश चौबे—आप चंपारन जिले के निवासी हैं। आप लोक-साहित्य के अच्छे विद्वान् हैं और 'इंडियन फोकलोर' (कलकत्ता) के संपादक-मण्डल में इस क्षेत्र के प्रतिनिधि भी हैं। आप बहुत दिनों से बिहारी लोक-साहित्य पर कार्य कर रहे हैं। इस कार्य में हमें आपसे सभी तरह की बहुमूल्य सहायता मिली है। लोक-साहित्य के संग्रह आदि में आप सदा सहर्ष सहायता देने को प्रस्तुत रहते हैं।

२. श्रीश्रीकांत शास्त्री—एकंगरसराय (पूर्वी पटना) के रहनेवाले विद्वान् हैं और सदा जागरूक रहकर मगही-साहित्य के उत्थान में तत्पर रहते हैं। आपने लोक-भाषा और लोक-साहित्य के विविध अंगों का संग्रह करके परिषद् को दिया है और हमारी सहायता की है। आप सदा हमारा हाथ बँटाते रहे हैं।

३. श्रीसुरेश्वर पाठक—आप दक्षिणी मुँगेर के निवासी हैं और आजकल यहीं पटना में वयस्क-शिक्षा-विभाग में अधिकारी हैं। आप हिन्दी के प्रसिद्ध लेखक हैं। आपने दक्षिणी मुँगेर के शब्दों, कहावतों आदि का संग्रह करके परिषद् को दिया है। आप से हमें बराबर उचित सहायता मिलती रही है।

आप तीनों हमारे विशिष्ट सहायक हैं। इनके अतिरिक्त उपर्युक्त सभी व्यक्तियों ने हमें यथासमय पूर्ण सहयोग दिया है। हम आप सबके आभारी हैं। इनमें से श्रीविद्यानन्द सिंह, श्रीहरिप्रकाश, श्रीकृष्णदेव, श्रीविक्रमादित्य मिश्र एम० ए०, श्रीपंचानन चौधरी, श्रीशिवकुमार वर्मा, श्रीराजेश्वर प्रसाद ने अपने-अपने क्षेत्रों से शब्दों, कहावतों आदि का संग्रह कर प्रदान किया है और इस प्रकार हमें बहुत सहायता दी है।

श्रीरामाधार शर्मा, श्रीरामस्वरूप चौधरी, श्रीवाल्मीकि प्रसाद सिंह एम० ए०, श्रीमुसाई झा आदि ने शब्दों की जाँच-पड़ताल में यथासमय यथा-स्थान उपस्थित होकर हमें यथोचित सहयोग दिया है और अपने-अपने क्षेत्र के तत्तत् पर्यायों को समझने-बूझने में तथा निरीक्षण-परीक्षण में हमारी सहायता की है।

संग्रह-कार्य के प्रथम वर्ष में परिषद् द्वारा नियुक्त जो चार क्षेत्रीय कार्यकर्ता वैतनिक रूप में संग्रह-कार्य करते थे, उनका विवरण निम्नांकित है—

श्रीजयानन्द झा—ये दक्षिणी पूर्णियाँ के निवासी हैं। इन्होंने दरभंगा जिले के मधुबनी, सदर सबडिविजन और द० पूर्णिया से शब्द संगृहीत करके दिये थे। कोश में इनके कार्य-क्षेत्र का संकेत-चिह्न दर०—१, पूर्णि०—१ है।

श्रीअवधेन्द्रदेव नारायण—ये छपरा नगर के निवासी हैं। इन्होंने सारन जिले भर में घूम-घूमकर शब्दों का संग्रह करके दिया था। कोश में इनका संकेत सा०—१ है।

श्रीहृदयनारायण मंडल—ये संतालपरगने के रहनेवाले हैं। इन्होंने संतालपरगने की संताली भाषा के शब्द-संग्रह करके दिये थे। किन्तु इनके शब्दों का उपयोग संताली-कोश के लिए होगा, इसलिए इस कोश में इनका उल्लेख नहीं है।

श्रीजावालिदेव—ये पटना सिटी के निवासी हैं। इन्होंने बहुत थोड़े दिनोंतक कार्य किया। आप पारिभाषिक शब्दों के बजाय सामान्य शब्दों का ही थोड़ा संग्रह कर सके थे। इसलिए इनके शब्दों का भी उपयोग इस कोश में नहीं हुआ है।

आप सभी सहयोगियों का हम आभार स्वीकार करते हैं।

बिहार के विभिन्न भागों के निवासी जिन भाइयों और बहनों के मुँह से इस कोश

के शब्द संग्रहीत किये गये हैं, उनकी सूची देने में तो कई पृष्ठ लग जायेंगे, परन्तु इस प्रसंग में उनको भी कृतज्ञता-पूर्वक स्मरण किये बिना हम नहीं रह सकते।

कोश-कार्य व्यावहारिक भाषाविज्ञान का एक जटिल विषय है; बहुत ही श्रमसाध्य, समयसाध्य और व्ययसाध्य। अँगरेजी, हिन्दी अथवा अन्य भाषाओं के कोश-ग्रंथों के संपादन और संग्रह का इतिहास बतलाता है कि कोश-जैसे महत्त्वपूर्ण आकर-ग्रंथों के सम्यक् सम्पादन के लिए पर्याप्त समय और साधन की आवश्यकता होती है। अँगरेजी की 'वेब्स्टर न्यू इंटरनेशनल डिक्शनरी' के प्रथम संस्करण के प्रकाशन में पूरे १०२ वर्षों का समय लगा था। १८०७ ई० में नोआ वेब्स्टर ने इसका कार्यारंभ किया था और २१ वर्षों के परिश्रम के बाद उन्होंने जॉनसन की डिक्शनरी से केवल १२,००० शब्द और बढ़ाकर उसके मूल रूप को १८२८ ई० में पूरा और प्रकाशित किया। इसके बाद क्रमशः परिवर्द्धन प्राप्त करता हुआ वह अपने बृहत् रूप में आया। इसी प्रकार प्रसिद्ध ऑक्सफोर्ड डिक्शनरी की योजना का श्रीगणेश 'फिलालॉजिकल सोसाइटी ऑफ ग्रेट ब्रिटेन' की ओर से १८५७ ई० में हुआ और उसका कार्य ७६ वर्षों के बाद सन् १९३३ ई० में समाप्त हुआ। इस बीच में उसके एक सम्पादक के जीवन-काल के बाद दूसरे ने और दूसरे के जीवन-काल के बाद तीसरे ने इस कार्य के दायित्व को सँभाला। इन्हीं तीसरे और उनके साथ एक चौथे सम्पादक के कार्य-काल में उसका प्रथम संस्करण प्रकाशित हुआ। कई वर्षों तक उसके सम्पादन के लिए चार सम्पादक नियुक्त थे। इसके अतिरिक्त उनके कई सहायक सम्पादक थे, जो पचास वर्षों से भी अधिक काल तक इस कार्य में लगे रहे। प्रारंभ में संग्रह के लिए १०० संग्रहकर्त्ता नियुक्त थे, जो अंगरेजी साहित्य के विविध क्षेत्रों से शब्दों, मुहावरों आदि का संग्रह करते थे और इनके अतिरिक्त ८०० ऐसे पाठक थे, जो स्वयं-सेवा-भाव से साहित्य के विभिन्न अंगों के ग्रंथों को पढ़कर उनमें से उपयुक्त सामग्री का संकलन करके सोसाइटी के पास भेजा करते थे। तब कहीं अँगरेजी का ऐसा प्रामाणिक कोश तैयार हो सका।

अपने देश में भी नागरी-प्रचारिणी सभा, काशी से हिन्दी शब्द-सागर लगातार एक दशक तक कार्य होते रहने के पश्चात् ही खंडशः प्रकाशित होने लगा था और इसके बाद भी लगभग बीस वर्षों में (१९१० से १९२९ तक) उसका सम्पादन और प्रकाशन पूरा हुआ।

पूना में संस्कृत-कोश के संग्रह-सम्पादन का कार्य सन् १९४८ ई० में प्रारंभ हुआ। इस समय इस कार्य में लगभग पचास सुयोग्य कार्यकर्ता लगे हुए हैं। कोश-सम्बन्धी पर्याप्त सामग्री वहाँ सुलभ है, लगभग एक लाख रुपया प्रतिवर्ष उसपर खर्च किया जा रहा है। पर यह सब होते हुए भी अभी तक उसका कोई खंड प्रकाशित नहीं हो सका है।

कोश के कार्य में सबसे बड़ी कठिनाई यह है कि जब तक योजनानुसार सभी उपलब्ध शब्दों का संग्रह न हो जाय और फिर सभी अपेक्षित दृष्टियों से उनके यथावत्

अध्ययन और विश्लेषण का कार्य पूरा न हो जाय, तबतक प्रकाशन प्रारंभ करने का खयाल नहीं किया जा सकता। ऐसा नहीं है कि एक ओर संग्रह और अध्ययन-अनुशीलन का कार्य भी चलता रहे और दूसरी ओर वर्णानुक्रम या किसी और ही क्रम से एक-एक अंश का प्रकाशन भी होता रहे। अतएव, किसी संहत कोश के प्रकाशन में विलंब होना अपरिहार्य है।

ऊपर जिन दो-एक उदाहरणीय कोशों का उल्लेख किया गया है, उन सबका आधार लिखित और उपलब्ध साहित्य है, जब कि हमारा यह कृषि-कोश अलिखित और दुरुपलभ्य सामग्री पर आधारित है। कोशविज्ञान की नई पद्धति के अनुसार ठेठ ग्रामीण समाज के शब्दों को इकट्ठा करके उन्हें ध्वनि, अर्थ और प्रयोग की दृष्टि से विविध प्रकार से जाँचकर हमें संकलन करना पड़ा है। शहर से दूर, गाँवों के भिन्न-भिन्न पेशों में लगे हुए कामकाजी स्त्री-पुरुषों के काम-धाम के स्थलों पर स्वयं जाकर या अपने प्रशिक्षित कार्यकर्त्ताओं को भेजकर उनसे नियमानुसार पूछ-ताछ, जाँच-पड़ताल करके उनके कार्यकलाप-सम्बन्धी शब्दों का संग्रह, अर्थ-निर्धारण तथा प्रयोगादि की जानकारी हासिल करनी पड़ी है।

इसका प्रत्येक शब्द विभिन्न बोलियों के बोलनेवाले विभिन्न वृत्तियों के लोगों के मुँह से प्राप्त किया गया है। यह कार्य कितना कठिन है, यह वे ही जान सकते हैं, जो इस दिशा में कुछ काम करके भुक्तभोगी बन चुके हैं। पहले तो उपयुक्त व्यक्ति ही विरले मिलते हैं जो प्रश्नों के ठीक-ठीक उत्तर दे सकें। पेशे के काम-धाम में लगे हुए श्रमजीवी व्यक्ति को इतनी फुरसत भी कहाँ कि वह सब-कुछ छोड़कर घंटों बैठे, हमारे साथ प्रश्नोत्तर करता रहे। कोई उमंगी किसी प्रकार यदि पकड़ में आया भी, तो फिर उससे अंड-बंड उत्तर मिलते हैं। उपयुक्त सामग्री देनेवाले उपयुक्त व्यक्ति बहुत कठिनाई से मिल पाते हैं। फिर सर्वदा यह भी संभव नहीं कि उनसे बातें करते समय ही उत्तर लिखते चलें। प्रायः ऐसा होता है कि उत्तरों को कठिनता-पूर्वक स्मृति में ही संचित करके कुछ समय के उपरांत लिखना पड़ता है। इस कारण इसमें विशेष सावधानी की अपेक्षा होती है। अपनी संगृहीत सामग्री को प्रकाशित करने के पहले हमने यह आवश्यक नियम कर रक्खा था कि उन बोलियों के बोलनेवाले तथा तत्तत् भाषा-क्षेत्रों के प्रतिनिधि स्वरूप तथा भरोसे के व्यक्तियों से विशेष रूप से पूछ-ताछ करके उसका पुनः परीक्षण कर लिया जाय। इस प्रकार इस कोश के प्रत्येक शब्द की प्रामाणिकता की यथासंभव जाँच कर ली गई है। इस कोश का प्रत्येक शब्द हमारी जागरूक ममता और देख-भाल का पात्र बनकर ही इस आगार में प्रवेश पा सका है।

बड़े हौसले के साथ हम इस कार्य में प्रवृत्त हुए। परन्तु हमें अत्यन्त सीमित साधनों, दो-चार संग्राहक कार्यकर्त्ताओं, लोक-भाषा और लोकसाहित्य के कुछ इने-गिने अनुरागी व्यक्तियों और बस दो अनुसंधान-सहायकों की सहायता से ही, अन्यान्य कार्यों के साथ-साथ, इतनी स्वल्प अवधि में, इस कोश का पहला खंड निकालना पड़ रहा है। इसे

भी हम अपना सौभाग्य ही समझते हैं कि यह कठिन कार्य किसी तरह इस विषय में रुचि रखनेवाले महानुभावों के समक्ष प्रकाश में तो आ सका।

संभव है कि कार्य की शीघ्रता अथवा अल्पज्ञता के कारण इस संग्रह में कुछ ऐसे शब्द न आ सके हों, जिनकी जानकारी अन्य सज्जनों को हो। कोई भी कोशकार आखिर अतिमानव तो है नहीं कि सर्वज्ञता का दावा कर सके। कोश-कार्य में त्रुटियों की पर्याप्त संभावना रहती है, जिनका पता तो प्रकाशन के बाद ही चलता है और जिनके निर्देश कोशकार को कुछ तो उदारतापूर्वक मिलते हैं और कुछ तीखे आक्षेपों के साथ। दोनों से ही कृतज्ञ भाव से आगे के लिए शिक्षा-ग्रहण करने को मैं सविनय आतुर रहूँगा।

वस्तुतः एक ओर कोश-कार्य की कष्टसाध्यता, विशालता तथा अपने बढ़े-चढ़े हौसलों को और दूसरी ओर अपनी सीमित शक्तियों तथा साधनों को देखकर हमें कहना पड़ता है—

'तितीर्षु र्दुस्तरम्मोहादुडुपेनास्मि सागरम्।'

विश्वनाथ प्रसाद
संपादक

मंगलवार, मार्गशीर्ष, शुक्ल-६ (स्कन्दषष्ठी) सं० २०१५ वि०,
क० मुं० हिन्दी तथा भाषा-विज्ञान विद्यापीठ
आगरा-विश्वविद्यालय
आगरा

प्रस्तावना

बिहार-प्रदेश की विविध लोकभाषाओं का वैज्ञानिक अध्ययन-अनुशीलन बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद् का एक प्रमुख उद्देश्य है। इसके लिए आरम्भ से ही उसके अन्तर्गत 'लोकभाषा-अनुसंधान-विभाग' मेरे निर्देशन-निरीक्षण में कार्य करता आ रहा है। हमने बिहार की लोकभाषाओं और लोक-साहित्य के अध्ययन के लिए एक योजना बनाई, जिसके अनुसार लोकभाषा और साहित्य-संबंधी सामग्रियों का संग्रह किया जा सके। तदनुसार गाँवों में बिखरी अलिखित सामग्रियों, लोक-गीतों, कथाओं, गाथाओं, कहावतों, पहेलियों, मुहावरों और शब्दों का संकलन प्रशिक्षित वैतनिक कार्यकर्त्ताओं द्वारा कराया जाने लगा। प्रशिक्षित कार्यकर्त्ता विभिन्न भाषा-क्षेत्रों के गाँवों में जाकर तत्तत्-विषयों के विशेषज्ञों और तत्तद् व्यवसायों के व्यावसायिकों से मिलकर गीतों, कथाओं, पहेलियों आदि और किसान, बढ़ई, कुम्हार आदि व्यावसायिकों से उन-उन विषयों के शब्दों का संग्रह करते और कार्यालय को भेजते थे और यहाँ दो प्रशिक्षित अनुसंधायक उनका निरीक्षण-परीक्षण करके उनकी उपयोगिता और औचित्य को जाँचकर उन्हें संगृहीत करते थे। किन्तु यह प्रणाली एक वर्ष तक ही चली; क्योंकि उन संग्राहक कार्यकर्त्ताओं द्वारा किया गया कार्य संतोषजनक नहीं प्रमाणित हुआ। अतः वैतनिक कार्य का सिलसिला उठा दिया गया और उसके स्थान में विभिन्न क्षेत्रों के लोक-साहित्य के उत्साही कार्यकर्त्ताओं के द्वारा पारिश्रमिक के आधार पर सामग्रियों का संकलन कराया जाने लगा। इसके लिए हमारे विशेष रूप से तैयार किए हुए निर्देशपत्र के अनुसार बिहार की मैथिली, मगही, भोजपुरी और संताली की सामग्रियाँ एकत्र की जाने लगीं। अबतक इन भाषा-क्षेत्रों की प्रचुर सामग्री संगृहीत हो चुकी है। सरकारी तौर पर इस प्रकार का यह पहला कार्य था, जिसे बिहार-राज्य सरकार ने प्रारम्भ किया और बाद में यह दूसरे राज्यों के लिए अनुकरणीय हो गया। दो-तीन वर्षों में कुछ सामग्रियों के संग्रह हो जाने के बाद सबसे पहले दो कार्य शुरू किये गये—पहला 'मगही संस्कार-गीतों' का संपादन और दूसरा 'कृषिकोश' का। 'मगही संस्कारगीत संग्रह' में, विविध संस्कारों के समय गाये जानेवाले मगही-क्षेत्र के लोक-गीतों का संग्रह किया गया है। इस संग्रह में मगही लोक-गीतों का मूलरूप, उनका अर्थ, यथास्थान टिप्पणी, परिशिष्ट आदि देकर एक विस्तृत भूमिका के साथ संपादन किया गया है, जो निकट भविष्य में मुद्रित होनेवाला है।

दूसरा कार्य, जो इस विभाग ने किया है, वह इसी 'कृषिकोश' का संपादन है। यद्यपि बिहार-राज्य के मैथिली, मगही और भोजपुरी क्षेत्रों के गाँवों में निवास करनेवाले किसान, बढ़ई, लुहार, कुम्हार, सुनार, चमार आदि सभी प्रकार के व्यावसायिकों के व्यवसायों से सम्बद्ध ग्रामीण पारिभाषिक शब्दों का संग्रह इस विभाग में कराया जाता रहा है और यद्यपि पहले विचार था कि सभी ग्रामीण व्यवसायों के पारिभाषिक शब्दों का एक बृहत् संहत कोश एक ही साथ संपादित करके प्रकाशित किया जाय तथापि उसके लिए और अधिक सामग्री, साधन एवं समय की अपेक्षा का विचार करके उस स्तर पर उसका कार्य तत्काल स्थगित कर दिया गया और ग्राम-समाज की रीढ़ किसानों के द्वारा व्यवहृत खेती के शब्दों का ही कोश पहले निकालने का निश्चय हुआ। तदनुसार खेती के शब्दों का अलग संग्रह करके उनका संपादन किया गया। फलस्वरूप, 'कृषिकोश' का यह पहला खंड आज प्रकाशित हो रहा है। इसमें 'अ' से लेकर 'घ' तक के शब्द हैं।

इस कोश में कृषि-संबंधी पारिभाषिक शब्दों का संग्रह किया गया है। 'कृषि' शब्द हल जोतने के अतिरिक्त खेती करनेवाले किसान तथा खेती के पशु, औजार, प्रणाली, विविध क्रिया-कलाप आदि सबका बोधक है। वैदिक साहित्य में भी यह शब्द प्रयुक्त हुआ है। 'कृषि' के स्थान में अष्टाध्यायी में 'कृषीवल' शब्द आया है। वैदिक काल से ही कृषि हमारे देश का प्रधान व्यवसाय रहा है और इसका जैसा विकास हमारे यहाँ हुआ था, वैसा अन्यत्र नहीं। ग्रीस के लोग भी यहाँ की उपजाऊ धरती और कृषि-कौशल से बहुत प्रभावित हुए थे। अतः शताब्दियों के परम्परागत विकास के प्रभाव से हमारी कृषि-संबंधी शब्दावली बहुत समृद्ध है।

इस कोश के संगृहीत शब्द बिहार-राज्य के विभिन्न क्षेत्रों के कृषक-जनसमुदाय में सैकड़ों वर्षों से व्यवहृत होते आ रहे हैं और आज भी जीवित तथा जीवन्त हैं। इनके अतिरिक्त मजदूरों और अन्य श्रमजीवियों की बोलचाल की भाषा में भी समाज-शास्त्र, शिल्पशास्त्र अथवा उद्योग-धंधे संबंधी बहुतेरे बढ़िया-बढ़िया शब्द मिलते हैं, जो राष्ट्रभाषा की समृद्धि के समर्थ पूरक हो सकते हैं। भिन्न-भिन्न व्यावसायिक मंडलियों तथा श्रमजीवियों के समाज में प्रचलित बहुत-से ऐसे नये पुराने शब्द भी मिलेंगे, जिनके पर्यायवाची शब्द साहित्यिक हिन्दी या अँगरेजी आदि विदेशी भाषाओं में भी दुर्लभ होंगे। राष्ट्रभाषा का भांडार भरने के लिए तथा विविध कला-कौशलों और व्यावसायिक शिक्षा के क्षेत्र में पारिभाषिक शब्दों की समस्या को हल करने के लिए हमें अपनी इन चिर उपेक्षित अमूल्य निधियों का संचय करना परम आवश्यक है।

बिहार के विभिन्न क्षेत्रों के विभिन्न पेशेवालों की मंडली में प्रचलित ऐसे कुछ पारिभाषिक शब्दों का प्रथम संग्रह प्रसिद्ध भाषाविद् डॉ॰ ग्रियर्सन ने किया था, जो 'बिहार पीजेंट लाइफ' के नाम से १८८५ ई॰ में प्रकाशित हुआ था। परन्तु यह

संग्रह संक्षिप्त था और कुछ और ही अभिप्राय से किया गया था। इससे हमारा उक्त उद्देश्य सिद्ध नहीं हो सकता। इसके अतिरिक्त सभ्यता के आधुनिक प्रभावों के कारण समाज के भिन्न स्तरों के लोक-व्यवहार, आचार-विचार, रहन-सहन, रस्म रिवाजों के परिवर्त्तनों के साथ-ही साथ उनके शब्द-भांडार में भी निरन्तर परिवर्त्तन होते जा रहे हैं। पुराने शब्दों के स्थान में उन्हीं के आधार पर या उनसे भिन्न रोजमर्रे के नये शब्द बनते जा रहे हैं। इसलिए बिहार और बिहार के बाहर हिन्दी-भाषी तथा हिन्दीतर भाषी क्षेत्रों में भी नये सिरे से और वैज्ञानिक ढंग से ऐसे शब्दों का सर्वेक्षण और संग्रह कराना आवश्यक है। अन्यथा केवल अँगरेजी शब्दों की तालिका तैयार करके उनका पर्याय प्रस्तुत करते जाने की परिपाटी पर ही निर्भर करने से हमें अपनी लोक-भाषा के करोड़ों अर्थपूर्ण उपयोगी और जीवंत पारिभाषिक शब्दों से वंचित होना पड़ेगा और इससे राष्ट्रभाषा की बहुत बड़ी क्षति होगी। इस प्रकार तो 'गिलावा', 'सुरखी' और 'बँड़ेड़ी' जैसे रोजमर्रे के शब्द भी हमारे पारिभाषिक कोश में स्थान नहीं पा सकेंगे; क्योंकि अँगरेजी में कोई एक पारिभाषिक शब्द ऐसा नहीं है, जो ठीक-ठीक इनका पर्यायवाची हो और जिसके अनुवाद के लिए इनकी अपेक्षा हो। 'गिलावा' के लिए अँगरेजी में एक नहीं, अनेक शब्दों की आवश्यकता होगी। ग्रियर्सन ने 'गिलावा' के लिए Moistend clay used as mortar, 'सुरखी' के लिए Thepounded bricks used as a substitute for sand और "बँड़ेरी" के लिए Ridge pole का व्यवहार किया है। सर्वेक्षण के द्वारा लोक-भाषा के ऐसे शब्दों का संग्रह कर लेने के बाद उन्हें हम स्वतंत्र रूप से अपने पारिभाषिक शब्द-कोश का अंग बना सकते हैं।

इस दृष्टि से बिहार राज्य के विभिन्न क्षेत्रों के जनसमुदाय में व्यवहृत होनेवाले विभिन्न प्रकार के पारिभाषिक शब्दों का संग्रह बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद् के लोकभाषा-अनुसंधान-विभाग द्वारा कराया गया। अब तक बिहार की मैथिली, भागलपुरी, मगही, भोजपुरी और संताली भाषाओं के ५४२७७ पारिभाषिक शब्द संगृहीत हो चुके हैं। ये सभी शब्द गाँवों में बसनेवाले विविध व्यवसायियों, शिल्प-जीवियों और किसानों के मुख से संगृहीत हुए हैं। किंतु जैसा कि ऊपर निवेदित किया जा चुका है, प्रस्तुत कृषिकोश में केवल कृषि से संबद्ध शब्द ही लिये गये हैं।

जनपदीय शब्दावली का कार्य—हमारे देश में जनपदीय शब्दावली के संग्रह के क्षेत्र में अभी बहुत कम कार्य हो सका है। अँगरेजों ने इस क्षेत्र में जो थोड़ा कार्य किया था; उसका मुख्य उद्देश्य था—मामले-मुकदमे तथा कचहरी की कार्रवाइयों को समझने में सुगमता के साधन जुटाना। ग्रियर्सन से भी पहले हिन्दी-प्रदेश में इस प्रकार का कार्य पैट्रिक कार्नेगी ने किया था। 'कचहरी टेक्निकैलिटिज' के नाम से उनका शब्द-संग्रह सन् १८७०-७५ ई॰ के लगभग प्रकाशित हुआ था। उसका दूसरा संस्करण इलाहाबाद मिशन प्रेस से सन् १८७७ ई॰ में निकला था। उसके प्रारंभिक अंशों का डॉ॰ अम्बाप्रसाद 'सुमन' द्वारा किया हुआ हिन्दी-रूपान्तर हमने 'भारतीय साहित्य'

(आगरा विश्वविद्यालय हिन्दी विद्यापीठ, २-३, जुलाई, १९५७, पृष्ठ ४३६-४४३) में प्रकाशित किया था। पैट्रिक कार्नेगी के संग्रह के दो वर्षों बाद सन् १८७९ ई० में विलियम क्रूक ने अपना संग्रह 'मैटिरियल्स फार ए रूरल एण्ड एग्रिकल्चरल ग्लासरी अव द नार्थ-वेस्टर्न प्राविंसेज एण्ड अवध' (गवर्नमेंट प्रेस इलाहाबाद)—इस नाम से प्रकाशित किया था। इसके बाद १८८५ में ग्रियर्सन के 'बिहार पीजेंट लाइफ' का प्रथम संस्कर प्रकाशित हुआ। प्रामाणिकता की दृष्टि से यह ग्रंथ अपने से पहले के दोनों ग्रंथों से निस्सन्देह अधिक सफल था; क्योंकि इसके सम्पादक ने लिखित सामग्री का आश्रय छोड़कर विभिन्न व्यवसायों में लगे हुए लोगों से शब्दों का संग्रह किया और कराया। इसका दूसरा संस्करण सन् १९२६ ई० में गवर्मेण्ट प्रिण्टिङ्ग प्रेस, बिहार एण्ड उड़ीसा, पटना से प्रकाशित हुआ।

ग्रियर्सन के वर्षों बाद बीसवीं सदी में इस दिशा में सबसे पहला प्रयास डॉ० मौलाना अब्दुल हक की प्रेरणा से उर्दू में 'इस्तला हाते पेशावरों' के नाम से आठ छोटी-छोटी जिल्दों में अंजुमने तरक्किए उर्दू, दिल्ली (१९३९-४४ ई०) से मौलवी जाफर उर रहमान साहब देहलवी के संपादन में प्रकाशित हुआ। इस कोश में लगभग दो सौ पेशों के बीस हजार शब्द संगृहीत हैं। परन्तु ये शब्द गाँवों के पेशेवरों से नहीं, केवल कुछ मशहूर शहरों और कुछ नई-पुरानी किताबों (जैसे 'गुलजारे काश्मीर, 'आईने अकबरी' आदि) से संगृहीत किये गये थे। शहरों में भी दिल्ली, आगरा और जयपुर आदि कुछ चुनी हुई जगहों से ही अधिकांश शब्द लिये गये थे और वे ही शब्द जो कि सम्पादक के नजर में 'मेयारी' यानी स्टैंडर्ड भाषा के अंग प्रतीत हुए। इस कोश में यह भी नहीं बताया गया है कि कौन-सा शब्द किस क्षेत्र या स्थान से प्राप्त हुआ। फिर भी इसमें बादशाही जमाने के पुराने खानदानों के कारीगरों से या शहरों के कई पेशेवरों से जो शब्द लिये गये हैं, वे मूल्यवान् हैं।

हर्ष है कि इधर हिन्दी में भी इस क्षेत्र में ग्रियर्सन के ही ढंग पर दो उल्लेखनीय कार्य विश्वविद्यालयों के अनुसंधित्सुओं द्वारा सम्पन्न हुए हैं। एक तो डॉ० हरिहर-प्रसादजी गुप्त द्वारा आजमगढ़ जिले को फूलपुर तहसील के परगना अहिरौला के आधार पर 'ग्रामोद्योग और उनकी शब्दावली' (प्रयाग विश्वविद्यालय के डाक्टरेट का शोध-प्रबन्ध, १९५१ ई०) और दूसरा डा० अम्बाप्रसाद 'सुमन' का अलीगढ़ क्षेत्र की बोली के आधार पर 'कृषक-जीवन संबंधी शब्दावली' (शोध-प्रबन्ध, आगरा विश्वविद्यालय, १९५६ ई०)। ये दोनों कार्य अपने-अपने क्षेत्रों के सम्बन्ध में बहुत ही महत्त्वपूर्ण कहे जाएँगे। डा० हरिहरप्रसाद का शोध-प्रबन्ध प्रकाशित हो चुका है। (राजकमल प्रकाशन, दिल्ली आदि, १९५६)। तुलना के लिए हमने अपने इस कोश में उसका उपयोग भी किया है। तुलनात्मक अध्ययन करके हम इन कोशों से इस बात का पता पा सकते हैं कि हमारी जनपदीय शब्दावली में कहाँ तक समानता है और कहाँ तक अपनी-अपनी विशेषताएँ हैं। 'कृषि-शब्दावली' नाम से श्री प्यारेलाल

गर्ग द्वारा संपादित एक छोटी-सी ३३ पृष्ठों की पुस्तिका 'काशी-नागरी-प्रचारिणी-सभा' से भी सं० २००० वि० में प्रकाशित हुई थी। परन्तु उसमें केवल कुछ अँगरेजी शब्दों के हिन्दी पर्याय-मात्र हैं।

उधर हाल में 'वृत्तिपदकोष' के नाम से तेलुगु क्षेत्र की पारिभाषिक शब्दावली के संग्रह के लिए दक्षिण में इस ढंग का एक आयोजन आँध्र विश्वविद्यालय के डा० भ० कृष्णमूर्त्ति ने किया है। जैसा कि मैंने ऊपर निवेदन किया है, इस प्रकार का कार्य विभिन्न प्रदेशों में शीघ्र होना चाहिए, जिससे हम तुलनात्मक दृष्टि से विचार कर सकें कि इनमें से कितने शब्द ऐसे हैं जिन्हें अखिल भारतीय स्तर पर आवश्यक रूपान्तरों के साथ हम ग्रहण कर सकते हैं।

मराठी क्षेत्र में पूना के निकट के गाँवों के कुछ 'मुहार' जाति के घरों में व्यावसायिक शब्दों की जाँच करते हुए मुझे कई ऐसे शब्द मिले जो बिहार में भी प्रायः उसी रूप में प्रचलित हैं। इससे ऐसा जान पड़ता है कि हमारे देश में केवल संस्कृत की तत्सम तथा साहित्यिक शब्दावली का ही अखिल भारतीय प्रसार नहीं है, वरन् दिनानुदिन के विभिन्न व्यावसायों में लगी हुई ग्रामीण जन-मंडली की लोकवाणी में भी भाषा की यह मूलभूत समरूपता एक अन्तर्धारा के समान किसी-न-किसी रूप में व्याप्त है, परन्तु इसकी व्यापकता की जाँच तथा व्यावहारिक उपयोग तबतक असंभव है जब तक देश के विभिन्न भागों में जनपदीय शब्दावली के संग्रह और अध्ययन का कार्य नियमित रूप से सम्पन्न न हो।

अपने देश में तो अभी नहीं, पर इंगलैंड के स्काटलैंड प्रदेश में जनपदीय शब्दावली के क्षेत्र में एक उदाहरणीय और अनुकरणीय कार्य हो रहा है। वहाँ १९२९ ई० में इस कार्य के लिए स्कॉटिश नेशनल डिक्शनरी सोसाइटी के नाम से एक संस्था स्थापित हुई और उसने आक्सफोर्ड इंगलिश लोकभाषा कोश के आदर्श पर कार्य प्रारंभ किया। इस 'स्कॉटिश नेशनल डिक्शनरी' को १० जिल्दों में और ३ स्तंभों के कुल ३२०० पृष्ठों में प्रकाशित करने की योजना बनी। लगभग २८ वर्षों तक कार्य करके १९५७ ई० तक यह सोसाइटी इस डिक्शनरी' के केवल तीन खंडों का प्रकाशन अभीतक कर सकी है। इस कोश में स्कॉटलैंड के ग्रामीण अंचलों में बोली जानेवाली विभिन्न बोलियों के प्रतिनिधि व्यक्तियों और पुरा काल के प्रकाशित साहित्य से शब्दों को संगृहीत करके उन्हें सम्पादित किया जा रहा है। इसमें विभिन्न क्षेत्रों के पर्याय, स्थान-निर्देश, उच्चारण और प्रयोग यथास्थान दे दिये गये हैं। किसी प्रदेश की लोकभाषा-संबंधी कोशों में इससे अच्छा कोश मैंने अबतक नहीं देखा। स्कॉटलैंड के एबर्डीन नगर में जाकर और इस कोश के विद्वान् सम्पादक मि० डेविड डी० म्युरिसन के साथ रहकर मैंने अपनी आँखों उनके कार्य-क्रम और प्रणाली को देखा। इस डिक्शनरी के संग्रह और संपादन में कई विद्वान् और संग्रह-कर्त्ता काम कर रहे हैं। वर्तमान संपादक उसके दूसरे संपादक हैं। २८ वर्षों में यह कोश अपने पहले संपादक के जीवन-काल का

अतिक्रमण करके अब अपने दूसरे सम्पादक के कार्य-काल में प्रकाशित हो रहा है। इस सोसाइटी के पास कोश-विज्ञान-संबंधी सभी आवश्यक साधन हैं, जिनकी सहायता से शब्दों का संग्रह, उनके शुद्ध उच्चारण आदि की बातें प्रामाणिक रूप से प्रस्तुत की जाती हैं। वहाँ के कार्य को देखकर मैं बहुत प्रभावित हुआ था। स्कॉटिस नैशनल डिक्शनरी के समान ही हमने भी अपने इस कोश में विभिन्न अर्थ, पर्याय और क्षेत्र आदि का निर्देश किया है। इनके अतिरिक्त इसमें भाषा-विज्ञान की वर्णनात्मक और ऐतिहासिक पद्धति के अनुसार लोकभाषा के शब्दों के वैयुत्पत्तिक और पुनर्निमित शब्द भी यथासंभव के दिये गये हैं। तुलना के लिए बिहार के बाहर की अन्य प्रादेशिक बोलियों के पर्याय भी, जो प्राप्त हो सके हैं, दे दिये गये हैं। इस प्रकार हमारा प्रयास रहा है कि यह कोश, हमारी भाषा में अपने ढंग का पहला कोश कहा जा सकता है, यथासंभव प्रामाणिक और उपादेय हो सके।

हमारे लोकभाषा-अनुसंधान-विभाग का कार्य मार्च १९५१ ई० से प्रारंभ हुआ था। इन सात वर्षों की अवधि में कोश का कार्य तो आरंभ से ही होता आया है; किन्तु उसके साथ ही लोकसाहित्य संबंधी दूसरे कार्य भी होते रहे हैं, जिनमें लोकगीतों, कथाओं, गाथाओं, कहावतों, मुहावरों, पहेलियों आदि का संग्रह-कार्य और विशेषकर मगही के संस्कार गीतों के सम्पादन का कार्य भी सम्मिलित है। सन् १९५६ तक कार्यालय में अनुसन्धान कार्य करनेवाले केवल दो ही व्यक्ति थे। अब इधर तीन हुए हैं। हाँ, बीच-बीच में एक-आध बार महीने-दो महीने के लिए दो-तीन अतिरिक्त व्यक्तियों से भी कुछ काम लिया गया था। इस प्रकार हम देखते हैं कि स्वल्प साधनों के रहते हुए भी इस छोटी-सी अवधि में हम किसी प्रकार कृषि-कोश का पहला खंड पूरा करके निकाल रहे हैं। अपनी परिस्थिति की परिसीमाओं के कारण हम इसे जैसा रूप देना चाहते थे, वैसा नहीं कर सके हैं और इसमें अनेक त्रुटियाँ भी रह गयी हैं, जिन्हें हम आगे के खंडों और परिशिष्ट में यथाशक्ति दूर करने का प्रयास करेंगे।

कार्य-प्रणाली

इस कोश के सम्यक् उपयोग के लिए हमें अपनी योजना की रूपरेखा, कार्यप्रणाली, संकलन व्यवस्था, शब्दार्थ-निरूपण, व्युत्पत्ति-निर्वचन तथा क्रमादि संबन्धी कुछ आवश्यक परिचय दे देना उचित है।

पारिभाषिक शब्दों के हमारे इस संग्रह-कार्य के लिए पहले परिषद् की ओर से चार वैतनिक कार्यकर्त्ता नियुक्त किये गये थे। मैंने उन्हें आवश्यक प्रशिक्षण दे कर विभिन्न निर्धारित केन्द्रों में संग्रह के लिए भेजा। वे पृथक्-पृथक् क्षेत्रों के विविध जनवर्गों के प्रतिनिधि-स्वरूप व्यक्तियों से पूछकर शब्दों अर्थों और यथास्थान उनके प्रयोगों को यथोच्चरित रूप में लिख लेते थे और उन्हें परिषद्-कार्यालय में भेज देते थे। यहाँ मेरे निर्देशानुसार उनकी परीक्षा दो विशेष रूप से प्रशिक्षित अनुसन्धायक किया करते थे। परन्तु जैसाकि ऊपर बताया जा चुका है, इस ढंग से संग्रह-कार्य में सन्तोषजनक

प्रगति न होने के कारण पहले की वैतनिक पद्धति हटा दी गई और उसके स्थान में तत्तत्स्थलों के लोक-साहित्य और लोकभाषा के संग्रह में अनुराग और योग्यता रखनेवाले लोगों को यथानियम पारिश्रमिक देकर संग्रह-कार्य कराया जाने लगा। इस पद्धति से संग्रह-कार्य में संतोषजनक प्रगति हुई।

कोश में शब्दों के साथ-साथ मुहावरों का भी निर्देश यथास्थान कर दिया गया है। कृषि- सम्बन्धी लोक-कहावतों में प्रयुक्त शब्दों को भी समाविष्ट कर लिया गया है। ग्रियर्सन के 'बिहार पीजेंट लाइफ़' के लगभग दस हजार शब्दों की भी हमने अपनी प्रणाली से जाँच की कि उनमें से अब कितने प्रचलित हैं और कितने अप्रचलित तथा प्रचलित रूपों में भी इस बीच में अर्थगत या ध्वनिगत कितने परिवर्त्तन हो गये हैं।

अपनी संगृहीत सामग्री के पुनः परीक्षण के लिए विभिन्न क्षेत्रों के प्रतिनिधि स्वरूप उपयुक्त व्यक्तियों को बुलाकर कोश में आये हुए प्रत्येक शब्द के स्वरूप, अर्थ-प्रयोग और पर्याय के बारे में नियमित रूप से पूछ-ताछ करके आवश्यक संशोधन किया गया। ये व्यक्ति उनसे भिन्न थे जिनसे प्रथमतः शब्द संगृहीत किये गये थे। इस प्रकार पुनः जाँच करने से हमें कई नये शब्द और अर्थ भी प्राप्त हुए जिन्हें यथास्थान समाविष्ट कर लिया गया है।

अपने संग्रहकर्त्ताओं के लिए हमने निम्नलिखित निर्देश निर्धारित किये थे जिनके अनुसार उन्हें कार्य करना आवश्यक था—

संग्रह-कर्त्ताओं के लिए आवश्यक निर्देश

१. जनसाधारण या समाज के किसी वर्ग विशेष में प्रचलित शब्दों का ही संग्रह करना होगा।
२. जिस विषय या समाज के जिस वर्ग को लें, उसके सभी भेदों, व्यापारों, गुणों, लक्षणों, रीति-रिवाजों, खान-पान, रहन-सहन सम्बन्धी शब्दों का संग्रह करना होगा।
३. जो शब्द जिस रूप में व्यवहृत हो, उसे ठीक उसी रूप में लिखना होगा। उसे साहित्य का रूप देंने के लिए उसमें फेर-बदल या संशोधन नहीं करना होगा।
४. जिस शब्द को लें, उसको लेकर जो मुहावरे या कहावतें व्यवहृत हों, उन्हें भी वहीं सम्मिलित कर लेना होगा। पर कहावतों और फुटकर मुहावरों को एक पृथक् और स्वतंत्र विषय समझा जायगा।
५. कार्य-कर्त्ताओं को जिन व्यक्तियों या वर्गों के बीच जाकर काम करना होगा, उनके प्रति अपनी सेवा, सहानुभूति और सद्भाव के द्वारा उनमें बिल्कुल घुलमिल जाने की चेष्टा करनी होगी, जिससे उनकी पूरी सहानुभूति और सहयोग प्राप्त हो सके और उनको स्वयं संग्रह-कार्य के महत्त्व में विश्वास और दिलचस्पी पैदा हो सके।
६. शब्दों के स्थानीय उच्चारण पर विशेष ध्यान रहना चाहिये और उनको ठीक उसी रूप में लिखा जाना चाहिए।

७. एक शब्द का एक ही अर्थ में अनेक बार उल्लेख नहीं करना चाहिए।
८. अर्थ एवं विवरण पर विशेष ध्यान रहना चाहिए। उन्हें स्पष्ट रूप से लिखना आवश्यक है।
९. प्रत्येक विषय का पारिभाषिक शब्द यथासंभव एक साथ और पूर्ण रूप से लिखना चाहिए। निर्दिष्ट वर्गों में विषयों का विभाग और उप-विभाग भी कर लेना उचित है।
१०. जो पारिभाषिक शब्द न हों, उन्हें अलग ही लिखना चाहिए।
११. निर्देश-पत्र में दिए हुए प्रत्येक नियम को ध्यान-पूर्वक समझ या देखकर उपयोग में लाना आवश्यक है।
१२. शब्दों, कहावतों, मुहावरों और पहेलियों को पृथक् पृथक् पत्रों पर लिखना चाहिए। जहाँ शब्द लिखे जायँ, वहाँ दूसरे विषय न लिखे जायँ।

इन निर्देशों के अनुसार शब्द-संग्रह करने के लिए कार्य-कर्त्ताओं को एक मुद्रित तालिका दी गई थी, जो इस प्रकार थी :—

संग्रह की इस तालिका का निम्नलिखित विवरण भी निर्देश-पत्र के साथ संलग्न था:—

संग्रह की तालिका का विवरण

१. (क) साथ में दी हुई सूची के अनुसार जिस विषय के शब्दों का संग्रह किया जाय, उसका यहाँ उल्लेख करना होगा।
(ख) सूची के अनुसार समाज के जिस वर्ग में काम किया जाय, उसका यहाँ उल्लेख करना होगा।
२. जिस स्थान में काम किया जाय, उसका उसके सबडिवीजन, जिला आदि का नाम देना होगा।
३. भोजपुरी, मगही, मैथिली, नागपुरिया आदि जिस भाषा के क्षेत्र में काम किया जाय, उसका उल्लेख करना होगा।
४. आबादी की संख्या ठीक-ठीक न मालूम हो सके तो पूछताछ से पता लगाकर अन्दाज से देना होगा।
५. जहाँ जिस स्थान (गाँव आदि) में काम किया जा रहा है, वहाँ की जनता में हिन्दू, मुसलमान, हरिजन, किरस्तान, जैन, आदिवासी, चेरो, खरवारो, संताली, उराँव, किसान, जमींदार, बढ़ई, लुहार आदि पेशेवालों में कौन अधिक है, कौन कम है, आदि बातों का उल्लेख करना होगा।
६. सिलसिलेवार संख्या।
७. शब्दों के साथ उनसे सम्बन्ध रखनेवाले मुहावरों को भी दर्ज करना होगा। कहावतों को स्वतंत्र विषय समझा जायगा। शब्दों के लिङ्ग का भी (स्त्रीलिङ्ग, पुंलिङ्ग, नपुंसकलिङ्ग, उभयलिङ्ग या अलिङ्ग) इस प्रकार उल्लेख करना होगा।

ये शब्द वहाँ जन-समाज में वस्तुतः जिस लिङ्ग में व्यवहृत होते हों, उसीका उल्लेख करना होगा, साहित्यिक व्याकरण के अनुसार नहीं।
८. अर्थ स्पष्ट और सरल भाषा में देना होगा। जटिलता दूर करने और अर्थ को तथा प्रयोग को और अधिक स्पष्ट करने के लिए जहाँ आवश्यक हो, वहीं उदाहरण देने की जरूरत होगी, अन्यथा नहीं। उदाहरण के वाक्य उसी भाषा के हों, जिसके क्षेत्र में काम किया जा रहा हो या अपने बनाये हुए हिन्दी के सरल वाक्य हों।
९. (क) यहाँ इसका उल्लेख करना होगा कि वह शब्द केवल उसी वर्ग विशेष में प्रचलित है या उसके सामान्य जन-समूह में भी। जैसे, खटिया आदि शब्द जो सामान्यतः प्रचलित हैं, इन्हें सामान्य (सामा०) कहना होगा और 'पोर', 'परुआ', 'परई' आदि जो केवल 'कानू' जातियों में प्रचलित हैं, विशेष (विशे०) कहे जायँगे।

संग्रह-कार्य निम्नलिखित विषय-सूची के अनुसार होता रहा है :—

वृत्तियों की विषय-सूची

१. पेशे के औजार और सामग्रियाँ, उनके भेद और हिस्से। उदा०—हल, बैल, खेत, बीज आदि।
२. पेशे के ढंग और उनके काम आनेवाले जानवर।
३. पेशे की सवारियाँ, उनके भेद, हिस्से।
४. पेशे के ढंग तथा उसकी विविध क्रियाओं और अवस्थाओं से सम्बन्ध रखनेवाले शब्द (जैसे—जुताई, बुवाई, खुदाई, सिंचाई, खाद देना, सोहनी, रखवाली करना)
५. पेशे की पैदावार के भेद।
६. पेशे या पेशे की सामग्रियों की बाधाएँ और ऐब।
७. पेशे या पेशे की सामग्रियों को बढ़ाने या मदद पहुँचानेवाली चीजें।
८. खाने-पीने की सामग्रियाँ, उनके हिस्से, भेद और उनसे बननेवाली चीजें।
९. मसाले।
१०. खाना बनाने की सामग्रियाँ।
११. घर के सामान, आसन, शय्या आदि।
१२. कपड़े-लत्ते और कपड़ों के नाम (छींट आदि)।
१३. गहने और शृंगार के सामान।
१४. पूजा-पाठ, इबादत की सामग्रियाँ और स्थान।
१५. जमीन और मिट्टी के भेद।
१६. मौसम, हवा, पानी, बादलों के भेद।
१७. तौल और माप।

१८. दूरी, दिशा और समय-सूचक शब्द (घड़ी, मौसम आदि)।
१९. घरेलू और पालतू जानवर, उनके रंग-ढंग, रहन-सहन, भेद, रहने के स्थान बीमारी, चरागाह, भोजनादि की सामग्री।
२०. पशु-पक्षी तथा अन्य जीव (मछली आदि)।
२१. घर-बाहर तथा जल-थल के कीड़े-मकोड़े (चूँटे-चींटी, हड्डे, साँप, गोजर आदि)।
२२. लेन-देन, माहवारी हिसाब।
२३. जमीन के लगान और उसके भेद।
२४. घर, झोपड़े और मन्दिर-मसजिद आदि के प्रकार, उनके हिस्से और बनाने की सामग्रियाँ, जैसे छत, छप्पर, छवाई आदि।
२५. शादी-ब्याह के शब्द।
२६. शादी-ब्याह के रस्म-रिवाज, (क) हिन्दुओं के, (ख) मुसलमानों के, (ग) क्रिस्तानों के, (घ) आदिवासियों के।
२७. (क) जात-कर्म (१) हिन्दुओं के (२) मुसलमानों के (३) क्रिस्तानों के (४) आदिवासियों के।
(ख) जनेऊ।
२८. मृत्यु-संस्कार (क) हिन्दुओं के (ख) मुसलमानों के (ग) क्रिस्तानों के (घ) आदिवासियों के।
२९. सोहनी-रोपनी की संस्कार-विधियाँ।
३०. पंचायत, समझौता, शपथ आदि तथा मामले-मुकदमे-संबंधी कचहरी के शब्द।
३१. अन्धविश्वास
३२. तिजारत और बाजार
३३. महाजन और कर्जदार के हिसाब-किताब।
३४. जमींदार और किसान के हिसाब-किताब।
३५. कर्ज, सूद, रेहन आदि।
३६. व्रत, त्योहार (तीज, छठ, होली, ईद, बकरीद, क्रिसमस) और उनकी सामग्रियाँ।
३७. रिक्शा, टमटम, फिटिन, बेबफा, मोटर और हवाई जहाज के हिस्से।
३८. मार-पीट और युद्ध के हथियार।
३९. खेल-कूद, आखेट, मनोविनोद आदि, उनके भेद तथा तत्संबंधी सामग्रियाँ।
(आँखमुँदौवल, कबड्डी, गोटी चौपड़, शतरंज, कुश्ती, कसरत, अखाड़े, मनोविनोद, गुल्लीडंडा, पतंग, कबूतरबाजी आदि।)
४०. गाली-गलौज।
४१. आशीर्वाद, सद्भावना तथा शिष्टाचार।
४२. नाच, गान, रासलीला के शब्द और गीत।

४३. मजहब, जात-पाँत के भेद।
४४. फूल, फल, पेड़-पौधे, घास-फूस और उनके भेद।
४५. बीमारियों के भेद।
४६. घरेलू, सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक, संबंधसूचक (माँ, बाप, भाई, बहन, चाची, पड़ोसी, जवार)।
४७. गुण, भाव, सुख-दुख, राग-द्वेष आदि मन के विकार तथा अवस्थाओं के भेद और अन्य सांस्कृतिक या भावात्मक शब्द।
४८. उत्पातक—(क) प्राकृतिक—भूचाल, आँधी।
(ख) मानवीय-चोरी, डकैती, उसके भेद, व्यापार आदि (सेंध आदि)।
४९. प्राकृतिक संबंधी—नदी, नद, झरने, मैदान, पहाड़ तथा मनुष्यकृत ताल-तड़ाग, पुल, बाग, बागीचे, कुएँ आदि।
५०. शरीर के विभिन्न अंग—आदमी के (पुरुष के, स्त्री के), जानवरों के, पशु-पक्षियों के, कीड़े-मकोड़ों के।
५१. स्त्रियों में प्रचलित खास शब्द और मुहावरे तथा उनकी गृह-कलाओं से संबद्ध शब्द।
५२. संख्यावाचक शब्द और गिनती।
५३. सर्वनाम के शब्द।
५४. रंगों के भेद और उनके नाम।
५५. खान आदि के शब्द।
५६. भिन्न-भिन्न कामों के भेद तथा कामों की विविध अवस्थाओं के भेद।
५७. स्वतंत्र मुहावरे।
५८. कहावतें।
५९. विविध।

संग्रहकर्त्ताओं को विषय-सूची के इन सभी पक्षों की सार्थकता को भली-भाँति समझाकर संग्रह-कार्य में इनका सदा ध्यान रखने को बता दिया गया था।

जन-समाज के वर्ग

जन-समाज के जिन विभिन्न वर्गों के बीच भेजकर संग्रह-कर्त्ताओं से संग्रह कराया जाता था, उसके लिए भी एक सूची तैयार की गई थी, जो यहाँ दी जा रही है :—

१. किसान	७. मजदूर
२. जमींदार	८. बढ़ई
३. साहूकार, महाजन और बनियाँ	९. लुहार
४. पुरोहित	१०. चमार-चमाइन
५. नाई	११. दुसाध
६. राज तथा मकान की छाजनी आदि करनेवाले	१२. धोबी

१३. धुनियाँ
१४. जुलाहा
१५. कुँजड़ा
१६. रँगसाज
१७. कुँहार
१८. कहार
१९. दरजी
२०. तेली
२१. बजाज
२२. हलवाई
२३. भड़भूँजा
२४. चुड़िहारा-चुड़िहारिन
२५. अहीर-अहीरिन
२६. पटवारी
२७. कारपरदाज
२८. सुनार
२९. मुशहर
३०. पासी, चिड़ीमार
३१. मेहतर
३२. बाउरी (धनबाद की ओर)
३३. चेरो
३४. चेरो-बाटो
३५. कुली
३६. खान, रेलवे, मिलों और फैक्टरियों में काम करनेवालों के शब्द
३७. बीड़ीवाला
३८. तमोली और पानवाला
३९. माली
४०. गंधी
४१. बारी, पमरिया
४२. कचहरी और कानूनी मुकद्दमे के शब्द
४३. कलाओं के शब्द (लोकगीत, लोक-वाद्य, लोकनृत्य)
४४. तम्बू-कनात-खीमे के काम करनेवाले
४५. आतिशबाजी
४६. तैराकी
४७. वैद्य और हकीम के सामान्य शब्द
४८. साधु-सन्त तथा ओझा-गुणी, जादू-टोना आदि।
४९. नट नटवे, बहुरूपिया और बाजीगरी
५०. दाई, नौकर, चपरासी, प्यादे आदि
५१. सिपाही, चौकीदार आदि।
५२. कानू
५३. मछुआ-मल्लाह
५४. पटवा
५५. ठठेरा
५६. कोयरी
५७. डोम
५८. कसाई
५९. दफ्तरी और जिल्दसाज
६०. विविध—सूप, सिलवट, खरादी, कलई, मधु का काम, नालबंदी, ईंट-पत्थर, ताला-चाभी, गृहोद्योग—चरखा, बन बिनना, कपास ओटना, चक्की चलाना, दही बिलोना।

बिहारी भाषा या भाषाएँ

वास्तव में 'बिहारी' नाम की कोई भाषा न तो बिहार के किसी भाग में बोली जाती है, न बिहार के बाहर। बिहार में किसी से भी पूछा जाय तो कोई भी 'बिहारी' भाषा का नाम नहीं लेगा। न तो प्राचीन शिष्ट साहित्य में ही और न लोक-साहित्य में ही,

किसी भाषा के अर्थ में, इस शब्द का प्रयोग पाया जाता है। भाषा के अर्थ में तो यह एक नया अपनाया हुआ नाम है, जो 'लिंग्विस्टिक सर्वे ऑफ इंडिया' के सिलसिले में ग्रियर्सन द्वारा बिहार की प्रमुख भाषाओं—मगही, मैथिली, भोजपुरी—और उनके भेदों के लिए प्रयुक्त किया गया था। जैसे उन्होंने राजस्थान की बोलियों के लिए एक नया नाम गढ़ा था—'राजस्थानी', वैसे ही बिहार की इन बोलियों का 'बिहारी' नाम रख दिया था। अतएव महाराष्ट्र की भाषा को जिस अर्थ में 'मराठी', गुजरात की भाषा को जिस अर्थ में 'गुजराती', बँगाल की भाषा को जिस अर्थ में 'बँगला' और उड़ीसा की भाषा को जिस अर्थ में 'ओड़िया' कहते हैं, उस अर्थ में भाषार्थक 'बिहारी' शब्द को नहीं ग्रहण किया जा सकता। 'बिहारी' कोई एक भाषा या बोली नहीं, किन्तु उपर्युक्त तीनों भाषाओं का बोधक शब्द है। इसके अतिरिक्त हम यह भी देखते हैं कि इन तीनों भाषाओं की सीमा बिहार में ही सीमित नहीं है। इनमें से भोजपुरी-भाषी क्षेत्र का एक बहुत बड़ा भाग उत्तर प्रदेश में है। इसी प्रकार मगही-भाषी क्षेत्र का एक भाग (मानभूम का कूरमाली-भाषी अंश) अभी हाल में बंगाल में मिला लिया गया है। मैथिली क्षेत्र के भी कुछ अंश बंगाल में सम्मिलित हैं। वस्तुतः ग्रियर्सन ने बिहार में इन बोलियों के विस्तार-प्राधान्य तथा इनमें जो एक विशिष्ट और घनिष्ठ समरूपता है; इन्हीं आधारों पर उनका यह एक समान नामकरण कर दिया था। इन बोलियों या भाषाओं की यह व्यापक समानता उन्हें एक ओर बँगला से पृथक् करती है और दूसरी ओर अवधी तथा अन्य पच्छिमी बोलियों से भी भिन्न और विशिष्ट स्थान प्रदान करती है। इन समानताओं को अभिव्यक्त करने के लिए, इनकी ओर ध्यान केंद्रित करने के लिए 'बिहारी' निस्संदेह एक सार्थक संज्ञा है। यहाँ जो संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया जा रहा है, उसमें हम इसी अर्थ में इस शब्द का आवश्यकतानुसार प्रयोग करेंगे।

इस दृष्टि से 'बिहारी' उत्तर में हिमालय की तराई से लेकर दक्षिण में छोटानागपुर पठार तक और पूर्व में बंगाल की सीमा से लेकर पश्चिम में मध्य प्रदेश के सरगुजा तथा उत्तर प्रदेश के इलाहाबाद, फैजाबाद और बस्ती जिले के पूर्व तक बोली जाती है। इस प्रकार 'बिहारी' भाषा के पूर्व में बँगला, दक्षिण में ओड़िया, पश्चिम में छत्तीसगढ़ी, बघेली और अवधी जो हिन्दी की मध्यदेशीय उपभाषाएँ हैं, और उत्तर में नेपाली बोली जाती है।

इस सीमा के अंदर इस भाषा के साथ-साथ आदिवासियों में संताली, मुंडारी, हो, खड़िया, कोरकु और भूमिज आग्नेय या निषाद कुल की और ओराँव या कुड़ुँख तथा मालतो द्रविड़ कुल की हैं।

'लिंगुइस्टिक सर्वे ऑफ इंडिया' के अनुसार मैथिली, मगही और भोजपुरी इन तीनों 'बिहारी' बोलियों के बोलनेवालों की संख्या क्रमशः एक करोड़, पैंसठ लाख तथा दो करोड़ से ऊपर है। ये 'बिहारी' बोलियाँ आर्यभाषा परिवार की हैं; परन्तु उनमें यहाँ की

कोल और द्रविड़ भाषाओं के भी प्रचुर प्रभाव हैं। ये हिंदी प्रदेश के पूर्वी अंचल की अंतिम उपभाषाएँ हैं। भारतीय संविधान में भी 'बिहारी' भाषा-क्षेत्र हिंदी प्रदेश के ही अंतर्गत रक्खा गया है। पूर्व में इनके आगे बँगला का अंचल प्रारम्भ हो जाता है।

बिहार में बोली जानेवाली भाषाओं की भौगोलिक स्थिति को स्पष्ट करने के लिए हमने एक विशेष मानचित्र तैयार किया है, जो इस कोश के आरंभ में दिया जा रहा है। उससे बिहारी भाषाओं के विस्तार, परिसीमा आदि का परिचय अनायास हो सकेगा।

'बिहारी' का हिन्दी और बँगला से संबंध

बंगला और 'बिहारी' के संबंध का विचार करते हुए ग्रियर्सन ने बँगला के 'अ' से 'बिहारी' (मैथिली) के 'अ' का साम्य दिखलाया है, किन्तु उन्हीं के लेखानुसार 'बिहारी' का 'अ' अल्प आयत (Broad sound) है, जब कि बँगला का 'अ' अधिक आयत। और यह साम्य भी भोजपुरी-मगही में तो कदापि नहीं है। इस संबंध में 'आयत' से उनका आशय स्पष्टतः 'वर्त्तुल' से था।

दूसरी ओर हम यह भी देखते हैं कि बँगला में दंत्य 'स' के स्थान में तालव्य 'श' का उच्चारण होता है, जिसे प्राकृत व्याकरण में मागधी का लक्षण बताया गया है। पर आज किसी भी बिहारी बोली में ऐसा नहीं होता। बिहारी में सर्वत्र तालव्य 'श' और मूर्धन्य 'ष' के स्थान में दंत्य 'स' का ही उच्चारण होता है। उर्दू में तालव्य 'श' और संघर्षी 'ज' के लिए जो लिपि-चिह्न प्रयुक्त होते हैं, उनपर नुक्ते दिये जाते हैं। इस संबंध में मज़ाक करते हुए ग्रियर्सन ने लिखा है कि दुनिया भर के नुक्ते एक साथ मिलकर भी किसी बिहारी से 'श' को 'स' के सिवा तथा 'ज़' को 'ज' के सिवा और कुछ कदापि उच्चरित नहीं करा सकते (बिहार पीजैंट लाइफ, भूमिका, पृ०-३)। हिंदी प्रदेश की दूसरी बोलियों में भी यही विधान है। शब्द-भंडार तथा परसर्गादि के रूप-संबन्धी अनेक व्याकरणिक कोटियों की दृष्टि से भी 'बिहारी' का हिंदी से घनिष्ठ संबंध है।

'बिहारी' के भेद-उपभेद

उपर्युक्त तीन उपभेदों के अतिरिक्त इधर व्याकरण-संबंधी प्रयोगों के कुछ अन्य दृश्यमान अंतरों के आधार पर दो और नाम कल्पित करके 'बिहारी' के तीन के स्थान में अब कुछ लोगों के द्वारा पाँच उपभेद बताये जाने लगे हैं:—

मैथिली, अंगिका या भागलपुरी, वज्जिका, मगही और भोजपुरी। इनमें से अंगिका या भागलपुरी को ग्रियर्सन ने 'छिकाछिकी' नाम से मैथिली की ही एक उपभाषा बतलाया है, और वज्जिका को पश्चिमी मैथिली। स्वतः भोजपुरी के अंतर्गत पूर्वी, पच्छिमी और दक्खिनी (नागपुरिया)—ये भेद तो किये ही जा सकते हैं। इसमें संदेह नहीं कि इन सभी भेदों और उपभेदों में आंतरिक साम्य होते हुए भी कुछ-न-

कुछ अपनी-अपनी पृथक विशेषताएँ भी हैं। यह नहीं कहा जा सकता कि इन सबको केवल दो भेदों में विभक्त करके मगही को सरलता से मैथिली के ही अंदर ले लिया जाय। मगही और मैथिली का गठन कई अंशों में परस्पर भिन्न है। दोनों के व्याकरण और उच्चारण में भी पार्थक्य है। शब्दरूप और क्रियारूप भी भिन्न-भिन्न हैं।

वस्तुतः बिहार की ये सभी उपभाषाएँ पूर्वकाल में संभवतः किसी एक ही मूल से निकलकर नये स्रोतों की तरह अपने पृथक्-पृथक् मार्गों से भिन्न रूपों में प्रवाहित होती आ रही हैं। यह मूल भाषा 'मागधी' बताई जाती है, जो बँगला, असमी और ओड़िया का भी उद्गम मानी जाती है। इस दृष्टि से ये सगी बहनें हैं। एक रूप नहीं, समरूप हैं। मगही और मैथिली से भोजपुरी में अपेक्षाकृत कुछ अधिक अंतर है। संभव है, उस पर अर्ध-मागधी का भी कुछ प्रभाव है। सच पूछें तो भारतवर्ष की किसी भी आधुनिक भाषा को किसी विशेष प्राकृत या अपभ्रंश के साथ हम निश्चयात्मक रूप से संबद्ध नहीं कर सकते हैं, क्योंकि जैसा टर्नर (R. L. Turner, Gujarati, Phonology, J. R.A.S., १६२५ ई., पृ०-३२६) और ब्लाक (J. Block, La Formation de La Langue Marathi) महोदयों ने इंगित किया है।

प्राचीन प्राकृत या अपभ्रंश काल में किसी विशेष जनवर्ग द्वारा वास्तविक रूप में बोली जानेवाली भाषा का कोई प्रामाणिक लिखित उदाहरण आज हमें उपलब्ध नहीं है। और दूसरी ओर वर्तमान देशी भाषाओं में तीर्थ-यात्रा, सांस्कृतिक-एकता, शादी-ब्याह के संबंध, देश-प्रदेश के यातायात तथा भाषागत समान परिवर्तनों के कारण बहुत कुछ मिश्रण हो चुका है। ऐसी दशा में प्राकृतिक वैयाकरणों की शब्दावली का आश्रय ग्रहण करके हम अधिक-से-अधिक यही कह सकते हैं कि 'बिहारी' प्राच्यभाषा-वर्ग के अंतर्गत आती है, जिसके पश्चिमी रूप अर्धमागधी और पूर्वी रूप मागधी, इन दोनों के बीच के प्रदेश से संबद्ध होने के कारण उसमें कुछ-कुछ दोनों के लक्षण पाये जाते हैं।

कुछ सामान्य नियम

बिहारी की विशेषता में उसकी ध्वनियों के रागात्मक तत्त्व भी उल्लेखनीय हैं। कई ध्वनिराग तो ऐसे हैं, जो अन्यत्र दुर्लभ हैं। उनका विस्तृत विश्लेषण, जहाँ तक भोजपुरी के संबंध में लागू है, मैंने लंदन विश्वविद्यालय के अपने शोध-प्रबंध में किया है। उच्चारण तथा बिहारी शब्दों के यथावत् अध्ययन के लिये इनका थोड़ा परिचय अपेक्षित है। उदाहरण के लिये एक लिखित-रूप लीजिए—"देखल।'

बिहारी में यह विभिन्न रागों में उच्चारित होकर तीन विभिन्न अर्थों का द्योतक है—

देख् लऽ—देख लो।

देख लऽ—तुमने देखा।

देखल्—देखा हुआ।

पदांत के 'अ' का उच्चारण बिहारी में कुछ स्थितियों में होता है। समझाने के लिए ग्रियर्सन (लिंग्विस्टिक सर्वे ऑफ इंडिया, जिल्द—१, भाग—१, १९२७ ई०, जिल्द—५,

भाग—२, १९०३ ई०) ने बहुत प्रयत्न किया। पर ध्वनि-विज्ञान की प्रणाली के बिना उसका ठीक-ठीक वर्णन कठिन था। इस ध्वनि-संकेत के लिए नागरीलिपि में 'ऽ' इस चिह्न का प्रयोग किया जाता है।

बिहारी वाक्यों तथा शब्दों के संगठन में बलाघात, स्वराघात तथा मात्रा की बड़ी रोचक तथा विशिष्ट व्यवस्था है। मात्रा-व्यवस्था के संबंध में एक महत्त्वपूर्ण नियम यह है कि कुछ खुले हुए दीर्घाक्षरों की धातुओं—जैसे, खा, जा आदि के रूपों को छोड़कर किसी शब्द या पद के अंतिम स्थान से दो स्थान पूर्व का कोई अक्षर दीर्घ रूप में नहीं टिक सकता। उसका ह्रस्वीकरण अवश्यंभावी है। जैसे—

बाहर—बाहरी

बोली—बोलिया

देखल—देखली

इनमें दाहिनी ओर के रूपों में प्रथमाक्षर के स्वरों का उच्चारण ह्रस्व होता है। ग्रियर्सन ने इस रागात्मक प्रवृत्ति का उल्लेख 'उपधापूर्व का नियम' इस नाम से किया है।

मात्रा की रागात्मक प्रक्रिया

अ—आकार की मात्रा का एक वह रूप है, जो सामान्यतया हिन्दी की सभी उपभाषाओं में है। यथा—अग्नि, अटल।

दूसरा रूप वह है, जो अतिह्रस्व या अर्ध-ह्रस्व है और जो शब्दों के बीच में आया करता है। यह शब्दों की रागात्मक प्रवृत्ति के कारण स्पष्ट सुनाई नहीं पड़ता है अथवा अर्धश्रुत जैसा होता है। इसे ग्रियर्सन ने 'अश्रुत स्वर' कहा है। यथा—'केतरपारा', 'पतरवाहा', इन शब्दों के तीसरे 'र' में स्थित 'अ' मात्रा का श्रवण नहीं होता है। यह एक ऐसा 'अ' है जो द्रुतगति के भाषण में शून्यवत् मूल्य भी ग्रहण कर ले सकता है। ऐसे शब्दों को लिखा तो जाता है, केतरपारा, पतरवाहा के रूप में; किंतु उच्चारण के अनुसार ये 'केतर्पारा' 'पतर्वाहा' जैसे हो जाते हैं।

सामान्यतः शब्दों के अंतिम 'अ' का उच्चारण नहीं होता है। कुछ विशेष रूपों को छोड़कर अन्यत्र शब्दांत का 'अ' अनुच्चरित रहता है और अंतिम वर्ण हिंदी के समान ही हलंतवत् उच्चरित होता है; यथा—'कल'। किंतु लिखने में वह हलंत न लिखा जाकर पूरा लिखा जाता है।

जिन रूपों में अंतिम 'अ' उच्चरित होता है, उनमें उसका कुछ वर्तुल उच्चारण होता है।

यत्र-तत्र भागलपुरी रूपों में यह अंतिम 'अ' 'ओकार' रूप में इस कोश में अंकित किया गया है, क्योंकि शब्द-संग्रह करनेवालों ने उसे उसी प्रकार उल्लिखित किया है।

आ—दीर्घ 'आ' की मात्रा का उच्चारण एक तो वैसा ही होता है जैसा कि सामान्यतः हिंदी की दूसरी उपभाषाओं में। किंतु इसका बिहारी भाषाओं में ह्रस्व उच्चारण भी होता है। जैसे—आसमान, मालपूआ आदि में आदि का 'आ'।

इ-उ—शब्द के अंत में ह्रस्व इ, उ की ध्वनि अर्धश्रुत होती है, जैसे—मैथिली में 'कयलन्हि', 'करियहु', 'पानि' प्रयोगात्मक प्रणाली से जाँच करने पर भोजपुरी में व्यवहृत इस अंतिम ह्रस्व 'इ' और 'उ' की ध्वनि फुसफुसाहट की ध्वनि सिद्ध होती है, जैसे आगि, मधु।

ए—ओ

ये दोनों दीर्घस्वर बिहारी में दीर्घ के अतिरिक्त ह्रस्व भी होते हैं। इनके ह्रस्वीकरण के नियम वे ही हैं जिनकी चर्चा ऊपर की जा चुकी है। उदा०—अंगेड़िहा, अगोरिया। इन दोनों शब्दों में अंतिम दो अक्षरों के पूर्व के ए और ओ ह्रस्व हो गये हैं। यही नियम सर्वत्र लागू है। इसलिए कोश में इनके लिए कोई पृथक चिह्न देना आवश्यक नहीं समझा गया।

सन्ध्यक्षर स्वर

पश्चिमी हिंदी में नियमित रूप से सन्ध्यक्षर स्वर व्यवहृत होते हैं, परंतु बिहारी बोलियों में ये प्रायः संयुक्त-स्वर के रूप में उच्चरित होते हैं। इसलिए हम इन्हें स्वरानुक्रम या याव्‌श्रुति रूप में ग्रहण कर सकते हैं। यथा 'ऐ' के स्थान में 'अइ', 'अय्' और 'औ' के स्थान में अउ-अव्। उदाहरण—ऐंठा के स्थान में अइँठा, चैत के स्थान में चइत, धौर के स्थान में धउर।

साथ ही ऐसे भी उदाहरण मिलते हैं, जिनमें 'ऐ' का उच्चारण 'अय्' और 'औ' का उच्चारण 'अव्' होता है।

यथा—धौद के स्थान में धवद। बैर के स्थान में बयर। बैल के स्थान में बयल।

संभव है, ये 'अय्'। अव् राग वाले शब्द पश्चिम के आगत शब्द हों।

साधारण बोलचाल में द्रुतगति के उच्चारण में सन्ध्यक्षर स्वर के रूप में भी इनका उच्चारण सुना जाता है, जिसमें 'ऐ' के एक उच्चारण में सन्ध्यक्षर की गति 'अ' से 'इ' की ओर और दूसरे में 'अ' से 'ए' की ओर एवं 'औ' के एक उच्चारण 'अ' से 'उ' की ओर और दूसरे में 'अ' से 'ओ' की ओर रहती है।

कोश में इन भेदों के प्रदर्शन के लिए अलग लिपि-चिह्न का प्रयोग नहीं किया गया है, बल्कि बिहारी बोलियों में जो रूप सामान्यतः प्रचलित हैं, वही दिये गये हैं। अइ और अउ के उच्चारण में तो स्वरानुक्रम वाला रूप दिया गया है और अय् तथा अव् वाले रागात्मक रूपों को सन्ध्यक्षर द्योतक लिपि-चिह्न ऐ तथा औ द्वारा ही संकेतित कर दिया गया है। बिहारी उच्चारण के अनुसार तो अय् और अव् वाले रूप ही देना चाहिए

था, किंतु हिंदी में और इन रूपों में संध्यक्षर स्वर तथा इन्हीं मात्राओं का प्रयोग होता है, इसलिए इस कोश में इसी हिंदी प्रचलित रूप का आश्रय लिया गया है।

यदि किसी क्षेत्र से 'अइ' और 'अउ' वाले रूपों का रूपांतर 'ऐ' और 'औ' वाला रूप प्राप्त हुआ है तो उन रूपों का भी यथास्थान समावेश कर दिया गया है। यथा—कँइत, कँत, कउर, कौर।

य, व की श्रुति

किसी शब्द में इकार या उकार के बाद यदि कोई दूसरा स्वर हो तो दोनों स्वरों के बीच क्रमशः 'य' और 'व' की श्रुति होती है। यह श्रुति बराबर लिखी नहीं जाती है। इसलिए हमने कहीं श्रुति सहित रूपों का व्यवहार किया है और कहीं श्रुति रहित। जहाँ श्रुतियों का व्यवहार नहीं किया गया है, वहाँ भी ये उपर्युक्त रूप में समझी जा सकती हैं। यथा—करिआ-करिया, अँखुआ-अँखुवा।

अनुस्वार और अर्धानुनासिक

इस कोश में शब्द के मध्य के निःस्वर पंचमवर्ण अनुस्वार के रूप में व्यवहृत हुए हैं और स्वरों के अनुक्रम में ये सबसे पहले रखे गये हैं।

बिहारी के किसी शब्द में अंत के दो या दो से अधिक अक्षरों के पूर्व का अनुस्वार अर्धानुनासिक रूप में परिणत हो जाता है। यथा–अँटल, अँगेढ़िहा, अंकुर, अँकरियाइल।

संस्कृत के अनुस्वारयुक्त तत्सम शब्द यदि दो अक्षरोंवाले हों तो बिहारी के तद्भव रूप में उस शब्द के पंचमवर्ण के पूर्व का 'अ' स्वर दीर्घ और अर्धानुनासिक हो जाता है। यथा—पंक से पाँक, वंट से बाँट, षंढ से साँढ़।

कोश में सर्वत्र अनुस्वार की तरह अर्धानुनासिक भी वर्णानुक्रम में स्वरों के पूर्व ही रखे गये हैं। अनुस्वार और अर्धानुनासिक में कोई पौर्वापर्य नहीं बरता गया है।

अनुस्वार अथवा पंचम वर्ण का संयुक्त रूप

अनुस्वार अथवा पंचम वर्ण के बाद यदि तृतीय या चतुर्थ वर्ण का संयोग हो तो बिहारी में ऐसे शब्दों के चार रूप संभव हैं—पंचम के साथ पंचम, अर्धानुनासिक के साथ मात्रा समतोलन के नियमानुसार दीर्घीकरण अथवा दीर्घीकरण के साथ पंचम वर्ण का व्यवहार। चतुर्थ वर्ण अनुनासिक के साथ तो अपने असली रूप में रहता है, अन्यथा 'ह' के साथ संयुक्त होकर महाप्राण नासिक्य ध्वनि के रूप में परिणत हो जाता है। जैसे—

अनुस्वार अथवा पंचम और तृतीया या चतुर्थ के संयुक्त रूप	द्वित्व या नासिक महाप्राण	अर्धानुनासिक	नासिक
लंबा/लम्बा	लम्मा	लाँबा	लामा
खंभा/खम्भा	खम्हा	खाँभा	खाम्हा
कंधा/कन्धा	कन्हा	काँधा	कान्हा

इनमें से प्रथम दो रूप, जो अधिक प्रचलित हैं, वे ही यहाँ इस कोश में दिये गये हैं।

ड़ और र

बिहारी भाषाओं में 'ड़' और 'र' का भेद तो है, किन्तु इन दोनों के उच्चारण में नियमितता नहीं है—विशेषतः मैथिली में। अतः एक ही शब्द में ये दोनों उच्चारण संभव हैं, कभी 'ड़' कभी 'र'। यथा—अँगेढ़िहा, अँगेरिहा; अँगेड़ी, अँगेरी। इस कोश में यथासंभव ये दोनों ही रूप दिये गये हैं। किंतु जहाँ ऐसे दोनों रूप नहीं भी हों, वहाँ भी दो रूप संभावित समझने चाहिए। 'ड़' और 'र' के इस विकल्प से मूल शब्द के अर्थ में कोई भेद नहीं होता है। ऐसे स्थलों में उन्हें सस्वन ही मानना संगत होगा।

मगही में कभी-कभी महाप्राण ध्वनि में विपर्यय भी हो जाता है, यथा—'चढ़ के' के स्थान में 'चहड़ के'।

हमने कोश में निम्नलिखित क्रम का अनुसरण किया है—

कोश में व्यवहृत क्रम

१। कोश के आरम्भ में अक्षर-शीर्षक 'अ', 'आ' आदि १६ प्वाइंट काले में दिया गया है।

२। इसके बाद वर्णानुक्रम से कृषिवाची मूल शब्द दिये गये हैं। ये १२ प्वाइंट सं० १ में हैं।

३। शब्दों के पश्चात् निर्देश चिह्न (—) देकर गोल कोष्ठ में व्याकरण संकेत (सं०, क्रि०) आदि दिये गये हैं।

४। तत्पश्चात् मूल शब्द का प्रधान पारिभाषिक अर्थ दिया गया है। यदि एक शब्द के कई पारिभाषिक अर्थ हैं, तो किसी भी अर्थ के पहले कोष्ठक में संख्या-क्रम देकर विभिन्न अर्थों का उल्लेख किया गया है। इसमें प्रयास यही रहा है कि अर्थ की प्रधानता के अनुसार ही उनका क्रम भी हो। यदि उस शब्द का कोई सामान्य अर्थ भी है, तो वह उसी क्रम में अंत में, दिया गया है।

५। अर्थ के पश्चात् जिस क्षेत्र में वह अर्थ प्रचलित है, उस क्षेत्र का संक्षिप्त रूप कोष्ठक में दिया गया है। यदि एक से अधिक क्षेत्रों में वह अर्थ प्रचलित है, तो उन सभी क्षेत्रों का संक्षिप्त रूप दिया गया है। इस संक्षिप्त रूप का अर्थ है कि या तो वह शब्द उस अर्थ में निर्दिष्ट क्षेत्र में प्रचलित है, अथवा उक्त अर्थ में उस क्षेत्र से संगृहीत हुआ है। उसका यह अर्थ कदापि न समझा जाय कि केवल उक्त क्षेत्र में ही वह शब्द अथवा अर्थ प्रचलित है। संभव है, वह दूसरे क्षेत्रों में भी हो। यहाँ मुख्यतः इसलिए उस क्षेत्र का उल्लेख किया गया कि उक्त शब्द अथवा अर्थ निर्दिष्ट क्षेत्र से ही संगृहीत हुआ है।

अर्थ सफेद पाइका सं० १ मोनो टाइप में दिया गया है।

६। कोष्ठक में क्षेत्र-निर्देश के पश्चात् यदि उक्त शब्द का कोई दूसरा भी पर्यायवाची शब्द है, तो उसका भी 'दे० (देखिए)' के बाद उल्लेख कर दिया

गया है। यह दे० "........." कभी-कभी मूल शब्द के बाद में ही प्रयुक्त हुआ है और वहाँ अर्थ न देकर केवल पर्याय का निर्देश कर दिया गया है, जिससे कि उस पर्याय के आगे वह देख लिया जाय।

७। इसके उपरान्त 'पर्या०' (पर्याय) देकर पारिभाषिक शब्द के अनेक पर्याय दिये गये हैं और प्रत्येक पर्याय के आगे गोल कोष्ठक में क्षेत्र का संक्षिप्त रूप है। एक से अधिक पर्याय के रहने पर सभी का पूर्वोक्त क्रम से उल्लेख किया गया है। ये सभी पर्याय बिहारी भाषाओं के विभिन्न क्षेत्रों में प्रयुक्त शब्द हैं। यत्र-तत्र आजमगढ़ और बनारस के आस-पास के भी शब्द दे दिये गये हैं; क्योंकि ये दोनों स्थान भोजपुरी से सम्बद्ध हैं। ऐसे शब्दों के आगे भी स्थान-निर्देश कर दिया गया है।

८। पर्यायों के बाद बड़े कोष्ठकों में कोश के मूल शब्द के वैयुत्पत्तिक या पुनर्निर्मित समरूप दिये गये हैं। इनमें यथासंभव शब्द के ऐतिहासिक विकास को ध्यान में रखा गया है। साथ ही कहीं व्युत्पत्ति के साथ और कहीं बिना व्युत्पत्ति के भी मूल शब्द के तत्सम संस्कृत शब्द और आगे तद्भव, पालि, प्राकृत तथा आधुनिक प्रादेशिक भाषाओं के पर्याय रूप दे दिये गये हैं। प्रत्येक शब्द के आगे कोष्ठक में तत्तद् भाषा का संक्षिप्त रूप निर्दिष्ट है। इसके अतिरिक्त इसी कोष्ठक में शब्दों की व्युत्पत्ति या पुनर्निर्मिति-विषयक विभिन्न मत भी यथास्थान निर्देश के साथ दिये गये हैं। यहाँ जिस पुस्तक अथवा लेखक का नाम लिखा गया है, उसके संक्षिप्त रूप के पहले एक निर्देश-चिह्न लगा दिया गया है।

हमारी लोकभाषाओं में कई ऐसे शब्द भी मिलते हैं, जो संस्कृत के विभिन्न कोशों में तो उसी रूप में सम्मिलित हैं, पर संस्कृत पालि और प्राकृत के साहित्य में उनका प्रयोग नहीं मिलता। ऐसे स्थलों में संस्कृत, पालि, प्राकृत आदि के कोशों से उन शब्दों के उद्धरण दे दिये गये हैं और अन्त में उन कोशों के संक्षिप्त रूप कोष्ठक में दिये गये हैं। जैसे—'काढ़ा' के लिए 'कटाह' और 'पैंड़ा' के लिए 'पँएड़'।

यत्र-तत्र आवश्यकतावश कोष्ठक के अन्दर और कहीं-कहीं बाहर भी, शब्द की विशेष व्याख्या के लिए 'टि०' (टिप्पणी) देकर विस्तृत विवरण या अर्थ दिया गया है।

कोष्ठक के अन्दर व्युत्पत्ति आदि के रूप तिर्यगक्षर (१२ प्वाइंट इटालिक्स) में दिये गये हैं।

शब्दार्थ-निरूपण

इस कोश में बिहार प्रदेश के विभिन्न जिलों अथवा क्षेत्रों में बसनेवाले कृषक-वर्ग में प्रचलित और प्रयुक्त होनेवाले कृषि-संबंधी पारिभाषिक शब्द ही रखे गये हैं। इसमें यथाश्रुत मूल शब्द रखे गये हैं, उनमें कोई साहित्यिक संशोधन नहीं किया गया है। इन शब्दों के मूल रूप में होते हुए भी इनमें उच्चारण-ध्वनि का निर्देश नहीं किया गया है। ध्वनि के लिए आगे कुछ प्रक्रियात्मक नियम दिये जा रहे हैं, जिनसे उनकी मूलगत ध्वनि का ज्ञान हो जाने से ऐसे ध्वनि-चिह्नों के प्रयोग की आवश्यकता ही नहीं रह जाती।

ये सभी मूल शब्द प्रातिपदिक रूप में रखे गये हैं। इनके विभक्त्यन्त रूप का प्रयोग यहाँ नहीं किया गया है। बिहार की तीनों भाषाओं में शब्दों के जहाँ समान रूप हैं, वहाँ वे उन्हीं रूपों में दिये गये हैं। पर किसी शब्द के रूप में भेद होने पर उस भिन्न रूप शब्द को मूल शब्द मानकर पृथक् अपने अनुक्रम में रखा गया है।

अर्थ समान होने पर तीनों भाषाओं में पाये जानेवाले भिन्न रूप शब्द पर्याय के रूप में मूल शब्द के आगे या अर्थ के बाद दे दिये गये हैं।

एक ही शब्द के अनेक अर्थ होने पर उन अर्थों को अनुक्रम-संख्या देकर अलग-अलग दिखाया गया है।

जहाँ आवश्यक समझा गया है वहाँ वस्तुओं के अर्थ और रूप को स्पष्ट करने के लिए चित्र भी दे दिये गये हैं।

इन शब्दों को मैथिली, मगही, भोजपुरी या भागलपुरी आदि बोलियों की सीमा में बाँधने का प्रयास नहीं किया गया है, बल्कि तत्तद् भाषा-क्षेत्र के अंतःपाती क्षेत्र-विशेष के नाम का संकेत कर देना ही हमारा आशय है। अतः सामान्यतः हमने जिलों अथवा उनके अन्दर के क्षेत्रों के नाम दे दिये हैं। मैथिली, मगही, भोजपुरी आदि का उल्लेख असार्वत्रिक है। किन्तु ये सभी उल्लिखित क्षेत्र मै०, मग०, भोज० और भाग० के अन्दर ही आते हैं। इन भाषाओं के क्षेत्र की सीमा के बाहर का कोई क्षेत्र इनमें सम्मिलित नहीं है।

अबतक भाषा-वैज्ञानिकों ने बिहार की पटना कमिश्नरी, तिरहुत कमिश्नरी, और भागलपुर कमिश्नरी के संतालपरगने के कुछ भागों और संताली को छोड़कर सभी जिलों में बोली जानेवाली बोलियों का मैथिली, मगही और भोजपुरी के ही नाम से वर्गीकरण किया है। कोश में दिये हुए अपने मानचित्र में भी हमने इसी मान्यता का अनुसरण किया है। परन्तु इसके प्रतिकूल आज भागलपुरी क्षेत्र के कुछ कंठों से सहज मातृभाषा-प्रेम से प्रेरित एक अस्फुट आन्दोलित स्वर सुनाई पड़ रहा है कि सहरसा जिले के उत्तरी भाग को छोड़कर संपूर्ण भागलपुर कमिश्नरी की बोली 'भागलपुरी' है, जो मैथिली से सर्वथा भिन्न है। ग्रियर्सन ने इसे 'छिका-छिकी' कहा है। किन्तु हमें यहाँ न तो इसका भाषा-वैज्ञानिक अध्ययन ही प्रस्तुत करना है और न इसके पक्ष-विपक्ष में हमारा कोई आग्रह ही है। कोश प्रस्तुत करते समय मुख्यतया हमारा यही ध्यान रहा है कि भाषाओं का क्षेत्रीय महत्त्व होने के कारण उनका निर्देश भी क्षेत्र-विशेष के नाम से ही हो। अतः हमने सर्वत्र क्षेत्र-विशेष का उल्लेख किया है, न कि किसी भाषा-विशेष का। तुलनात्मक अध्ययन की सुविधा के लिए क्षेत्रीय विविधताओं का निर्देश अधिक उपयुक्त है। क्षेत्रीय विविधताओं के निर्देश में यहाँ केवल जिलों का ही निर्देश नहीं किया गया है, प्रत्युत जिलों के अवान्तर क्षेत्रों का भी निर्देश किया गया है। यथा—द० मु०, द० भा०, द० प० शाहा० आदि।

क्रिया का मूल रूप

(१) इस कोश में क्रिया का मूल रूप 'ल' प्रत्ययान्त लिया गया है। यथा—अँटल=अँटना, करल=करना आदि।

सामान्यतया बिहार की तीनों भाषाओं में क्रियार्थक संज्ञा में 'ल' प्रत्यय ही लगता है। इसलिए यहाँ यही सामान्य रूप लिया गया है। इसके अतिरिक्त 'ब' प्रत्ययान्त एक और रूप भी है, जो मैथिली क्षेत्र में प्रचलित है। यथा—खाएब, जाएब आदि। परन्तु यह रूप विशेष स्थलों में ही व्यवहृत होता है। इसलिए क्रियार्थक संज्ञा का यहाँ सामान्य रूप 'ल' प्रत्ययांत ही रखा गया है।

मगही, मैथिली, भोजपुरी और भागलपुरी सभी भाषाओं में समान रूप से 'ब' भविष्यार्थक प्रत्यय है, किंतु मगही में विशेष क्षेत्र में 'ब' के बदले 'म' का भी प्रयोग होता है, यथा=जाएब=जाएँगे, जायम—जायँगे।

बिहारी भाषाओं की क्रियाओं के भूतकालिक रूपों में सामान्यतया 'ल' प्रत्यय लगता है। यह 'ल' कृत् प्रत्यय है। अतः यह सामान्यभूत और दूसरे भूतकालिक भेदों का भी प्रत्यायक है। साथ ही यह 'ल' क्रियाजन्य विशेषण प्रत्यय भी है।

उदाहरण—अँटल=अँटा हुआ, समाया हुआ।

(२) प्रेरणार्थक क्रिया का मूल रूप 'आवल' प्रत्यय लगाकर रखा गया है। यथा—अँटल का अँटावल, अँटकल का अँटकावल।

'आवल' का कहीं-कहीं 'आयल' रूप होता है। यथा—अँटकल से अँटकायल। अँटकावल और अँटकायल—इन दोनों रूपों में क्रमशः 'व' और 'य' की श्रुति है। तदनुसार इनके रूप आउल, आओल और आइल, आएल भी लिखे जा सकते हैं। इन रूपों का समावेश सर्वत्र नहीं किया गया है; क्योंकि उन्हें स्वयं समझा जा सकता है। 'य' या 'व' श्रुतिविषयक नियम आगे दिये जा रहे हैं।

(३) 'आवल' और 'आयल' प्रत्यय प्रातिपदिक रूपों से धातु (नाम-धातु) बनाने में भी प्रयुक्त होते हैं। यथा—अँगुरी >अँगुरियावल, अँखुआ >अँखुआयल।

क्रिया का उपर्युक्त रूप ही इस कोश में व्यवहृत हुआ है। काल, वचन आदि के अनुसारी रूप इसमें छोड़ दिये गये हैं। हिन्दी का 'ना' प्रत्ययांत रूप बिहारी भाषाओं में नहीं होता।

जहाँ-जहाँ क्रिया के मूल रूप के लिए 'ल' प्रत्ययान्त क्रियार्थक संज्ञा का रूप यहाँ दिया गया है, वहाँ-वहाँ क्रिया के साथ प्रायः (वि०—विशेषण) का निर्देश करके विशेषण-विशिष्ट अर्थ भी दिये गये हैं। यदि कहीं ऐसा न भी हो, तो ऐसे स्थलों में सर्वत्र 'ल' प्रत्ययांत क्रिया रूप को विशेषण भी समझ लेना चाहिए और वहाँ वैसे अर्थों का अवबोध कर लेना उचित है।

क्रियाओं के आन्तरिक भेद—सकर्मक, अकर्मक का व्याकरण-संबंधी निर्देशों में उल्लेख करना आवश्यक नहीं समझा गया है; क्योंकि यह तो अर्थ और प्रयोग से ही जाना जा सकता है।

व्याकरण, व्युत्पत्ति तथा अर्थ-विषयक संक्षिप्त रूप

अ० क्रि०	अकर्मक क्रिया
अनु०	अनुकरणात्मक
अनुवा०	अनुवादात्मक
अल्पा०	अल्पार्थक
अल्पा० प्र०	अल्पार्थक प्रत्यय
अव्य०	अव्यय
अस्०	अस्त्यर्थक
उदा०	उदाहरण
कहा०	कहावत
क्रि०	क्रिया०
क्रि० प्र०	क्रिया-प्रत्यय
क्रि० वि०	क्रिया-विशेषण
टि०	टिप्पणी
दे०	देखिए
देशी	देशी
देशी प्र०	देशी प्रत्यय
धा०	धातु
ना० धा०	नाम धातु
ना० धा० प्र०	नाम धातु प्रत्यय
निषे०	निषेधात्मक
पुं०	पुंलिंग
प्रेर०	प्रेरणार्थक
मिला०	मिलाइए
मु० प्र०	मुस्लिम प्रयोग
मु० री०	मुस्लिम रीति
मुहा०	मुहावरा
यौ०	यौगिक
ला०	लाक्षणिक
लोको०	लोकोक्ति
वि०	विशेषण
वि० प्र०	विशेषण-प्रत्यय
विशे०	विशेष प्रयोग
वै०	वैकल्पिक प्रयोग

सं०	संज्ञा
संभ०	संभवतः
स० क्रि०	सकर्मक क्रिया
साह०	सादृश्यार्थक
सामा०	सामान्य
स्त्री०	स्त्रीलिंग
स्वा० प्र०	स्वार्थिक प्रत्यय

< से व्युत्पन्न।

> रूप-परिवर्त्तन।

√ संस्कृत के मूल धातु।

= सम, समार्थ, अर्थ।

? संभावित, संशयापन्न।

[ ] व्युत्पत्ति, दूसरी भाषाओं के पर्याय।

( ) (१) शब्द के आगे व्याकरणविषयक निर्देश, शब्द और विवरण के आगे स्थान-निर्देश, भाषा-निर्देश, कहीं-कहीं स्पष्टीकरण।

(२) मूल धातु के आगे उस धातु का अर्थ, कहीं मूल रूप में, कहीं हिंदी में।

(३) बड़े कोष्ठ के अन्तर्गत पुस्तक-निर्देश, भाषा-निर्देश, प्रत्यय-निर्देश।

× गुणात्मक, यौगिक वा समस्त पद का विग्रहीत रूप।

— पुस्तक-निर्देश, अर्थ का स्पष्टीकरण।

० संक्षिप्त रूप के आगे।

※ पुनर्निर्मित शब्द का संभावित रूप।

भाषाविषयक संक्षिप्त रूप

अँ०	अँगरेजी
अ०	अरबी
अव०	अवधी
अस०	असमिया
उ० प० मै०	उत्तर-पश्चिम मैथिली
उ० पू० मै०	उत्तर-पूर्व मैथिली
उ० मै०	उत्तरी मैथिली
उर्दू	उर्दू
ओ०	ओड़िया
क०	कन्नड़
कश्म०	कश्मीरी
काफि०	काफिरिस्तानी

कुमा०	कुमाऊँनी
गु०	गुजराती
ग्री०	ग्रीक भाषा
जर०	जर्मन भाषा
त०	तमिल
ते०	तेलुगु
द० प० मै०	दक्षिण-पश्चिम मैथिली
द० पू० मै०	दक्षिण-पूर्व मैथिली
द० मै०	दक्षिण मैथिली
दर०	दरभंगा
दर०-१	दरभंगा सदर और मधुबनी सबडिविजन की मैथिली
दरदी०	दरदी (कश्मीरी) भाषा
ने०	नेपाली
पं०	पंजाबी
प० मै०	पश्चिमी मैथिली
पश्त०	पश्तो
पहा०	पहाड़ी
पा०	पालि
पुर्त०	पुर्तगाली
प्रा०	प्राकृत
प्रा० फा०	प्राचीन फारसी
फा०	फारसी
बिहा०	बिहारी
भोज०	भोजपुरी
मग०	मगही
मग०-५	मगही ५—दक्षिण-पूर्वी अर्थात् शेखपुरा, बरबीघा (मुँगेर) में प्रयुक्त मगही
म० भा०	मध्य भारतीय (मिडिल इंडोआर्यन)
मरा०	मराठी
मल०	मलयालम
मार०	मारवाड़ी
मै०	मैथिली
रोमा०	रोमानी—योरप के जिप्सियों की भाषा
ल०	लहँदा

लै०	लैटिन
लो० जर०	लोग्रर जर्मनी
संता०	संताली
संस्कृ०	संस्कृत
सिं०	सिंधी
सिंह०	सिंहली
हिं०	हिंदी

भौगोलिक आधारविषयक संक्षिप्त रूप

अमे०	अमेरिका
आज०	आजमगढ़
उ०	उत्तर
उ० प०	उत्तर-पश्चिम (बिहार प्रदेश का उत्तरी पश्चिमी भाग)
उ० प० बि०	उत्तर-पश्चिम बिहार
उ० पू०	उत्तर-पूर्व बिहार
उ० भा०	उत्तर भागलपुर
उ० मुँ०	उत्तर मुँगेर
गं० उ०	गंगा के उत्तर (बिहार)
गं० द०	गंगा के दक्षिण (बिहार)
गया	गया (जिला)
चंपा०	चंपारन
चंपा०-१	चंपारन-१, बंगरी, चंपारन (दक्षिण)
चंपा०-२	चंपारन-२, अजगरवा, बड़कागाँव, चंपारन (पूर्वी चंपारन)
द०	दक्षिण (बिहार)
द० प०	दक्षिण-पश्चिम (बिहार)
द० प० शाहा०	दक्षिण-पश्चिम शाहाबाद
द० पू०	दक्षिण-पूर्व (बिहार)
द० बि०	दक्षिण बिहार
द० भा०	दक्षिण भागलपुर
द० मुँ०	दक्षिण मुँगेर
दर०	दरभंगा
दर०—१	दरभंगा-१, मधुबनी और सदर सबडिविजन
द० शाहा०	दक्षिण शाहाबाद
द० प० शाहा०	दक्षिण-पश्चिम शाहाबाद
प०	पश्चिम

पट०	पटना
पट०-१	पटना-१—नारायणपुर, एकंगरसराय, (पूर्वी) पटना
पट०-२	पटना-२—सोहसराय, बिहारशरीफ, (पूर्वी पटना)
पट०-३	पटना-३—सोहसराय, बिहारशरीफ, (पूर्वी पटना)
पट०-४	पटना-४—पटना नगर से दक्षिण का भाग
प० बि०	पश्चिम बिहार
प० शाहा०	पश्चिम शाहाबाद
पू०	पूर्व
पूर्णि०	पूर्णियाँ
पूर्णि०-१	पूर्णियाँ-१—दक्षिण पूर्णियाँ
पू० बि०	पूर्वी बिहार
बिह०	बिहटा—साउथ बिहार शुगर मिल्स, बिहटा, पटना (पटना नगर से १७ मील पश्चिम)
बिहा०	बिहार (प्रांत)
ब्राजि०	ब्राजिल (अमेरिका)
भाग०	भागलपुर
भाग०-१	भागलपुर-१—बिसनपुर, शंभुगंज (बाँका सबडिविजन), भागलपुर (द० भाग०)
भाग०-२	भागलपुर-२—मोहदीनगर, अमरपुर (पो०), भागलपुर (द० भा०)
मग०-५	मगही-५—बरबीघा, मुँगेर
म० प्र०	मध्य प्रदेश
म० शाहा०	मध्य शाहाबाद
मुँ०	मुँगेर
मुँ०-१	मुँगेर-१—तारापुर, मुँगेर (द० मुँ०)
मुज०	मुजफ्फरपुर
मै०-२	मैथिली-२—मुजफ्फरपुर का उत्तरी-पश्चिमी भाग
री०	रीगा—रीगा शुगर मिल्स, रीगा (पो०) (सीतामढ़ी सबडिवीजन) मुजफ्फरपुर (उत्तरी-पश्चिमी भाग)
शाहा०	शाहाबाद
शाहा०-१	शाहाबाद-श्रीशिवकुमार वर्मा, मक्रवारी (डुमराँव), शाहाबाद (द० शाहा०)
सा०	सारन
सा०-१	संपूर्ण सारन से तत्काल संगृहीत शब्द
हजा०	हजारीबाग
हरि०	हरिनगर—हरिनगर शुगर मिल्स, हरिनगर, चंपारन (पश्चिम चंपारन)

शब्द-संग्रह के विविध क्षेत्रों की सूची तथा उनका निर्देश

क्षेत्र-संकेत	संग्रहकर्त्ता का नाम	पता-ठिकाना
चंपा०-१	श्रीगणेश चौबे,	बँगरी, पो०-बँगरी, चंपारन (दक्षिण)
चंपा-२	श्रीविद्यानन्द सिंह,	अजगरवा, डाक०—बड़कागाँव, चंपारन (पूर्व)
दर०-१	श्रीजयानन्द झा,	सलेमपुर, डाक०—खैरा, कोढ़ा (थाना), पूर्णियाँ (द०)
पट०-१	श्रीकांत शास्त्री,	नारायणपुर, डाक०—एकंगरसराय, पटना (पूर्व)
पट०-२	श्रीहरिप्रकाश,	सोहसराय, बिहारशरीफ, पटना (पूर्व)
पट० ३	श्रीकृष्णदेव,	,, ,,
पट० ४	श्रीरामाधार शर्मा,	महेन्द्रू, पटना-६ (पटना-नगर से दक्षिण के निवासी)
बिह०,री०,हरि०	श्रीविक्रमादित्य मिश्र,	भावल, रामनगर, चंपारन (द० प०)
भाग०-१	श्रीरामस्वरूप चौधरी,	बिसनपुर, शम्भुगंज, भागलपुर (दक्षिण)
भाग०-२	श्रीपंचानन चौधरी,	मोहदीनगर, अमरपुर, भागलपुर (दक्षिण)
मग०-५	श्रीवाल्मीकिप्रसाद सिंह,	बरबीघा, मुँगेर
मुं०-१	श्रीसुरेश्वर पाठक,	तारापुर, मुँगेर (दक्षिण)
मै०-२	श्रीमुसाई झा,	अथरी, कटरा, मुजफ्फरपुर (उ० प०)
शाहा०-१	श्रीशिवकुमार लाल,	मझवारी, डुमराँव, शाहाबाद (उत्तर)
शाहा०-२	श्रीराजेश्वर प्रसाद,	मुरार, भोजपुर (परगना), शाहाबाद (द० प०)
सा०-१	श्रीअवधेन्द्रदेव नारायण,	दहियाँवा, छपरा

निर्देश-ग्रन्थ और उनके संक्षिप्त रूप

संक्षिप्त रूप	पुस्तक का नाम	लेखक, संपादक	स्थान	वर्ष
अग्रवाल०—	हिंदी के सौ शब्दों की निरुक्ति	डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल	ना० प्र० पत्रिका काशी	५४, २००६ वि०, पृ०-८६
अथर्व०—	अथर्ववेद			
अने०—	अनेकार्थसंग्रहकोश	श्रीहेमचंद्र	विद्याविलास प्रेस काशी	१६८५ वि०
अमर०—	अमरकोश (त्रिकांडशेषसहित)	श्रीविष्णुदत्त शर्मा,	खेमराज श्रीकृष्णदास, बंबई	१६२६ ई०
,,	,,	रामाश्रमी टीका	,, ,,	१९४४ ई०
अवधी०—	अवधी कोश	श्रीरामाज्ञा द्विवेदी	हिंदुस्तानी एकेडमी इलाहाबाद	१६५५ ई०
आक्स०—	आक्सफोर्ड इंगलिश-डिक्शनरी		आक्सफोर्ड, लंदन	१९५२ ई०

संक्षिप्त रूप	पुस्तक का नाम	लेखक, संपादक	स्थान	वर्ष
आप्टे०—	आप्टेज संस्कृत-इंगलिश-डिक्शनरी (परिवर्धित संस्करण)	श्रीवामनशिवराम आप्टे	प्रसाद-प्रकाशन, पूना	१९५७ ई०
इंग० संस्कृ०—	इंगलिश-संस्कृत-डिक्शनरी	श्रीमोनियर विलियम	मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी	१६५७ ई०
इटि० या०—	इटिमोलोजीज ऑफ् यास्क	डॉ० सिद्धेश्वर वर्मा	होशियारपुर	१६५३ ई०
गुज० इंग०—	गुजराती-इंगलिश-डिक्शनरी	श्रीबेलशरे	बंबई–२	
गुप्त०—	ग्रामोद्योग और उनकी शब्दावली	डॉ० हरिहरप्रसाद गुप्त	दिल्ली	१६५६ ई०
ग्रामे०—	ग्रामेटिकल संस्कृत इंगलिश-डिक्शनरी	डा० सूर्यकांत शास्त्री		
ग्रिय०—	बिहार पीजेंट लाइफ	जार्ज ग्रियर्सन	गवर्नमेंट प्रेस, पटना	१६२६ ई०
घाघ०—	घाघ और भड्डरी	श्रीरामनरेश त्रिपाठी	प्रयाग (द्वितीय संस्करण)	१६४९ ई०
चेम्बर्स०—	चेम्बर्स इंगलिश-डिक्शनरी	रेवरेंड टी० डाविड्शन	लंदन	१९४६ ई०
त्रिक०—	त्रिकांडशेषकोश	श्रीविष्णुदत्त शर्मा	बंबई	१६२६ ई०
देशी०—	देशी नाममाला	श्रीहेमचंद्र	कलकत्ता-विश्वविद्यालय, कलकत्ता	१६३१ ई०
देशी ना०-	,,	,, पिशल	पूना	
दो० को०—	दोहाकोश	प्रो० बागची द्वारा संपादित		
निघ०—	निघण्टु निरुक्तसहित	दुर्गस्वामीकृत टीकासहित	बंबई,	
निरु०—	निरुक्त	,, ,,	,,	
नेपा०—	नेपाली-इंगलिश-डिक्शनरी	डा० आर० एल्० टर्नर	लंदन	१६३१ ई०
पा० स० म०—	पाइअ-सद्द-महण्णावो	पं० हरगोविंददास टी० सेठ	कलकत्ता	१६७६-८० ई०
पाणिनि०—	सिद्धांतकौमुदीस्थसूत्र-धातुपाठ		वाराणसी	१६४६ ई०
पाणिनि ग्रा०—	पाणिनि'ज ग्रामेटिक		जर्मनी	
पालि०—	पालि-इंगलिश-डिक्शनरी	टी० डब्ल्यू रेज डेविड्स	लंदन	१६५२ ई०

संक्षिप्त रूप	पुस्तक का नाम	लेखक, संपादक	स्थान	वर्ष
पालि० इ०—	पालि-इंगलिश-डिक्शनरी	आर० सी० चाइल्डर्स द्वारा संपादित	लंदन	
फैलन०—	ए न्यू हिंदुस्तानी-इंगलिश-डिक्शनरी	एस० डब्ल्यू० फैलन	वाराणसी	१८७६ ई०
बँगला०—	बँगला-संस्कृत-इंगलिश-डिक्शनरी	सर ग्रेव० सी० हॉटन,	लंदन	१८३३ ई०
बिहारी०—	बिहारी सतसई			
बृहत०—	बृहत् हिंदी-कोश		ज्ञानमंडल, वाराणसी	२००६ वि०
ब्लाक०—	ज्यूल ब्लाक का 'मराठी भाषेचा विकास' (ला फार्मेशन लैंगुए मराठे)	अनु० श्रीवासुदेव गोपाल परांजपे,	पूना	१९४१ ई०
भा० नि०—	भावप्रकाश निघंटु	श्रीब्रह्मशंकर मिश्र,	विद्याविलास प्रेस, काशी	२००६ वि०
भारतीय०—	भारतीय साहित्य (शोध-पत्रिका)	डॉ० विश्वनाथप्रसाद,	हिंदी-विद्यापीठ, आगरा-विश्वविद्यालय, आगरा	
मरा० हिं०—	मराठी-हिंदी-शब्द-संग्रह	ग० र० वैशम्पायन	पूना	१९४६ ई०
माडर्न गुज०—	माडर्न गुजराती-इंगलिश-डिक्शनरी	मेहताद्वय द्वारा संपादित	बड़ौदा	१९२५ ई०
मुंडारी०—	मुंडारी-इंगलिश-डिक्शनरी	भादुरी	कलकत्ता-विश्वविद्यालय	१९३१ ई०
मेदि०—	मेदिनीकोश		विद्याविलास प्रेस काशी	१९९७ वि०
मैथिली०—	मैथिली-भाषा-कोश	पं० दीनबंधु झा	दरभंगा	१८७२ शकाब्द
मो० वि० डि०—	संस्कृत-इंगलिश-डिक्शनरी	एम्० एम्० विलियम्स	लंदन	१९५१ ई०
लिंग्वि०—	लिंग्विस्टिक सर्वे ऑफ् इंडिया (जिल्द-१, भाग-१; जिल्द-५, भाग २)	जार्ज ग्रियर्सन	कलकत्ता	१९२७-१९३० ई०
रा० त०—	राजतरंगिणी		बंबई	

संक्षिप्त रूप	पुस्तक का नाम	लेखक, संपादक	स्थान	वर्ष
व्यु० को०—	मराठी-व्युत्पत्ति-कोश	श्रीकृष्णाजी पांडुरंगजी कुलकर्णी केशवजी भिकाजी धवले	बंबई-२	१९४६ ई०
शब्दा—	शब्दार्थ-चिंतामणि	सुखानंद-कृत	आगरा	१९२१ वि०
शाश्व०—	शाश्वत कोश		ओरियंटल बुक-एजेंसी, पूना	१९२९ ई०
शिव०—	शिवकोश	श्रीशिवदत्त मिश्र	पूना	१९५२ ई०
संता० डि०—	संताली-इंगलिश-डिक्शनरी	ए० कैम्पबेल	पोखुरिया, मानभूम	१८९९ ई०
संस्कृ० शब्द०—	संस्कृत-शब्द-सागर	श्रीजीवानंद विद्यासागर	कलकत्ता	१९०० ई०
सुश्रुत०—	सुश्रुतसंहिता			
स्कॉटिश०—	स्कॉटिश नेशनल डिक्शनरी (तीन खंड)	डा० विलियम ग्रांट और डेविड डी० म्यूरिसिन, एडिनबर्ग		१९४१-५२ ई०
हला०—	हलायुध-कोश		सरस्वती-भवन, वाराणसी	२०१४ वि०
हला०—	,,	थामस आफरेट	एडिनबरा	१८६१ ई०
हाब्स०—	हाब्सन जाब्सन	कर्नल हेनरी युले	लंदन	१९०३ ई०
हिंदी उ०—	हिंदी-उर्दू-कोश	श्रीरामचंद्र वर्मा	हिंदी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय, बंबई	१९०३ ई०
हिंदु०—	हिंदुस्तानी कोश	श्रीहरिशंकर शर्मा	आगरा	२००९ वि०
हिंदु० इंग०—	हिंदुस्तानी-इंगलिश-डिक्शनरी	एस० डब्ल्यू० फैलन (डॉ० सूर्यकांत द्वारा संपादित)		
हिं० मरा०—	हिंदी-मराठी-व्यवहार-कोश	ग० र० वैशम्पायन	पूना	१९४९ ई०
हिं० श० सा०—	हिंदी-शब्द-सागर	श्यामसुंदरदास आदि	ना० प्र० स० काशी	१९१६ ई०

कृषिकोश

अ

अँइठा—(सं०) शंख के समान एक कीड़ा। घोंघा(चंपा०-१)। [*आवेष्ट*, (संस्कृ०), *ऐंठा*—(हिं० श० सा०)]



अँइठा

अँइठी-(सं०) (१) वह मजदूर, जो मिट्टी ढोते समय कुदाल चलानेवाले के पास रहता है (चंपा०-१)। (२) खेत के बीच का वह भाग, जहाँतक सोह कर मजदूर दूसरा 'पाह' आरंभ करता है (चंपा०-१)। [*देशी, मिला०*—*आवेष्ट*]

अँकटा—(सं०) गेहूँ, चना, मसूर, खेसारी आदि के दानों में मिलनेवाला घास की जाति का एक अनाज, जिसमें छोटे-छोटे गोल दाने होते हैं; इसकी दाल भी बनाई जाती है। (द० मैं०, दर०-१, पट०-४)। पर्या०—अँकरा, अँकरी (प० मैं०, शाहा०)। अटका (भाग-१)। [*अँकटा* < *अकटा* < *अकतअ* <*अक्रतक*, *मिला०*—*अक्कट* (प्रा०; दो० को० ७६)]

अँकड़उर—(सं०) कँकरीली मिट्टी (शाहा०)। दे०—अँकड़ौर। [*अँकड़+उर*<*अंकरपुर*]

अँकड़ही-(वि०) दे० अँकड़ाह (बिहा० आज०)।

अँकड़ा—(सं०) (१) बड़ा कंकड़ (शाहा०)। (२) गेहूँ, जौ आदि में मिलनेवाला एक प्रकार का कंकड़। दे० अँकरा। पर्या०—गँगटा—(द०-पू०), अँकड़ (भोज०, पट०)। [*अंकुर*]

अँकड़ाह—(वि०) वह मिट्टी, जिसमें कंकड़ हो (चंपा०)। पर्या०-अँकड़ही-(बिहा० आज०) [*अँकड़* + *आह* (प्र०)<*अंकुर*]

अँकड़ी-(सं०)(१) एक प्रकार की घास, जो पशुओं का खाद्य है (प०)। दे०-अँकता। पर्या०-अँकरी (पट०-४)।(२) छोटा और महीन कंकड़ (बिहा०, आज०)। पर्या०—गँगटी—(द० पू०) अँकड़ी (आज०)। इँकड़ी, (३) अनाज में पाया जानेवाला छोटा कंकड़। [*देशी (?) मिला०*—*अंकुर*]

अँकड़ैल-(वि०) कँकड़ीली मिट्टी—(सा०)। दे०—कँकराही। [*अँकड़+एल*<(इल)—(संस्कृ०)]

अँकड़ौर- (वि०) कँकड़ीली मिट्टी-(प०)। दे०-कँकराही। [*अँकड़*+*और* (प्र०)]

अँकता—(सं०) एक प्रकार की घास, जो पशुओं का खाद्य है (प० पट०, गया, द० पू०)। पर्या०-अटका, अकटा (द० भाग०), अँकरी, अँकड़ी (प०), भेखरी (गया, उ० प०), भिलोर (उ०-प०)। [*अँकता*<*अकतअ*< *अक्रतक*, *मिला०* अक्कट (प्रा० अप०)—*दो० को०*—७६]

अँकरहिया मटर—(सं०) एक प्रकार की छोटी मटर (भोज० आज०)। [*अँकर*+*हिया* (प्र०) +*मटर*]

अँकरा—(सं०) गेहूँ में मिलनेवाला एक प्रकार का घासपात, (प०मैं०, शाहा०)। दे०-अँकटा।[दे०-*अँकटा*]

अँकरी—(सं०)(१) एक प्रकार की घास, जो पशुओं का खाद्य है (प०)। दे०-अँकता। (२) गेहूँ, जौ आदि में मिलनेवाला एक प्रकार का घासपात (प० मैं०, शाहा०)। दे०—अँकटा। [*अकर*+*ई०*<*अँकरा*, [दे०-*अँकटा*]

अँकवार, अकवार-(सं०) (१) दोनों भुजाओं के अंदर भर आनेवाली फसल का परिमाण। पर्या०—अकवारा, पाँजा (पट०,



अँकवार

द०-पू० मं०, चंपा०), अँकवार (आज०)। (२) दोनों भुजाओं से आलिंगन या अंक में लगाने की रीति, इस अर्थ में प्रायः भेंट शब्द के साथ समस्त रूप में प्रयोग होता है, यथा—अँकवार भेंटल, मिला०–अँकोर। [*अंकपालि, अंकमाल*]

अँकुड़ा—(सं०) मिलों में कोयला टालने या उसकाने के लिए व्यवहृत होनेवाली लोहे की छड़, जिसका अगला छोर टेढ़ा और दूसरी ओर मूठ-जैसा बना होता है, जो हाथ से पकड़ने लायक होता है (हरि०, री०)। पर्या०—कोलटारा (बिह०) [*मिला०* अंकुर, *अंकुश*]

अँकुढ़ा—(सं०) गेहूँ का नया अंकुर (उ०-प०)। पर्या०—अँकुर (भाग०-१) डिभ्भी, डाभी (भाग०-१), सुइया (भाग०-१)। [*अंकुर*]

अँकुरा—(सं०) प्रथम-प्रथम जमीन से उगा हुआ पौधा। [*अंकुर*]

अँकुराएल—(वि०) वह ऊख, जिसमें सद्यः अंकुर निकला है (गया), अंकुरित। दे०—पुआरी। पर्या०—पनपा (पट०-४)। [*अँकुरा+एल*]

अँकुरी—(सं०) (१) पकने के पहले भोजन के लिए कटा हुआ कच्चा अनाज (द० भाग०, चंपा०) दे०–गदरा। (२) पानी में फुलाया हुआ चना, जिसमें अंकुर निकल आया हो।

अँकुसी—(सं०) (१) पेड़ से फल तोड़नेवाली लग्गी के अंतिम छोर पर बाँधी हुई एक छोटी लकड़ी। पर्या०–कानी (मं०द०भाग०, पट०-४, चंपा०)। (२) हाथी के नियंत्रण के लिए महावत द्वारा प्रयुक्त लोहे का एक प्रसिद्ध हथियार, जिसको 'अंकुश' भी कहते हैं। [*अंकुश*]

अँकुसी

अँखमुँदनी—(सं०) मवेशियों की आँख ढँकने के लिए बाँस की कमानी का बना हुआ ढक्कन, जिसके ऊपर कपड़ा मढ़ा रहता है। पर्या०—पट्टर (भोज०), टप्पर (चंपा०), छोपनी (शाहा०), टोकनी—(पट०, गया), खोलसा (मं०)। [*अँख+मुँदनी<अक्षि+मुद्रणी*]



अँखमुंदनी

अँखरा—(वि०) ऐसा टोकड़ा, जिसके छेदों को बन्द करने के लिए मिट्टी और गोबर नहीं लगाया गया हो। (चंपा०-१, पट०-४, भाग०-१, गया) [*अक्षार=अ+क्षार* (=क्षाल)=शुद्धि]

अँखवा—(सं०) ऊख के टोने का आँख-जैसा वह स्थान, जहाँ से अंकुर निकलता है (द० प० शाहा०, भाग० १) दे०—आँख। [*अक्ष*]

अँखिया—(सं०) (१) ऊख का अंकुर (उ० मं०), (पट०-४)। दे०—आँख। (२) ऊख के टोने का आँख-जैसा वह स्थान, जहाँ से अंकुर निकलता है (उ० मं०)। दे०—आँख। पर्या०—अँखुआ (भाग०-१) (३) गेहूँ और चावल के आटे को मिलाकर तथा उसे गूँधकर और आँख की आकृति का पिंड बनाकर पानी में उबाला हुआ पीठा (पट०-४)। [*अक्ष, अक्षि, अक्षिका*]

अँखियाय—(सं०) ऊख के टोने का आँख-जैसा वह स्थान, जहाँ से अंकुर निकलता है (द० भाग०) दे०–आँख। [*अक्ष, अक्षिका, अक्षीव*]

अँखुअइल—(क्रि०) दे०–अँखुआइल।

अँखुआ—(सं०) (१) ऊख के टोने का आँख-जैसा वह स्थान, जहाँ से अंकुर निकलता है (पट०, पू० मं०, भाग०-१)। दे०—आँख। (२) ऊख का अंकुर (पट०, भाग०-१, आज०)। दे० आँख। (३) चावल से निकला हुआ वह कण, जिसमें अन्न का कुछ अंश रहता है (चंपा०-१)। [*आँख+उआ<अक्ष, अक्षि*] (४) बाजरे का पहला अंकुर। पर्या०—सूआ, टिभिआ (द० मुं०), सुइया (द० भाग०), अँखुआ, अँखुवा (आज०) अँखुआएल (क्रि०)=अंकुर फूटना। सुआएब (क्रि०)=अंकुर फूटना। [*अक्ष, अक्षि, अक्षिवत्*] [*सूआ, सुइआ<सूचिका* । (सुआएल=सुआ+एल–क्रि० प्र०।]

अँखुआइल—(वि०) (१) अंकुरित पौधा (शाहा०-१, चंपा०)। (क्रि०) (२) अंकुरना (शाहा०-१)। [*अँखुआ+इल (प्र०)<अँखुआ<अक्ष, अक्षि, अंकुर*]

अँखुआएल—(वि०) वह ऊख, जिसमें सद्यः अंकुर निकला हो (पट०)। दे०—पुआरी। पर्या०—अँखुअइल (भाग०—१) [*अँखुआ+एल* (=इल – वि० प्र०) <*अक्षिमत्*]

अँखौता—(सं०) खंभे की दोनों कानियों (शाखाओं) में लगी हुई धुरी, जिसपर लाठा लटकता है (द० मुं०, पट०-४)। दे०–अखौता। पर्या०–अखौता (भाग०-१) [*अक्षवत्, अक्षवाट*]



अँखौता

अँग उँग—(सं०) दे०—अँग वुँग।

अँगऊँ—(सं०) खलिहान में तैयार नये अन्न में से ब्राह्मण के लिए निकाला हुआ अंश (प०)। दे०—अँगवुँग तथा बिसुनपिरित। [*अग्रान्न*]

अँगवुँग—(सं०) गृहस्थ के द्वारा ब्राह्मण के लिए अन्न में से निकाला हुआ अंश (शाहा०)।

अँगरवार—(सं०) तुरत कटे हुए ऊख के रखने का स्थान (शाहा०)। दे०–टोनियारी। [*अँगर∠अग्रकाण्ड, अँगर+वार<अग्रकाण्ड-वाट*]

अँगरा—(सं०) (१) तेज पछवा हवा के कारण होनेवाला अनाज का एक रोग (पाला) (उ० प०, चंपा०, शाहा०)। पर्या०—झरका (सा०, मं०, पट०-४), मुरका=अफीम में लगा एक रोग (चंपा०)। (२) धान की फसल का एक रोग, इससे धान का पौधा पीला हो जाता है और जलने लगता है (चंपा०)। [*अंगार*] टि०—इस रोग से बचने के लिए केले का थंभ खेत में गाड़ दिया जाता है (चंपा०-१)।

अँगरवाह—(सं०) कोल्हू के लिए ऊख के लंबे-लंबे टुकड़े काटनेवाला व्यक्ति (प०)। दे०—कानू। [*अँगार+वाह<अग्रकाण्ड+वाह*] टि०—'वाह' या 'वाहा' 'हलवाहा' का शब्दांश है, जो दूसरे शब्दों के अंत में जुटकर 'करनेवाला' आदि अर्थ में प्रयुक्त होता है—जैसे, चरवाहा=चरानेवाला, भैंसवाहा=भैंस चरानेवाला आदि।

अँगवरिया—(सं०) मजदूरी में नगद या अनाज न लेकर तीन दिन खेत के मालिक का हल चला लेने के बाद एक दिन के लिए उसी हल से अपना खेत जोतनेवाला हलवाहा। पर्या०—अगवरिया, अँगवार (प०), तेपटा (सा०, चंपा०, मं०, उ० पू० मं०, आज०), तिसरी, तिसरिया। [*अँग+वरिया* (=वार) <*अंगवार, अंकपाल*]

अँगवार—(सं०) (१) दे०—अँगवरिया। (२) दवाँई (दौनी) किए हुए अन्न की राशि में हलवाहे का भाग (आज०)।

अँगवारा–(सं०) (१) सम्मिलित खेती में अपने-अपने हल-बैलों से बारी-बारी करके अपने खेत जोतनेवाले किसान (प०)। (२) दे०—अँगवरिया।

अंगा—(सं०) (१) एक प्रकार का मोटा धान, जो विशेषतया ऊँची जमीन में पैदा होता है और इसका शूक काला होता है (चंपा०-१, मं०)। (२) कुरता, चपचकन। [*अंगभ* मो० वि० डि०]

अँगारी—(सं०) कोल्हू में डालने के लिए काटी हुई ऊख की टुकड़ी (द० प० शाहा०)। दे०-गँड़ी। [*अपकांड, अंगारिका*]

अँगुरियावल—(क्रि०) किसी फल की बतिये को उँगली दिखाना। किंवदंती ऐसी है कि इस तरह उँगली दिखाने से वह बतिया सूख जाती है (चंपा०-१)। [*अँगुर+इयावल* (ना० धा० प्र०) = '*अंगुलीयति*' के *अर्थ में*]

अँगेड़ीहा—(वि०) ऊख की खड़ी फसल को काटनेवाला। पर्या०–गेंड़वहिया (उ० प०), पजवाहा (मं०), पगरवाह (मं०), पँगरवाह (मं०), गेंड़छीला (शाहा०), छोलवा (द०-प० शाहा०), केतरपार (पट०, गया), कतरपारा या पतरपारा (द० मुं०), घुरकट्टा या कटनिया (द० भाग०)। [*अग्रकांड–वाह*, (अँगेड़ी+हा)]

अँगेर—(सं०) बीज के लिए काटे गये ऊख के ऊपर (सिरा) का टुकड़ा, जो और भाग के बजाय जल्दी उगता है (सा०)। पर्या०—अँगेरा (गया), अगारी (पट०), अगरा (द० मु०), आगा (द० भाग०) बधिया (गं० उ०), फुनगी (उ० प० मं०), अँगोर, अँगोरी (आज०)। [*अग्रकांड—कांड का अग्रभाग, अग्र, अंगारिका*] (२) चारे के

लिए काटा गया ऊख के ऊपर का हरा भाग (सा०, पट०-४) दे०—अँगेर। [अग्रकांड]

अँगेरा—(सं०) बीज के लिए काटे गये ऊख के ऊपर का (सिरा) टुकड़ा, जो और भाग की अपेक्षा जल्दी उगता है (गया)। दे०—अँगेर। [अग्रकांड]

अँगेरी—(सं०) (१) ऊख के ऊपरी भाग की पत्तियाँ। (२) ऊख के ऊपर का भाग। (३) चारे के लिए काटा गया ऊख के ऊपर का हरा भाग (गया, पट०, बिह०)।—कइल —(मुहा०) ऊख के सूखे और हरे पत्तों को अलग करके उसे साफ करना (बिह०)। दे०—अँगेर। [अग्रकांड, अंगारिका]

अँगैठी—(सं०) कड़ी मिट्टी काटने के लिए एक प्रकार का लंबा नोकदार फावड़ा (पट०-४)। दे०-आभी, फौरा। [देशी]

अँगोरा—(सं०) गोयठे, लकड़ी आदि की आग का लहलहाता हुआ पिंड (चंपा०-मुं१ ०-१, भाग०-१)। मुहा०—अँगोरा ढरल—क़िस्मत में आग लगना (मुं०-१) [अंगार]

अँचताहर—(सं०) गुड़ बनाने के समय चूल्हे में आग झोंकनेवाला व्यक्ति। (द० मुं०, पट०-४, गया)। दे०-कानू। [अँचता+हर<अँच (ता-आगम) +हर< अर्चिहर]

अँचवाहा—(सं०) चूल्हे में आग झोंकनेवाला व्यक्ति (पट०,भाग०-१)। दे०—कानू। [अच+वाहा<अर्चिवाह]

अँछिया—(सं०) चूल्हे के ऊपर का छिद्र (मुंह), जिस पर पात्र रखा जाता है (पट०-४, भाग०-१)। दे०—आँछी। [अर्चि, अक्षि]

अँजुर—(सं०) अन्न बोने के समय किसान की ओर से बढ़ई को मिलनेवाला एक निश्चित (अंजलिमात्र) अन्नपरिमाण (शाहा०) पर्या०—आँजुरी (गया)। [अँजलि]

अँजुरा—(सं०) अन्न बोने के समय मजदूरों को दिया जानेवाला अंजलिमात्र अन्न का उपहार (भाग०-१)। [अंजलि]

अँजुरी—(सं०) (१) अनाज के बँटवारे में किसान द्वारा प्रति हल एक या दो सेर लिया जानेवाला अंश (सा०, पट०)। पर्या०—आँजुर (शाहा०) (२) दोनों हथेलियों को मिलाकर कटोरी जैसी बनाई गई आकृति, अंजलिपुट। (३) अन्न की राशि में से तौलते समय दोनों हथेलियों से दान देने के लिए निकाला हुआ अनाज। [अंजलि]

अँजोर—(सं०) उजाला [अरुणज्योतिर्, उज्ज्वल—(हि० श० सा०)]

अँजोरिया-(सं०) शुक्लपक्ष की रात, जबतक आकाश में चंद्रमा उदित रहता है (चंपा०-१)। पर्या०—अँजोरापाख-(भाज०) = शुक्लपक्ष; दे०—अँजोरिया [अँजोरिया' इँजोरिया <इन्दुज्योतिर् या ज्योतिस्, अँजोर< उज्ज्वल–(हि० श० सा०)]

अँटकल—(क्रि०) किसी सँकरे छेद में किसी चीज का बीच में ही रुक जाना (चंपा०-१, पट०-४, भाग०-१)।
[अँटक+ल=अ+टिक (ल)—(हि० श० सा०)]

अँटकाइल-(क्रि०)अँटकाना, फँसाना। अँटक+आइल (प्र०)<अटक]

अँटकारल-(क्रि०) पानी की गहराई का किसी चीज से अंदाज करना (चंपा०-१)।

अँटकाव—(सं०) रोक, प्रतिबन्ध (सा०-१)। उदा०-हमरा खेत में पानी के अँटकाव नइ खे।

अँटकावल—(क्रि०) अँटक क्रिया का प्रेरणार्थक रूप, अँटकाना। (वि०) अँटकाई हुई।

अँटल—(क्रि०)—समाना, घुसना, ठीक-ठीक बैठ जाना। पहुँच जाना (मुं०-१, पट०-४)।

अँटल— (वि०)—समाया हुआ। ठीक आया हुआ। (चंपा०-१, भाग०-१)।

अँटावल—(प्रे० क्रि०) आगे चलनेवाले को छू लेना। घुसाना। आँट देना (मुं०-१)।

अँटिया—(सं०) (१) अँवासा या ओल्हा से भी बड़ी फसल की राशि (आँटी)। पर्या०—पसही (चंपा०, उ० पू०—मुं०), दोमड़ा (द० प० शाहा०)। टि०—आँटी या अँटिये का परिमाण सर्वत्र एक-सा निश्चित नहीं है—यथा अगली लोकोक्ति से स्पष्ट है—'कोढ़ि कटनिहार के मुंगर सन आँटी।' [हि०-आँटी–(हि० श० सा०)। अर्धिका>अद्धिआ>

अद्धिया>अँड़िइया>अँटिया। अंडिका = चार जौ का एक परिमाण (मो० वि० डि०)। पसही<प्रसृतिः। दोमड़ा<द्विमोट (मोट = बंडल-मो० वि० डि०)]
(२) कटनी के समय प्रति हल किसान के द्वारा बढ़ई को दिया जानेवाला एक निश्चित परिमाण में (आँटी-भर) धान (चंपा०)। पर्या०—मोँगन (पट०-४) दे०—बोझा।
(३) रोपने के लिए तैयार उखाड़े हुए बीजों के पौधों का पूला (बंडल) (गं० उ०, द०-पू०, आज०)। दे०-आँटी [अर्धिका] (४) अनाज निकालने के बाद पुआल की आँटी (बंडल)-(गं० द०, सा०, आज०) दे०—पूला (५) घास, लकड़ी या किसी फसल आदि का बाँधा हुआ पुल्ला या गट्ठा, जो दोनों हाथों से पकड़ा जा सके। (चंपा०-१, भाग०-१)। (६) आँटी, पुल्ला, छोटा बोझा (मुं०-१)। [अर्धिका]


अँटिया


अँटिया

अँटियावल—(क्रि०) (१) अँटिया या पुल्ला बाँधना (मुं०-१, पट०-४)। (२) गायब या हजम करना। दे०—अँटिया। [अँटिया+ना<अँटिया<अर्धिका]

अँटियावल—(वि०) घास, लकड़ी या धान आदि का बाँधा गया मुट्ठा (चंपा०-१, पट०-४)। [अँटिया + आवल<अँटिया<अर्धिका]

अँठिया—(सं०) एक प्रकार का केला (दर०-१)। [आँठी+इया<अष्ठील]

अँठियावल—(क्रि०, ना० धा०) फल के भीतर के बीज का पुष्ट या कड़ा होना, आम आदि फलों में आँठी होना (मुं०-१, पट०-४)[अष्ठीयन]

अँठिली—(सं०) (१) आम की गुठली। (२) दे० अँठुली। [अष्ठीलिका]

अँठुली— (सं०) एक प्रकार की घास, जिसे पशु खाते हैं (गया)। पर्या०—अँठिली, आँठी (द० प० शाहा०, गया)। [अष्ठिल—(मिला०—अम्बष्ठा चाम्ललोण्याम्-(मेदि०)]

अँड़ड़— (सं०) रेंडी का पौधा (उ० प० मुं०, द० भाग०)। दे०—रेंड़। पर्या०—अंडी (भाग०-१)। [एरंड]

अँड़ड़ी— (सं०) रेंड़ का बीज (उ० प० मुं०, द० भाग०) पर्या०—अंडी (भाग०-१)।

अँड़री—(सं०) रेंड़ का बीज, जिससे तेल निकलता है। (उ० प० मुं०, द० भाग०)। दे०—रेंड़ी। [अँड़र+ई<एरंड]

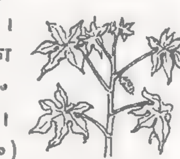
अंडा- (सं०) रेंड़ी का पौधा। (मुं०, द० भाग०)। दे०—रेंड़। [एरंड (संस्कृ०), अँड़ेरि (ने०)]

अँड़ास—(सं०) दे०—अड़ांस।

अँड़िआवल-(क्रि०) बैल के रुक जाने पर उसके अंडकोष में खोदकर उसे आगे बढ़ाना (सा०-१, पट०-४, भाग०-१) [अँडियाव+ल, आँड+इयाव (ना० धा० प्र०), आँड़<अंड]

अँड़िया—(वि०) बधिया न किये हुए बैल आदि पशु (मुं०-१)। पर्या० - आँड़ू (पट०-४, भाग ०-१), अड़ीवा—(भाग०-१)। [अंडिक, अंडशान्]

अंडी—(सं०) (१) रेंड का पेड़, रेंड का बीज। (२) एक प्रकार का रेशमी कपड़ा (मुं०, द० भाग०, भोज०, मग०)। दे०-रेंडी [एरंड (संस्कृ०) अँड़ेरि (ने०)]


अंडी

अँतरा, आँतर—(सं०) पान की लताओं या पंक्तियों के बीच का स्थान। पर्या०—दौज (द० पू०), दौंगर (पट०, गया०), पाहे (द० पू० मुं०) [अन्तरा>अँतरा>आँतर। पार्श्व>पाह>पाहे]

अँदार—(सं०)—अनार (पट०-१) [अनार (फा०)]

अंधड़—(सं०) आँधी (दर०-१, पट०-४, भाग०-१ चंपा०, भोज०) पर्या०—अंधर (भाग०-१)। [अंध-(हि० श० सा०), अंधकार। अंधः> अंधा, अँधकी रात्रि (नेपा०)]

अँधरी पटावन—(सं०) ऊख की पहली सिंचाई (द० भाग०)। दे०—गडाढार पर्या०—मिलानी—(भाग०-१)। [अँधरी+पटावन]

अँधियारी—(सं०) मवेशियों की आँख का ढक्कन (पट०)। दे०—अनपट पर्या०—टोकनी (पट०-४), खोलसा (भाग०-१) [*अन्ध, अन्धकारी*]

अँधेरी—(सं०)–प्रायः माघ महीने में की जाने-वाली ऊख की पहली कोड़नी (सा०, द० मुं०) पर्या०—अन्हरी, झुरनी (भाग० १) । दे०–अँधेरी कोरन ।

टि०—संभवतः कृष्णपक्ष (अन्हरिया) में पहली कोड़नी के कारण इसे अंधेरी (अंध) कहते हैं । यह कोड़नी प्रायः ऊख उगने के पहले की जाती है, इसलिए भी संभव है ।

अँधेरी कोरन—(सं०) प्रायः माघ महीने में की जानेवाली ऊख की पहली कमेंनी (कोड़ाई) । पर्या०–चालन (पट०), उलझन (गया, प०), अँधेरी, झाड़नी (सा०, द० मुं०), अन्हरी कोरनी (भाग-१), झुरनी (द० भाग०) । गं० उ० में इसका कोई विशेष नाम नहीं है ।

अँवरा—(सं०) एक प्रसिद्ध पेड़ या फल, जो दवा, मुरब्बा, अँचार आदि के काम में आता है (शाहा०-१) । दे०—औंरा । [*आमलक*]

अँवासा—(सं०) मूठा या पूला से बड़ी फसल की राशि (उ०-प०) । पर्या०—ओल्हा (उ०-मै०), आहुल, अहुला (पू०-मै०) [*देशी*]

अँसुआढार—(सं०) बैलो का एक दोष । इसमें बैलों की आँखें लाल और मलिन रहती हैं तथा आँखों से आँसू गिरते रहते हैं । यह बैल अशुभ माना जाता है (पट०-१) [*अँसुआ + ढार < आँसू < अश्रु; ढार ढाल < ध्वाल < √ध्वल ?*]

अउठिआवल—(क्रि०) ढेंकी में किसी चीज को कूटते समय ओखल के बाहर गये हुए अन्न को भीतर करना (चंपा०-१)। [(अउठिआव+ल – अउठि+आंवल < अवस्थापन), *अउठी < ओष्ठी, ओष्ठीयन*]

अउल—(सं०) काफी गर्मी पड़ना और हवा का बंद हो जाना (चंपा० १) । [*आकुल*]

अउस—(सं०) हवा का बंद हो जाना और काफी गर्मी पड़ना (चंपा०१), पर्या०—गुमसा (भाग०-१) । [*ऊष्मा, ओष < √ उष दाहे*] ।

अउसल—(क्रि०,) गर्मी के कारण किसी कच्ची चीज (खानेवाली चीज) का मुलायम होकर सड़ने लगना (चंपा०-१, पट०-४) पर्या०—अउसाइल, गुमसाइल (भाग-१) । [*अउस + ल < अउस < ऊष्मा, ओष < √उष्*] ।

अकटा—(सं०) एक प्रकार की घास, जो पशुओं का खाद्य है (द०भाग०) । दे०–अँकता । पर्या०–अँकटा— (दर०-१); अटका (भाग०-१) । [*अ + कटा < अकटा < अकता < अकतअ > अक्तक, मिला० अकट (बो० को०–७६)* ।

अकड़ी—(वि०) बिना छाँटा हुआ चावल आदि (द० मुं०-१, चंपा) । पर्या०–एकड़ी (पट०-४), अकड़ी चाउर–(भाग०-१) । [*अकड़ + ई > अकड़ < अकट < अकत < अक्त, मिला० अंकुर*]।

अकराह—(सं०) बारीक कंकड़ी मिली हुई कड़ी मिट्टी (गं० उ०, प०, द० मुं०) । छराही (द० पू० मै०) । [*अकरा + ह < अकरा < अंकुर*]

अकरी—(सं०) बिना साफ किया चावल । पर्या०–एकरी, एंकरी । [*अकर + ई < अकर < अकट < अकत < अक्त*]

अकवार, अँकवार—(सं०) दोनों भुजाओं के अंदर भर कर आने वाला फसल का परिमाण (द० पू० मै० चंपा०) । अकवारा पाँजा—(भाग-१) दे० पाँजा [*अंकमाल, अंकपालि*]

अकवारा—(सं०) दे० अकवार (भाग-१) [*अंक-माल, अंकपालि*]

अकालगीर—(सं०) एक प्रकार का धान, जो फागुन-चैत में बोया जाता है और अगहन में काटा जाता है (सा०) । दे० अकालबीर [अ + काल + गीर, *अकालबीर < अ+काल + बीर ∠ अकालव्रीहि*]

अकालबीर—(सं०) एक प्रकार का धान, जो फागुन-चैत में बोया जाता है और अगहन में काटा जाता है (पू० मै०) । पर्या०—अकाल-गीर (सा०), कालागीर (उ० पू० मै०) (यह केवल गंगा के उत्तर विशेषकर पूर्वी भाग में प्राप्त होता है ।)
[*अ + काल + बीर < अकालव्रीहि* ।]

अकासी—(सं०) खेत से चिड़िया आदि को भगाने के लिए किसी पेड़ में डोरी बाँधकर लटकाया हुआ ताड़ का पत्ता या टिनका टुकड़ा, जो डोरी खींचने से आवाज करता है । (द०-पू० मै०) दे०—ढबढबवा । [*आकाशीय, अंकुश < अक्सी < अकासी* ।]

अखउत—(सं०) पानी पटानेवाले लाठे की वह छोटी लकड़ी, जिसमें धुरी लगी रहती है तथा जिस पर लाठा बैठाया हुआ रहता है (शाहा० १) [*अख + उत < अक्षवत्* ।]

अखना—(सं०) मछली पकड़ने के लिए पानी से सटा हुआ खोदा गया गड्ढा, जिसमें मछलियाँ कूद कर पड़ तो जाती हैं, पर निकल नहीं सकतीं (चंपा०-१) । [*अ + खना, अख + ना < अक्ष (?)*]

अखरा—(वि०) १ विना धोया कूटा हुआ (अन्न) । २ विना घी लगाई हुई (रोटी) (शाहा०-१) [*अ + खरा < अ + क्षाल*] । ३ विना साफ किया (छाँटा) पीसा हुआ जौ (पट०-४) दे० गूरी । पर्या०—अखरी (द० मुं०), अखरो (द० भाग०); औंवट (उ०-प० चि०, द० पू० मै०, भाग०-१) । [(अ + काल), अ(सं०) + *खरा* (हिं०)–(हि० शा० सा०)] ।

अखरी—(सं०) विना साफ किया (छाँटा) पीसा हुआ जौ (द० मुं०) (दे०–अखरा) पर्या०—अखरो विना भिगोया हुआ (भाग०) । [*अ + क्षाल* ।]

अखरो—(सं०) विना साफ किया (छाँटा) पीसा हुआ जौ (द० भाग०) । दे०—अखरा पर्या०—अखरऽ—भाग-१ [*अ + क्षाल > अखार > > अखरो* (ओ वर्णागम स्थानीय उच्चारणार्थ)]

अखाड़ल—(क्रि०) (१) किसी पशु द्वारा सींग से नाद या जमीन को कोड़ना (चंपा-१, पट०-४) (२) खेत की गहरी कोड़ाई करना (चंपा-१) पर्या०—अखनवाही; हुरऽ–(भाग-१; सिङाठऽ भाग-१) । [*उखाड़ + ल < उत्खातन, < उत्खनन उत्खनन < उत् + खन्*] ।

अखाड़ी कोड़न—(सं०) ऊख की मुख्य कोड़नी, जो असाढ़ या आर्द्रा नक्षत्र में होती है । पर्या०–अदरा के कोडनी, असाढ़ी कोड़न (प०), पासा (गया) । [*आषाढ़ीय + कुदलन (?) = कोड़न*]

अखाढ़—(सं०) आषाढ़, भारतीय वर्ष का चौथा और ग्रीष्म ऋतु का अंतिम मास, जून के अंतिम और जुलाई के आदि के १५ दिन । (इस मास की पूर्णिमा के दिन प्रायः उत्तराषाढ़ नक्षत्र पड़ता है, अतः आषाढ़ नाम पड़ा है ।) पर्या०–आसाढ़ । अखाढ़ (भाग-१) [*आषाढ़*] टि०—असाढ़ मास में ही धान की बोआई होती है, अतः इसका बहुत महत्त्व है । इस महीने में धान की बोआई होती है और धान रोपने के लिए खेतों को जोत-कोड़ कर तैयार किया जाता है । आर्द्रा में धान की रोपनी प्रायः हो जाया करती है, कभी-कभी वर्षा की देरी से पुनर्वसु और पुष्य तक भी होती है । किंतु, बाद का रोपा धान अधिक फलवान नहीं होता । असाढ़ मास की महत्ता तो सर्वतोभावेन है जैसा कि अगली कहावत से प्रतीत होता है—

"जेकर बनल अखड़वा रे तेकर बारहो मास ।"

—जिस किसान के खेत आषाढ़ महीने में तैयार हो जाते हैं उसके बारहो मास अच्छे ही रहते हैं ।

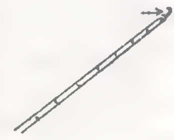
अखाढ़ी—(सं०) (१) आषाढ़ में बोयी जानेवाली नील की दूसरी खेती (गं० उ०) । दे० फगुनी । २–आषाढ़ में उत्पन्न होनेवाली फसल या घास आदि—(भाग-१) । [*अखाढ़ + ई < आषाढ़ीय*]

अखेता–(सं०) खंभे की दोनों कानियों (शाखाओं) में लगी हुई धुरी, जिस पर लाठा लटकता है (गया, पट०) । दे०–अखोता [*अक्षवत्, अक्षकूट*]

अखेद— (सं०)—(गया०, पट०) दे० अखेता । दे०–अखोता [*अक्षवत्, अक्षकूट*]

अखेन—(सं०) (भाग-१) । दे० अखेना ।

अखेना—(सं०) खलिहान में दौनी के समय पुआल या डंठल आदि को हटाने या झाड़ने के काम में आनेवाली एक लग्गी, जिसके अंतिमछोर में लोहे का काँटा आदि लगाकर उसे नुकीला बनाया जाता है । (पट०, गया, द० मुं०, भाग-१) । दे० अखेता पर्या०—अखेनऽ (भाग-१) ।



अखेना

[आखनन (हि० शा० सा०), अक्षाणि = अक्षा + अणि]

अखैन—(सं०)—दे०—अखैना। पर्या० - खेना, अखेना (पट०, गया, मुं०), अखैन, अखैना (द०-प० शाहा०), उखेनी (द० भाग०), अखेनऽ—भाग-१, ऊखनी (आ०)। [आखनन (हि० शा० सा०), अक्ष+अणि = अक्षाणि]।

अखैना—(सं०) खलिहान में दौनी के समय पुआल, डंठल आदि को हटाने या झाड़ने के काम में आनेवाली एक लग्गी, जिसके अंतिम छोर में लोहे का टेढ़ा काँटा लगाकर या उसी लग्गी की पतली (**करची**) शाखा को छोड़कर नोक बनायी जाती है।

अखैला—(सं०) वह धुरी जिस पर ढेंकी काम करती है (पट०) दे०—अखौता। [अक्ष + कील]

अखौतो—(सं०) पानी पटाने के लिए गाड़े गये खंभे की दोनों कानियों (शाखाओं) में लगी हुई धुरी, जिस पर लाठा लटकता है (द० भाग०)। दे०—अखौता। पर्या०—अखौतऽ—(भाग-१) [अक्षवत्, अक्षकूट]।

अखौत—(सं०) (१) ढेंकी की धुरी। पर्या०—अखौता, माँझा (चंपा०, उ० पू० मुं०) बोलनी (उ० पू० मुं०), डंडा (उ० पू० मुं०), रनकी (पट०), असकलाइ (द० भाग०), सारा (द० प० शाहा०) (२) (सं०) दे०—अखौता। (३) पानी पटाने के काम के लिए कुएँ में लगी घिरनी की धुरी, जिस पर घिरनी नाचती है। पर्या०—अखौता डंडा (चंपा०, द० पू० मुं०), सररा (द० प० शाहा०), टोना (पट०)। [अक्षवत्, अक्षकूट, 7 अख + औत]।

अखौता—(सं०) (१) वह धुरी जिस पर ढेंकी काम करती है (पट०, सा०)। पर्या०—उखौता (गया), अखैला (पट०), माँझा (चंपा०, उ० पू० मुं०), किल्ला (द० प० मुं०), डंडा (पू० मुं०)। (२) पानी पटाने के लिए लगे खंभे की दोनों कानियों (शाखाओं) में लगी हुई धुरी, जिसपर लाठा लटकता है। (दे० अखौत) पर्या०—अखौत, अखोतो (द० भाग०), अँखौता (द० मुं०), अखेता, अखेद (पट० गया), माँझा (चंपा०, गया), टोना (पट०)। [अक्षवत्, अक्षकूट]।



अखौता

अगउड़—(सं०) मजदूरों को दी जानेवाली अग्रिम मजदूरी (चंपा० १)। दे० फाजिल। अगउर (भाग-१) [अग्रहर, अग्रवलि, अग्रिम]

अगड़न—(सं०) दे०—अगार।

अगड़ा—(सं०) चारे के लिए काटा गया ऊख के ऊपर का हरा भाग (द० मुं०, भाग-१) दे०—अगेंड़। [अग + ड़ा ∠ अग्रकाण्ड, अंगारिका]

अगड़ा—(सं०)—(द० भाग०)। दे०—बलकट। [अग + ड़ा ∠ अग्रकाण्ड]।

अगढौर—(सं०) (द० भाग०) दे०—फाजिल पर्या०— अगौर—(भाग-१)। [अग+ढौर ∠ अग्र + ढौर, ढौर ∠ ढौक ∠ ढौक्]

अगदाइँ—(सं०) दौनी में घूमनेवाला सबसे तेज बैल (पट०, द० मुं०, भाग-१) दे०—पाट। पर्या०—एकदइँआ (पट०-४)। [अग+दाइँ ∠ अग्रदमिन्]।

अगदाइन—(सं०)—(गया)। दे०—पाट। [अग + दाइन ∠ अग्र+दमिन्]।

अगदाएँ—(सं०)- द० पू० मुं०)। दे०—पाट। [अग+दाएँ ∠ अग्रदमिन्, अग्रदम्य]

अगदैयाँ—(सं०) (गया)। दे०—पाट। [अग + दैयाँ < अग्र + दम्य, (+ दमिन्)]

अगबर - (सं०) गृहदेवता (भूमिगनेस) के लिए नए तैयार अन्न में से निकाला गया अंश (शाहा०)। दे०—अगौं। पर्या०—अगहर—(द० शाहा०)। [अग+बर ∠ अग्रवलि]

अगरपाट—(सं०) नहर या पैन आदि का मुंह खोलकर जमीन की सतह से ऊँचे जलप्रवाह के द्वारा पूर्णरूपेण खेत की धारावाहिक सिंचाई (उ० प० मुं०, चंपा०)। दे०—अपटा। [अगर + पाट—देशी (१)]

अगरबन्धू—(सं०) काटने के लिए तैयार ऊख का पौधा (पट०)। पर्या०— अगेरबन्धू (गया), डाँड़ (द० पू०) (अन्यत्र कोई विशेष नाम नहीं है)। [अगर+बन्धू ∠ अग्र + बन्ध (?)]।

अगरा—(सं०) बीज के लिए काटे गये ऊख के ऊपर (शिर) का टुकड़ा, जो और भाग की अपेक्षा जल्दी उगता है (पट०-४)। दे०—अँगेरी। पर्या०—छिप (भाग-१)। [अग्र, अग्रकाण्ड]।

अगरी—(सं०) बोझों की कतार (चंपा०—१)।

अगला—(सं०) धान के डंठल को छोड़कर केवल बाल की कटाई (चंपा०, गया)। दे०—बलकट। [अग्र्य]।

अगलो—(सं०) बाँस की फुनगी की ओर का हिस्सा (चंपा०-१)। पर्या०—अग्गा (भाग०-१)। [अग्र्य]।

अगवड़—(सं०) १—हलवाहे को अगाऊ (अग्रिम) दी जानेवाली मजदूरी (प०)। पर्या०—अगवार अधार (भाग०-१); अगौरी (द० प० मुं०), हडौरी (उ० प० मुं०), लगुआ (सामा०)। [अग + वड़ < अग्रवृत्ति, अग्रवलि (बलि = भाग, अंश, भोजन, अन्न)]। २—अगाऊ (अग्रिम) मजदूरी लेकर काम करनेवाला मजदूर, (उ०प०)। पर्या०—अगवड़जन (उ० पू०), साओख (द० भाग०), कमाई (प०), कनियाँ (पट०, गया, द० मुं०), लगुआजन पहले से लिये हुए ऋण को चुकता करने के लिए काम करनेवाला मजदूर। सटोआर (भाग०-१) [अग्रवलि]

अगवड़जन—(सं०) (उ० प०)। दे० अगवड़। [अग + वड़ + जन < *अग्रवृत्ति + जन, अग्रवलि+जन]।

अगवन—(सं०) अन्न के बीज पर दिया जानेवाला सूद (द०-प० शाहा०)। दे०—आधी। पर्या०—ड्योढ़िया (पट०-४)। सवैया, दोबरा, डेढ़िया (भाग०-१)।

अगवन—(सं०)— (शाहा०)। दे०—फाजिल। [अग + वन < अग्रपण, अग्रिमान्न]।

अगवर—(सं०) ओसाने के समय हवा में भूसा के साथ उड़ा हुआ अनाज (द०, पू०, पट०-४)। दे०—अगवार। [अगवर < अवकर ?]।

अगवरिया—(सं०) दे०—अँगवरिया।

अगवार—(सं०) (१) फसल के बोझों को हटाने पर खलिहान में पड़ा हुआ अनाज (गं० उ०—सामा०), पर्या०—सहार (भाग०-१), अगवार, अगवारी (प०)=ओसाने के समय हवा में भूसा के साथ उड़नेवाला (निष्फल = खखरा) अनाज। भाठ (गं० उ०-सामा०), तरी (सा०, गं० द०)। [अवकर]। (२) घर के सामने का भाग (चंपा-१)। (३) खेतिहर मजदूर के लिए खलिहान से निकाला हुआ अन्न का भाग (चंपा०-१)। [अग्र + वाट = (स्थान)]।

अगवार, अगवारी—(सं०) ओसाने के समय हवा में भूसा के साथ उड़ा हुआ अनाज (प०)। पर्या०—अगाड़ (चंपा०, पट०, गया), अगावर (द०-पू०)। [अवकर]।

अगवारी—(सं०) दे०—अगवार।

अगवांसा—(सं०) घर के आगे की जमीन (शाहा०-१)। [अग + वासा < *अग्र + वास]।

अगस्त—(सं०) एक प्रकार का लंबा वृक्ष, जो शरद् ऋतु में फूलता है और जिसका फूल सफेद होता है (पट०-१)। [अगस्त्य]।

अगहन—(सं०) आग्रहायण, भारतीय वर्ष का नवम और हेमन्त ऋतु का पहला महीना। (प्रायः नवम्बर के अंतिम और दिसम्बर के आदि के पंद्रह दिन)। इस मास की पूर्णिमा के दिन मृगशिरा नक्षत्र का उदय हुआ करता है, अतः इसका नाम मार्गशीर्ष भी है। (मंगसर पं०) < मार्गशीर्ष)। कभी इस महीने के बाद से वर्षारंभ होता था, इसलिए इसे आग्रहायण (अग्रे हायनमस्य = इसके आगे वर्षारंभ होता है।) कहते हैं (सर्वत्र)। [*आग्रहायण (< अग्र + हायन) > अगहन]।

अगहनिया—(वि०) (शाहा०-१)। दे०—अगहनी। [अगहन + इया < अगहन < आग्रहायण < अग्र + हायन]।

अगहनी—(सं०)-(१) अगहन महीने में होनेवाला धान या अन्य फसल (चंपा०-१, पट०-४, भाग०-१)। (२) अगहन महीने में कटनेवाली फसल (धान) (दर०-१; भाग०-१ आज०)। [अगहन+ई < *आग्रहायणीय]।

अगहनुआ—(सं०)-(१) वह उड़द, जो अगहन में फलती है (सा०, चंपा०)। दे०—लरही। यौ०—अगहनुआ कुट्टी—अगहन मास में की जानेवाली चावल, चूड़ा आदि की कुटाई (भाग०-१)। [अगहन+उआ (वि० प्र०)]।

अगइर—(सं०)-(द० शाहा०)। दे०—अगवर। [< *अग्रहार]।

अगाउर—(सं०) मजदूर को दी जानेवाली अग्रिम मजदूरी(द०-पू०मुं०)।दे०-फाजिल।[अगाउ+र, अग + आउर, अगा + उर< * अग्रबलि]।

अगाड़—(सं०) ओसाने के समय हवा में भूसा के साथ उड़ा हुआ अनाज (चंपा०, पट०, गया)। दे०—अगवार। [अग्र, अवकर]।

अगार—(सं०)-(१) मजदूर को दी जानेवाली अग्रिम मजदूरी (पट०)। दे०—फाजिल [अगार < अगवार < * अग्रवृत्ति < * अगबलि २-झील का वह छोर, जहां उसका अंत हुआ हो—(चंपा० १)। [अग्र]।

अगार, अगारी—(सं०)—कुएँ के ऊपर बरहे (मोटा रस्सा) से जुड़े हुए ढेंकुल के डंडे का अगला भाग (भाग०-१)। पर्या०—अगढ़न (पट०-४)। [अगार< अगर < * अग्र]

अगारी—(सं०)—(१) बीज के लिए काटे गये ऊख के ऊपर का टुकड़ा, जो और भाग की अपेक्षा जल्द उगता है (पट०)। दे० अँगेरी। [अग्रकाण्ड, अंगेली=ऊख का टुकड़ा (दे०-ना० मा० हेम०)]। (२) दे०—अगार। [अग्र]।

अगिया—(सं०) एक प्रकार की घास, जो धान के पौधे को जला देती है। [अग्नि]।

अगेँड़—(सं०)-(१) पशुओं को चारे के रूप में दिया जानेवाला ऊख का ऊपरवाला भाग (पट०-४, प०)। [अग्रकाण्ड]। (२) ऊख के ऊपरवाले शिखर की पत्तियाँ। (३) चारे के लिए काटा गया ऊख के ऊपर का हरा भाग (सा०)। पर्या०—गेँड़ (द०—प० शाहा०), अँगेरी (गया, पट०), अगरा (पट०), पगार (मुं०), छीप (पू० मुं०), पगड़ा (द० पू०), अगड़ा, पगड़ा (भाग०—१)।[अग्रकाण्ड,पगार <*प्राग्र=प्र+अग्र, *पत्राग्र, छीप< *क्षिपा, त्रुपा]।

अगेँड़—(सं०) ऊख के ऊपर का कटा हुआ हरा भाग, जो चारे के काम में आता है (सा०)। पर्या०-अँगेर (सा०), गेँड़ (चंपा०, शाहा०), अगेरी (गया, पट०), अगरा (पट०), अगाड़ (द० मुं०), पगार (मुं०), पगड़ा (द०-भाग०)। [अग्रकाण्ड, पगार< पगाड़< *प्राग्र, पत्राग्र]।

अगेरबंधू—(सं०) (गया)। दे०—अगरबंधू। [अगेर+बंधू< अग्रबन्ध]।

अगोरनिहार, अगोरिया—(सं०) फसल या अनाज की रखवाली (रक्षा) करनेवाला (पट०-४)। दे०-रखवार। पर्या० —अगोरा (चंपा०, द० मुं०)। [अगोरनि+हार (वि० प्र०), अगोर+इया (वि० प्र०)]।

अगोरबटाई—(सं०) खलिहान में होनेवाला बँटवारा। यहाँ बँटवारा होने तक अनाज की देखरेख करनी पड़ती है, अतः इसे 'अगोर-बटाई' कहते हैं। दे०—बटाई खरिहानी। [अगोर+बटाई]।

अगोरल—(क्रि०)खेत आदि की रखवाली करना (चंपा०, मुं-१, पट०-४, भाग०-१) [अव+गोचरन, अव + गोपन, अगोरना (हि०) < अग्र —(हि० शा० सा०)]।

अगोरा—(सं०) फसल या अनाज की देखभाल (रक्षा) करनेवाला (चंपा०, द० मुं०, पट०-४)। दे०—रखवार। पर्या०—अगोरिया, अगोर-निहार, जोगवार (भाग०-१)। अगोरी= रखवाली। [अगोर+ आ, अगोर+इया, अगोरनि+हार (वि० प्र०)]

अगोरिया—(सं०)–दे०-रखवारी। [अगोर+इया]।

अगोरिया, अगोरनिहार—(सं०)। दे०—रख-वार। अगोरनिहार।

अगोरी—(सं०) फसल या अनाज की देखभाल (पट०-४)। दे०—रखवारी।

अगौं— (सं०) गृहदेवता (भूमिगनेस) के लिए नये तैयार अन्न से निकाला गया अंश। पर्या०—अगवढ़ (शाहा०), रसुआड़ (चंपा०), (भाग०—१); रसवड़ (चंपा०)। [अग्रान्न]।

अगौंआँ—(सं०) खलिहान में तैयार नये अन्न में से पहले-पहल निकाला गया ब्राह्मण-अंश (प०)। दे० बिसुनपिरित। [< *अग्रान्न]।

अगौड़ी—(सं०) मजदूर को दी जानेवाली अग्रिम कार्य की मजदूरी (प० मुं०)। दे०—फाजिल। [अग+औड़ी< अग्र+

आहार, अग्र—चाउर (चावल), अग्र+ऊढ =अग्रौढ]।

अगौतिया—(सं०)—(१) आगे का। (२) समय के शुरू होते ही अथवा कुछ पहले ही रोपी-बोई जानेवाली और पहले तैयार होनेवाली फसल (मुं०-१)। पर्या०-अगत्तर (भाग०-१)। [अग+औतिया< *अग्र+उप्त]

अगौरी—(सं०) हरवाहे को अगाऊ दी जानेवाली मजदूरी (द० प० मुं०)। दे०—अगवढ़। [अग+औरी< अग्र+ आहार = अग्राहार, अग्र+चाउरी (चावल)=अगाउर >अगौरी, अग्र+ऊढ = *अग्रौढ]।

अग्गा—(सं०)—(भाग०-१)। दे०—अगरा। [अग्र]

अग्निझप्प–(सं०) एक प्रकार का फूल(बर०-१)। [अग्नि+झप्प]।

अछार—(सं०)—(१) पानी में ही बीज खसाने (बोने) की प्रक्रिया (बर०, पूर्णि० १, चंपा०)। (२) जोरों की वर्षा, बौछार। (३) वृद्धि, उछाल। [< *आसार: (आसार=मूसलाधार वृष्टि), उच्छाल]।

अछारा—(सं०) खेत में पूरा पानी रखकर बीज बोया जाना (मुं०-१, भाग०-१)। [आसार (आसार = मूसलाधार वृष्टि)]।

अछारी—(सं०) उतनी वृष्टि, जितने से जमीन में हाल होकर पानी जमा हो जाता है (मुं०-१)। [आसार]।

अछेवट—(सं०) पीपल, बरगद और पाकड़ का संयुक्त वृक्ष (पट०-१)। [अछे+वट< *अक्षयवट]।

अजमोदा—(सं०) अजवाईन, एक प्रकार का मसाला। पर्या०—बनजवाइन (मुं०), पितरसेली, चितरसेली (मुं०)। [अजमोद, अजमोदा (संस्कृ०), अजमोद, अजमुदा (हिं०), वनयमानी (बं०) अजमोद, बोडी अजमोद (गु०), आजामोदा (ते०), अजमो-दावोवा (मरा०)]।

अजवाइन—(सं०) एक प्रकार के महीन दाने का मसाला (गया, द० मुं०)। पर्या०—जवाइन (प०, चंपा०, पट०, द० भाग०), जेवाईन (गं० उ०)। खोरासनी जवाईन—यह वस्तुतः इस अजवाईन की जाति का नहीं है। [यवानी, खोरासानी जवाईन= पारसीक यवानी (संस्कृ०)]।

अजवारल—(वि०) (१) अन्न आदि निकालकर खाली किया गया बर्तन; (चंपा०-१, पट०-४, सर्वत्र)। (क्रि०)-(२) किसी बर्त्तन को खाली कर देना (भाग०-१, सर्वत्र)। [अजवार+ल (प्र०)< अजवार (?)]।

अजान—(सं०) छींट कर (बावग) बोया जाने वाला श्वेत वर्ण का धान (द० मुं०) [देशी]।

अजुरा—(सं०) मजदूर को मिलनेवाली मजदूरी (पू०)। दे०—मजूरी। [अंजलि =(कभी-कभी अंजलि से नापकर ही मजदूरी दी जाती है)]।

अजु—(सं०)·(१) फसल (मकई) की विना पकी बाल (मुं०)। दे०—दुद्धा। (२) किसी फल की कोमल बतिया (चंपा०-१)। पर्या०—खिखा—(भाग०-१)। [आर्द्र]।

अटका—(सं०)–(द० भाग०)। दे०—अंकता। [अटका< अकता< अकतअ< *अक्षतक]।

अटकामिसिया—(सं०) खेत में उपजनेवाली एक प्रकार की घास (मुं०-१, भाग०-१) [अटका+मिसिया< *अक्षतक+मिश्रित]

अठकठिया—(सं०) (१) आठ कट्ठे का खेत (मुं०-१, भाग०-१)। (२) आठ लकड़ियों (?) की (नाव) (मुं०-१)। [अठ+कठिया< अठ + कट्ठा + इया< *अष्ट + काष्ठा]।

अठनिया—(सं०) भूमिकर में से अर्धवार्षिक चुकती (किस्त)। (चंपा०, भाग०-१) दे०—अधसर। [अठन्नी+इया< आठ आना,< आण्वक—मिला० 'अणु:'—(नेपा०)]।

अठन्नी—(सं०) दे०—अधसर। आठ आने का सिक्का।

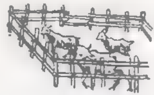
अठवारा—(सं०) गाय चराने या दूहनेवाले को पारिश्रमिक के रूप में गाय के दूध में से आठ दिन में से एक दिन दिया जानेवाला दूध (सा०, भाग०-१)। दे०— बारा। [आठ+वार (दिन) < *अष्टवार]।

अड़कल—(क्रि०) उस खेत के पानी का सूख जाना,

जिसमें धान की फसल बोई गई हो, किंतु फसल अभी तक हरी-भरी न हो पाई हो। (शाहा०)। [अड़क + ल < अड़क (?)] ।

अड़कल—(वि०) अड़का हुआ । दे०—अड़कल ।

अड़गड़ा—(सं०) अपराधी मवेशियों को बाँध देने का सार्वजनिक स्थान (मुं०-१, भाग०-१)। पर्या०-फाटक, काँजी-हाउस । [अड़+गड़ा < आड़+घर] ।



अड़गड़ा

अड़ंगुड़ाह—(वि०) ऊँची-नीची, टेढ़ी-मेढ़ी, ऊबड़-खाबड़ जमीन । [देशी] ।

अड़हुल— (सं०) एक प्रकार का फूल, जो लाल रंग का होता है (दर०, पूर्णि०-१) । पर्या०—उड़हुल (पट० ४), अढ़उल (भाग०-१), ओढ़उल (चंपा०) । [ओड़पुष्प] ।

अड़रनेवा—(सं०) एक प्रकार का प्रसिद्ध फल, पपीता (दर०, पूर्णि०-१) । पर्या०—पपीता, रड़मेवा (भाग०-१, चंपा०) । [एरंड+मेवा] ।

अड़ाँस, अँडास—(सं०) कुएँ के मुँह का वह भाग, जहाँ पानी गिराते समय कूँड़ ठहर जाता है (कहीं-कहीं यह लकड़ी का बना होता है) । (पट०-४, गया, भाग०-१, मग०-५, मैं०-२ चंपा०) । [मिला० - अड़ेस (ने०) = (रुकना, रोकना), अड़ (प्रा०) = कूप, कूप के पास का गर्त्त, तट (पा० स० म०)] ।

अड़ा—(सं०) जंगल में पशुओं के रहने के लिए बनाई गई पलानी (गया) । दे०—पाक्षा । [अड्डा, मिला०-√अड (उद्यमे), √अड्ड, (अभियोगे), √अल (भूषणपर्याप्ति वारणेषु)। अड्ड (प्रा०) = रोक, जो आड़े आता हो, बाधक होता हो (पा० स० म०); अड़ा (संता०) = मध्याह्न में पशुओं को बैठाने की जगह (संता० डि०)] ।

अड़ान—(सं०) जंगल में पशुओं के रहने के लिए बनाई गई पलानी । (पट०, आज०) । दे०—पाक्षा । पर्या०-अलान (पट०-४) । [*आलान, √अड (उद्यमे) √अल (भूषणपर्याप्तिवारणेषु) अड़िनु (ने०) = रुकना; ठहरना (नेपा०) अड़ा । (संता०) = मध्याह्न में पशुओं को बैठाने की जगह (संता० डि०)। अड़ान, अड़ार (आज०)] ।

अड़ानी—(सं०)—(१) कुदाल के डंडे के नीचे-वाला गाँठदार अंतिम अंश । दे०—हूरा । (२) ढेंकी चलाते समय सहारे के लिए हाथ से पकड़ा जानेवाला बाँस या लकड़ी का टुकड़ा, जो दो खम्भों के बीच बँधा रहता है । (पट०-४, द० मुं०) दे० अस्थम । [आलान, अड़ + अनी < *अर + अणि] ।



अड़ानी

अड़ार (सं०) (१)—(शाहा०) दे०—अड़ान और पाक्षा । (२) चरागाह के लिए छोड़ी गई जमीन (शाहा०) । दे०—परती । पर्या०—गोचर । [अड़ा (संता०) = मध्याह्न में पशुओं के बैठाने की जगह (संता० डि०)] ।

अड़ाव—(सं०) रुकावट (सा०-१) । [मिला०—√अड (उद्यमे), आलान] ।

अड़ीवा—(सं०) (मुं०-१) । दे०—अँड़िया । [अड़ (= अंड) + ईवा < अण्डवान्; (संस्कृ०) अड्वा (ने०)] ।

अढ़इआ बेल—(सं०)—बड़ा-बड़ा, लगभग दो-ढाई सेर तक का फलनेवाला बेल—(पट०-१) । [अढ़इ + आ + बेल < (अढ़ाई) अर्द्ध + द्वि + बिल्व] ।

अढ़उल—(सं०)—(भाग०-१) । दे०—अड़हुल ।

अढ़ाहल—(क्रि०)—खेत को बार-बार जोत-कोड़कर तैयार करना (दर०, पूर्णि०-१) ।

अढ़ैया—(सं०) ढाई सेर का बटखरा (बिह०, हरि०, री०) । [अर्ध + द्वि] ।

अतार—(सं०) एक प्रकार का कन्द, जिसकी तरकारी बनती है (उ० प०)। दे०—लतार । [अतार < लतार, अता (लता) + र] ।

अदंत— (सं०) वह बाछा, जिसके दूध के दाँत न टूटे हों और नये दाँत नहीं निकले हों, शिशु गोवत्स (पू०, दर०, पूर्णि०-१, भाग०-१) । दे०—उदंत । [अ + दन्त] ।

अदरक—(सं०)— दे०—अदरख । [*आर्द्रक (संस्कृ०), आदु (गु०) आलें (मरा०)] ।

अदरख—(सं०) एक प्रकार का कंद, जिसका उपयोग मसालों और औषधों में होता है । यह तीता होता है। पर्या०-अदरक, आदी, आद, (द०-पू० मैं०, भाग०-१) । [आर्द्रक (संस्कृ०), आद् (गु०), आलें (मरा०)] ।

अदरा—(सं०) छठा नक्षत्र, आर्द्रा । (पट०-४, चंपा०, भाग०-१) दे०—अरदरा ।

टि०—आर्द्रा नक्षत्र की वर्षा फसल के लिए नितान्त आवश्यक मानी जाती है ।

कहा०—अदरा मास जे बोए साठी ।
दुख के मार निकाल लाठी ।।

—आर्द्रा नक्षत्र में यदि साठी धान बोया जाय तो आप लाठी मारकर दुःख को मार भगाएँ । [< *आर्द्रा (संस्कृ०), आर्द्रा (मरा०)]

अदरा के कोड़नी-(सं०), दे०-अखाढ़ी कोड़नी । [अदरा + के + कोड़नी—यौ०] ।

अदरा कोरन—(सं०)-(चंपा०, द०-पू०) । दे०—असाढ़ी कोरन । [अदरा + कोरन—यौ०] ।

अदरिवा—(सं०) एक प्रकार का आम, जो आर्द्रा नक्षत्र में पकता है (पट०-१) । [अदरि + वा (प्र०) < *आर्द्रा] ।

अदलई-बदलई—(सं०) परस्पर आदान-प्रदान (पट०-४, भाग०-१, चंपा०) । [अदलई + बदलई,—बदल की आवृत्ति; अदला-बदल- (मरा०)] ।

अदार—(सं०)—(१) वह बैल जो काम में कभी न रुके (मैं०, शाहा०, द० भाग०) । पर्या०—अदारी, औदार (पट०, गया), अबों (द० मुं०) । (२) वह बैल, जिसे अभी तक हल में नहीं लगाया गया हो (चंपा०, भाग०-१)। [अदार (संता०) = साँढ़; आद्रुत = आ + √द्रु + त, उदार < उद् + आर (कील, रस्सी) < उद्गत + आर (= बंधन या सीमा से पार)] ।

अदारी—(सं०)—दे०—अदार ।

अधकचु (वि०)-अधपका फल (चंपा०-१, पट०-४, भाग०-१) । [अध + कचु, अर्धाकच्चा (मरा०), अधकचो (ने०)] ।

अधकड़ किस्त-(सं०)-(द० भाग०, भाग०-१) । दे०—अधखर । [अध + कड़ + किस्त, अर्ध + कर (संस्कृ०) + किस्त (फा०)] ।

अधकर—(सं०)-(गं० उ०) । दे०—अधखर । [अध + कर < *अर्धकर] ।

अधखर—(सं०) भूमिकर में से अर्धवार्षिक चुकती (किस्त)-(गं० उ० भाग०-१)। पर्या०—अधकर, (गं० उ०) । अठनिया, अठन्नी (सामा०), अधकड़ किस्त (द० भाग०) । अध + खर = *अर्ध + कर] ।

अधन्नी—(सं०) प्रतिमास दो पैसे प्रति रुपये सूद की दर (द० पू० भाग०-१) । दे०—टकही । अध + अन्नी = आध (< अर्ध) + आना] ।

अधपइ, अधपई—(सं०) आधा पाव या दो छटाँक माप का बटखरा (भोज०, मग० आज०)। दे०-अधपौआ । [अध+पइ < आध+पाइ < *अर्धपाद]

अधपक्कू—(वि०) फसल की अधपकी बाल (गया, भाग०-१, चंपा०-१) । दे०—हबसाएल । पर्या०—डँभाएल (द० भाग०) डम्हाएल (चंपा०) [अर्धपक्व] ।

अधपौआ—(सं०) आधा पाव या दो छटाँक वजन का बटखरा (री०) । पर्या०-अधपइ, अधपई (भोज०, मग०, आज०) । [अध + पौआ √ *अर्धपाद] ।

अधबटिया—(सं०) भावली या जिरात जमीन की उपज में से किसान और जमींदार के बीच आधे-आध की बटाई (चंपा०, द०-पू०)। दे०—अधिया [अध + बटिया (= बटाई) < अर्ध + वंटन] ।

अधबटैया—(सं०) (पट०, गया, भाग०-१) दे०—अधिया [अध + बटैया] ।

अधबलिया—(सं०) गाड़ी का एक हिस्सा (दर०, पूर्णि०-१) । पर्या०-अधबल्ला [अध + बलिया < *अर्धवलय] ।

अधभरी-(सं०) वह धान जिसके दानों में चावल पूर्णतया विकसित नहीं होते, बल्कि आधा भूगा हो जाता है (द० मुं० भाग० १) [अध + भरी] ।

अधमना—(सं०) आधे मन का बटखरा । आधा मन बीस सेर का होता है; अतः इसे 'बिससेरा' भी कहते हैं (बि०, हरि०, री०) । [अध + मना < *अर्ध + मान, मानक (?)] ।

अधरसा—(वि०)—(शाहा०) दे०—अधरासा । [अध + रसा < *अर्ध + रस] ।

अधरासा— (वि०) किसी फल आदि का पूर्ण रूप से न पकना (चंपा०-१, भाग०-१) पर्या०—अधरसा (शाहा०-१)। [*अर्ध+रासा* < *अर्ध+रस*] ।

अधलप्पा-(सं०)-(१)(प०-मै०)। दे०—अधलावा । (२) मवेशी को पोसने के लिए दिये जाते समय की वह शर्त्त, जिसमें मवेशी को कीमत आँककर दिया जाता है और उसे बेचते समय उस मवेशी की कीमत से आँकी हुई कीमत बाद करके शेष रकम को दो भागों में बाँट दिया जाता है, आधी रकम और आँकी हुई कीमत मवेशीवाले को मिलती है और शेष रकम पोसनेवाले को (चंपा०-१)। [*अध+लप्पा* < *अर्धलाभ (?)*] ।

अधलावा—(सं०) पशु आदि के खरीदने या कुआँ बनाने के लिए दी जानेवाली अग्रिम द्रव्यराशि (पू० मै०)। पर्या०-करजा, तगावी (गं०द०), अधलप्पा (प०-मै०, चंपा०) (इस तरह का कर्ज किसानों को दिया जाता है। ऋणदाता दिये गये कर्ज का द्रव्य और पशु को आय का आधा द्रव्य ले लेता है।)। [< *अर्धलाभ*]

अधवाड़—(सं०) बाँस आदि के ऊपर का आधा भाग (चंपा०-१, पट०-४, भाज०)। [*अध+ वाड़* < *अर्ध+फलक या वल*] ।

अधसेरा—(सं०) आधे सेर का बटखरा (बिह०, हरि०, री०)। *अध+सेरा* < *अर्ध+सेटक*] ।

अधिया-(सं०)-(१) किसी जमींदारी या संपत्ति के आधे भाग का अधिकारी (गं० उ०, भाग०-१)। पर्या०—आधेआध (शाहा०) । [*अर्धिक* (संस्कृत), *अधियाँ* (ने०)] । (२) किसान और जमींदार के बीच भावली अथवा जिरात जमीन की उपज के आधे-आधे भाग की बटाई (गं०उ०, द०-प०, भाग० १) । पर्या०—अधबटैया,—पह (पट०, गया), अधबटिया (चंपा०, द०-पू०), दू दाना में से एक दाना (द०-प० शाहा०)। [*अर्ध*]।

अधैल—(वि०) आठ दाँतों का पूर्ण वयस्क बैल दे०—पूरा । [*अध+एल (देशी ?)*]

अनंदी—(सं०) एक प्रकार का धान (चंपा०-१) ।

अनउआ—(सं०) दे०— अनुआ ।

अनगुत—(सं०) प्रातः, सबेरे (मुं०—१, भाग०—१, चंपा०) । [*देशी, मिला०-अनूरुक* (संस्कृ०)= *अरुणकाल*] ।

अनजान—(सं०) एक पशुखाद्य घास (पट०, गया, शाहा०) । [*देशी*] ।

अनजीर—(सं०) एक मीठा और सुस्वादु फल । यह मुनक्का से बड़ा होता है (पट०-१) । [**अंजीर* (संस्कृ०, फा०)] ।

अनपट—(सं०) दे०—अन्पट ।

अनवाह—(सं०) जोते जानेवाले खेत में हल में चलनेवाले बैलों को अवकाश देने के लिए रखे गए अतिरिक्त बैलों को देखनेवाला लड़का (पू० मै०, उ० मै०) । पर्या०—चरवाहा, गोरखिया, [*अन + वाह, *अनडुह् + वाह,* (चरवाहा), *गोरखिया* < *गोरखी, गुराखी* (मरा०)] ।

अननास—(सं०) दे०—अनास ।

अनाज—(सं०) भोजन, अन्न । (पट०-४, भाग०-१, (चंपा०) । [*अन्नाद* (संस्कृ०)—(हि० श० सा०), *अन्नाद्य, अन्नादि* । *अनाज* (हिं), *अनाज्* (ने०), *अनाज* (कश्मी०), *अनाज, नाज* (कुमा०), *अनाज* (बं०), *अनाज* (पं०), *अनाज* (ल०), *अनाजु* (सि०), *अनाज* (गु०) *अन्दा* (काफि० अश्क)] ।

अनाठी—(सं०) अनाड़ी । वह बैल, जो अभीतक जोता नहीं गया हो (मुं०—१, भाग०—१)। [*अन* (अव्य०, निषे०)+*आठी* (=काठ < काष्ठ), *अनघु* (ने०) =*अपरिचित, अनिष्ट* (संस्कृ०)—(नेपा०)]

अनाठु—(सं०) ताल का वह पेड़, जिससे रस नहीं निकलता (द०-पू० मै०) । दे०—कोढ़ी ।

अनारकली—(सं०) रोपा जानेवाला एक प्रकार का धान (द० मुं०, शाहा०) । [*अनार+कली, अनार* (फा०)+*कली* (संस्कृ०)] ।

अनास—(सं०) एक फल-विशेष । इसके पौधे छोटे, पत्ते लम्बे और फल खट्टे होते हैं (पट०-१) । [*अननास* (हिं०), *नानस* (अंजि० अमे०), *उनानास* (पुर्त०)] ।

अनुआ—(सं०)-(१) वह ऊँचाई, जहाँ तक करीन आदि से पानी उठाया जाता है (चंपा०) ।

दे०—बोदर । (२) वह स्थान या गड्ढा, जहाँ करीन गाड़ कर पानी पटाया जाता है (चंपा०) । [*मिला० अनूक = रीढ़* (मो० वि० डि०); *अनूप = जलसमीपस्थ, नदीतट; अनूर्ध्व = अधिक ऊँचा नहीं, अनुन्नत*] ।

अनुपान—(सं०) एक प्रकार का केला (दर०-१) । पर्या०—अल्पान (पट०-४) । [*देशी*] ।

अनुराधा—(सं०) सतरहवाँ नक्षत्र, अनुराधा, यह नक्षत्र कात्तिक महीने में पड़ता है । [*अनुराधा*] ।

अनूपी—(सं०) एक प्रकार का फूल (दर०, पूर्णि०-१) । [*अनूप=जल-समीपस्थ*] ।

अनेर जाएल—(मुहा०) पशुओं का भुला जाना, भटक जाना (उ० पू० मै०) । दे०—हेरा जाएल । [*अनेर + जाए + ल* (प्र०) *अनेर* < *अनृत* (हि० श० सा०), *अनेड = मूर्ख,* < **अन् + अर्य = अस्वामिक*] ।

अनेरवा जाएल—(मुहा०) दे०—हेरा जाएल और अनेर जाएल । [*अनृत* (= अनेर)—हि० श० सा०), *अनेड = मूर्ख, *अनर्य* (= *अन् + अर्य = अस्वामिक*]

अनेरा—(सं०) (प० मै०, भाग० १) । दे०—अनेरिया । [**अनर्य = (अन् + अर्य) अस्वामिक*] ।

अनेरिया—(सं०) वह पशु, जो बिना किसी देख-भाल के चरने के लिए छोड़ दिया जाता है (प०, चंपा०-१) । पर्या०—अनेरा (प०-मै०), छुटहा (गया), उदंगर (पट०), उज्झा (द० मुं०), उजरा (द० भाग०) । [**अनर्य* (< *अन् + अर्य*) = *अस्वामिक* ; *अनेरा = अनर्य; छुटहा* √*छुट* (देशी), √*छुट* (छेदने, संस्कृ०); *उज्झा = उज्झ, उज्झित* (संस्कृ०) = *त्यक्त; उजरा—उज्जड* (देशी), *उद्* √*ज* (= वयोहानी)] ।

अनौआ—(सं०) वह ऊँचाई, जहाँ तक करीन आदि से पानी उठाया जाता है (द० प० शाहा०) । दे०—बोदर । [*अनूक = रीढ* (मो० वि० डि०), *अनूप = जलीय प्रदेश, जलीय तट, अनूर्ध्व*] ।

अन्न—(सं०) भोजन, अनाज । [*अन्न*] ।

अन्पट्—(सं०) मवेशियों की आँख को बंद करने के लिए सींक और टाट का बना हुआ ढक्कन (सा०, चंपा०) । पर्या०—खोलसा (मै०, द०-पू०) खोल, खोला (पू०), छोपनी (शाहा०), नोकूता (शाहा०), अँधियारी (पट०), अँधेली (गया) । टोकनी (पट०-४) खोलसा —(भाग-१) । [*अनुवृत=(अनु √वृ + त) ढँकनेवाला*] ।



अन्पट्

अन्हड़—(सं०)—दे०—अंधड़ (दर०-१, भाग०-१) । [**अन्धकर*] ।

अन्हरवखे—(सं०) सबेरे का वह समय, जब पूरा साफ नहीं हुआ हो और कुछ-कुछ अंधकार हो (चंपा०—१) । पर्या०—अन्हरुखे (भाग०-१) । [*अन्हर+ वखे,* < *अन्ध (क) र + वखे* (< *उषस्*)] ।

अन्हरिया—(सं०) ऊख में अंकुर फूटने पर पहली कोड़नी या जोत (उ०-पू० मै०) । दे०—पुआरी । पर्या०—अन्हारि—(दर०-१) । [*अन्धकर*] ।

अन्हरिया—(सं०) कृष्णपक्ष की रात, जिसमें चन्द्रमा नहीं उगता (चंपा०-१, दर० १, पट०-४, भाग०-१) । [*अन्धकारिन् (पक्ष)*] ।

अन्हरुखे—(सं०)—(भाग०-१), दे०—अन्हरवखे ।

अन्हरोख—(सं०)—(दर०-१); दे०—अन्हरवखे [*अन्हर + ओख* < **अन्धकर + उषस्*] ।

अन्हारि—(सं०)—(दर०—१) । दे०—अन्हरिया और पुआरी ।

अन्हारी देल—(मुहा०)—ईख के खेत में पापड़ पड़ना (दर०-१) ।

अन्हाव—(सं०)—धान रोपने के पहले खेत को तैयार करने के लिए जल से भरने की प्रक्रिया (द० भाग०) । दे०—लेव । [*अनु + अवगाह*]

अन्हावल—(क्रि०)—धान के पौधे को रोपने के लिए खेत गीला करना (मुं०-१) । [*स्नान (?), अनु + अवगाहन*]

अन्हेरिया—(सं०)(पट०); दे०—अन्हरिया । [*अन्धकार*] ।

अन्होर कइल—(मुहा०) बहुत जोर से बाजा बजाकर हल्ला करना (चंपा०—१), [*अन्होर + कइल; आह्वान (?)—कइल* (< √*कृ = कर*)] ।

अपजोस—(सं०) एक प्रकार का मेवा। यह मुनक्का से बड़ा होता है (पट०-१)। [*आबजोश* (फा०)]।

अपटा—(सं०)-(१) वह खेत, जिसे बाढ़ आदि किसी कारण से कृत्रिम सिंचाई की आवश्यकता नहीं होती। पर्या०—उपटा (पट०-४, भाग०)। (२) नहर या पैन आदि का मुँह खोलकर जमीन की सतह से ऊँचे जल-प्रवाह के द्वारा पूर्णरूपेण खेत की धारावाहिक सिंचाई (उ०-प०)। पर्या०—**अगरपाट** (चंपा०, उ० प० मैं०), **टोड़** (प०), **मोहर** (प०), **छानन** (पट०, गया), **मेलान** (द० मुं०) **ढुरका, उपटा** (द० भाग०)। [*अ + पटा*]।

अपराजिता—(सं०) एक प्रकार का फूल (दर०-१)। [*अपराजिता* (संस्कृ०)]।

अपाय—(सं०) फसल का एक रोग (मुं०-१, भाग०-१)। [*अपाय* (संस्कृ०)]।

अपासी—(सं०) सिंचाई-(पट०-४) दे०—आबपाशी। [*अ+पासी< * आबपाशी* (फा०)]।

अपुआँग—(सं०) एक प्रकार की घास (दर०-१)।

अफार—(सं०) बिना जोता हुआ खेत (सा०-१, चंपा०; आज०)। पर्या०—परती (पट०-४, भाग०-१)। [*अ + फार < अ + फाल, अफल*]।

अफीम—(सं०) पोस्ते से उत्पन्न होनेवाली एक वस्तु, जो दवा और नशा दोनों कामों में व्यवहृत होती है। [*अफीम* (फा०) *अहिफेन* (संस्कृ०)]

अबई—(सं०) दे —अब्बी [*अ+बई *अ+ बीज, *अवीर्य*]।

अबरखन—(सं०) वर्षा का अभाव (सा०-१)। [*अ+बरखन< *अ+वर्षण*]।

अबाद—(स०)-(१) वह जमीन, जो कभी परती नहीं रहती। (पट०-४, भाग०-१) पर्या०—अबादी, उठती (चंपा०)। (२) फसल लगाया हुआ खेत। पर्या०—**अबादी, पह** (द० पू० गया), **खील बैठाओल**, (पट०), **खिलमार** (शाहा०)। [*अबाद = आबाद* (फा०), *सुपीक* (मरा०)]।

अबादी—(सं०) दे०—अबाद [*आबादी* (फा०)]

अबिउज—(सं०) मरा हुआ या उगने में असमर्थ बीज (गं० उ०)। दे०—अब्बी। [*अ + बिज्ज < *अबीज, *अवीर्य*]।

अबी—(सं०) वह अन्न का बीज, जो उग नहीं सकता है (चंपा०-१)। [*अ+बी< *अबीज, *अवीर्य*]।

अबुआब—(सं०) गाँव मे रहनेवाले शिल्पियों और दूकानदारों आदि से जमींदार के द्वारा लिया जानेवाला भूमिकर (पू०)। दे०—मोतरफा। [*अबवाब*] (अर०)]।

अबों—(सं०) वह बैल, जो काम में कभी न रुके (द० मुं०)। दे०—अदार। [*अवोट* (संता)= *अपरिश्रान्त*]।

अबौन—(सं०) रोपने के बाद खेत के पानी को बाहर निकालकर धान के पौधों में धूप लगाने की प्रक्रिया। (मुं०-१, भाग०-१)। [*देशी*]।

अब्बर—(वि०) कमजोर मिट्टी (चंपा०)। दे०—हलुक। [*अ + ब्बर < *अबल*]।

अब्बी—(सं०)-(१) न जम सकनेवाला अनाज। पर्या०—**निरबीज, बिजमार, बीयामार, बरुआ** (द० प० शाहा०), **कुब्बी** (द० भाग०)। (२) न उगनेवाला निष्फल बीज (प०)। दे०—सुग्गी। पर्या०—**अबई, कुब्बी** (द० भाग०)। [*अ + ब्बी < *अवीर्य, *अबीज*]।

अमचूर—(सं०) आम की सूखी खटाई (चंपा०-१)। [*अम + चूर < *आम्रचूर्ण*]।

अमड़ा—(सं०) एक फल और उसका पेड़। इसका फल कसैला और खट्टा होता है। इससे चटनी, अँचार आदि बनाये जाते हैं। (पट०-१, दर०-१, सर्वत्र)। [*आम्रातक* (संस्कृ०); **अंबाड़* (प्रा०); *अंबाड़ा, आमरा, अमरा, अमला* (हिं०); *आमड़ा, अमड़ा* (बँ०); *अंबाड़ा, आंबचार* (मरा०) *जंगली आंबो, अंमेडा, अंबेडा* (गु०), *आँबोडेकायि; आमोट, अंबालमु* (ते०); *अमरा, अंबड़ा* (पं०), *अमारो* (ने०)]।

अमढ़ाह—(सं०) वह बटखरा० जो उचित तौल से ज्यादा हो (चंपा०-१)। [*देशी*]।

अमता—(सं०) एक प्रकार की घास, जिसे पशु खाते हैं (प० मैं०, चंपा०)। [*देशी*]।

अमती—(सं०) एक प्रकार का फल (दर०-१)।

अमदुर—(सं०) अमरूद। एक प्रकार का पेड़ और उसका फल। इस पेड़ का फल कच्चा रहने पर कसैला और पकने पर मीठा होता है। इसके भीतर छोटे-छोटे बीज होते हैं। यह फल रेचक होता है। इसकी पत्ती और छाल रँगने और चमड़ा सिझाने के काम में आती हैं। इसकी पत्ती के काढ़ा से कुल्ली करने से दाँत का दर्द दूर होता है। मदक पीनेवाले इसकी पत्ती को अफीम में मिलाकर मदक बनाते हैं (पट०-१)। पर्या०—**अमधुर**—(चंपा०), **अमरूध** (शाहा०-१)। [*अमृत* (फल); *जाम-त्रिहि* (म० प्र०, म० भा०); *प्यारा* (बं०) *पेरु*-(मरा०); *पेरु-फल, पेरुक* (त०, ते०); *रुत्री* (ने०); *सफरी, अमरूद* (अव०); *साफली, लताम* (मं०)]

अमधुर—(सं०)—(चंपा०)। दे०—अमदुर।

अमरलत्ता—(सं०) बबूल आदि के पेड़ों पर फैलनेवाली बिना जड़-पत्ते की एक प्रकार की पीली लता। इसे 'परायेभोजी' लता भी कहते हैं। यह उन पेड़ों से रस लेकर जीती है (मुं०-१, पट०-४, भाग०-१)। पर्या०—**अमरबेल**। **अमरलत्ती** (दर०-१, पूर्णि०-१, भाग०-१, चंपा०)। [*अमर+लत्ता < अम्बर + लता, < अमर + लता*]

अमरलत्ती—(सं०)—(दर०-१,—पूर्णि०-१, भाग०-१, चंपा०)। दे०—अमरलत्ता।

अमरूध—(सं०) एक प्रसिद्ध फल (शाहा०-१)। दे०—अमदुर। [*अमृत* (फल)]

अमरोरा—(सं०) एक प्रकार की घास, जिसे पशु खाते हैं (पू० मैं०, गया, चंपा०)। [*देशी*]

अमरौरा—(सं०) एक प्रकार का साग (दर०-१, पूर्णि०-१)। [*देशी*]

अमलदारी—(सं०) अमला का अधिकार (सा०-१, पट०-४)। [*अमल + दारी < अमला + दार + ई* (अर०)]

अमबाड़ी—(सं०) आम का बाग (पट०-१)। [*अम+बाड़ी < आम्र+वाटिका*]

अमसूल—(सं०) एक प्रकार का धान (दर०-१, पूर्णि०-१)। [*अम+सूल < आम्र+शूल < आम्र+शूक*]

अमहा—(सं०) बैल का एक भेद (घाघ)। [*अमाह* (हिं०) = नेत्र का एक रोग, जिसमें आँख के ढेले से लाल मांस निकल आता है (हिं० श० स०) < *अमास*]

अमारी—(सं०) सूखे हुए गोबर का (बिना बनाये) ढेले जैसा टुकड़ा, जो जलावन के काम में आता है (गया, द० मुं०, भाग०, पट०-४, भाग०-१)। दे०—करसी। मुहा०—**अमारी गुड़ल**—गोबर से अमारी बनाना।

अमावट—(सं०) पके आम के रस को सुखाकर बनाया गया परतदार खाद्य-पदार्थ (प०, चंपा०)। पर्या०—**अमोट** (उ०-पू० मैं०, भाग०-१)।

अमीन—(सं०) खेत में लगी फसल का मूल्य आँकने के लिए नियुक्त व्यक्ति (पट०-४, चंपा०, भाग०-१, मग०-५)।

अमोट—(सं०) पके आम के रस को सुखाकर बनाया गया परतदार खाद्य-पदार्थ (उ०-पू० मैं०, दर०-१, पूर्णि०-१; भाग०-१)। दे०—अमावट [*अम + ओट < आम्रावर्त*]

अमोला—(सं०) आम का नया निकलता हुआ बिरवा (चंपा०-१)।

अम्माघवद—(सं०) सफेद चावल और छिलकेवाला एक अगहनी धान, जिसकी बाल में तीन-तीन दानों के गुच्छे होते हैं (सा०-१, चंपा०)। [*अम्मा + घवद < आम्रगुत्स* (?)]

अमौरी—(सं०) आम का छोटा टिकोला, जिसमें रेशा नहीं आया हो (पट०-१)। [*अम + औरी < आम्रवटी*]

अरई—(सं०)—(१) मवेशियों को हाँकने के लिए छड़ी के अंत का नुकीला भाग। पर्या०—**अरौआ** (पट०, द० मुं०), **आर** या **अरूआ** (द० भाग०)। [*अरुंतुद*] (२) वह बैल, जो चलते-चलते एकाएक रुक जाता है (सा०-१, चंपा०)। [*अरुंतुद*]

अरई

अरख—(सं०) कफा (शुद्ध अफीम) का रस।

अरगनी—(सं०)—(चंपा०)। दे०—अलगनी। [*अर्क* (संस्कृ०), *अर्क* (ने०), *अर्क* (मरा०)]

अरजन—(सं०) कमाई (चंपा० १)। [*अर्जन*]

अरजुन—(सं०) एक वृक्ष-विशेष, जिसकी छाल दवा के काम में आती है (शाहा०-१)। [*अर्जुन*]

अरजल—(वि०) उपार्जित (चंपा०-१, पट०-४, भाग०-१)। [*अरज+ल (प्र०) < √अर्ज*]

अरदरा—(सं०) छठा नक्षत्र, आर्द्रा, यह आषाढ़ के कृष्णपक्ष में पड़ता है। टि०—बिहार में सामान्यत: आषाढ़ में आर्द्रा नक्षत्र में धान बोया जाता है और विश्वास किया जाता है कि इस नक्षत्र में बोने से धान की प्रचुरता, पुनर्वसु नक्षत्र में खोखले दाने या खंखड़ी की अधिकता और पुष्य में बोने से सर्वथा अभाव होता है, जैसा कि निम्नांकित कहावत से ज्ञात होता है—

"अरदरा धान, पुनरवस पैया,
गेल किसान, जे बोये चिरैया।"

प्राय: धान पूस (पौष) महीने में काटा जाता है। बिहार के किसान आर्द्रा नक्षत्र की वर्षा पर बहुत अधिक निर्भर किया करते हैं। इस नक्षत्र में वर्षा होने का अर्थ है कि धान की फसल अच्छी होगी। अतएव, इसके नाम पर कई कहावतें प्रसिद्ध हैं—

"आदि न बरसे अरदरा हस्त न बरसे निदान।
कहहि डाक सुनु भिल्लरि भये किसान पिसान॥"

यदि आर्द्रा-नक्षत्र के आरंभ में और हस्त-नक्षत्र के अन्त में वर्षा नहीं होती है, तो डाक कहते हैं—हे भिल्लरि! सुनो, किसान पिस जाते हैं।

"चढ़त बरसे अरदरा उतरत बरसे हस्त।
कतेक राजा डाँड़े, रहे अनंद गिरहस्त॥"

यदि आर्द्रा-नक्षत्र के आरंभ में और हस्त के अंत में वर्षा हो जाती है तो राजा की ओर से मालगुजारी कितनी भी क्यों न हो जाय, गृहस्थ (किसान) प्रसन्न ही रहेगा।

"अरदरा बरसे सभ किछुहीं।
एक जवास पतर बिन भौं॥"

यदि आर्द्रा में वर्षा होती है तो सभी फसल अच्छी होती है, केवल जवास (एक प्रकार का कँटीला पौधा) ही पत्रहीन हो जाया करता है। पर्या०—अद्रा। [*आर्द्रा*]

अरब्बी—(सं०) एक प्रकार का कंद, जो छोटा, लंबा, लसदार और खाज करनेवाला होता है तथा जिसकी तरकारी बनती है (उ०-पू० मं०)। दे०—अरई। [*आलुकी* (संस्कृ०), *आलुई* (प्रा०), कोचू, कच्चू (बं०), *आलु, अलवाचा काँदा* (मरा०), *अलवी* (गु०), *राव आलु, अरबी,* कचालू (पं०), *शिमक, किजहगू* (ता०), *चम्मकुरा* (ते०)]

अररा—(सं०) नदी का ऊँचा किनारा। दे०—करारा। पर्या०—आरार (पट०-४)। [*आर =तट* (हि० श० सा०)]

अरवा—(सं०) बिना उबाले हुए धान को सुखाकर कूटा गया चावल, जो पवित्र और शुद्ध मानकर देवादि विषयक कार्य में व्यवहृत किया जाता है (भाग०-१, चंपा०-१, पट०-४)। दे०—चाउर। [*अ + रवा = (लावना) = जलाना, भूनना* (हि० श० सा०), *मिला०—अर्प्य = देवादि पर अर्पण करने योग्य*]

अरार—(सं०)-(१) नदी का ऊँचा खड़ा किनारा (प्राय: सर्वत्र)। (२) पानी सूख जाने के बाद बाँगर जमीन का फट जाना (चंपा०-१)। दे०—करारा। [*आर* (हि० श० सा०), *मिला०—अरर = किवाड़, अवार = नदी का इधर का तट। टेकाड़* (मरा०)]

अरारि—(सं०) दे०—करारा।

अरिअन—(सं०) ऊँची-नीची और ऊबड़-खाबड़ जमीन (द० भाग०)। दे०—बीहड़ [*अरण्य (?)*]

अरिया—(वि०) अगल-बगल के खेतवाले। किसी व्यक्ति के खेत की बगल में जब दूसरे का खेत रहता है, तब दोनों 'अरिया' कहलाते हैं (मुं०-१, चंपा०)। पर्या०—अरियापरोस (पट०-४, भाग०-१)। [*आर = खेत की मेड़ + इया* (प्र०)]

अरियापरोस—(वि०)-(पट०-४)। दे०—अरिया।

अरुआ—(सं०) बैल, भैंस आदि को हाँकने के लिए बनी छड़ी के अन्त का नुकीला काँटेदार भाग। दे०—अरई। [*अरुष्कर*]।

अरुआ—(सं०) अरुई की जाति का लम्बा, मोटा कंद, जिसकी तरकारी बनती है। दे०—अरुई। पर्या०—कंदा (पट०-४)। [*आलुक, आलुकी*]

अरुई—(सं०) एक प्रकार का कंद, जो छोटा, लंबा, लसदार और खाज करनेवाला होता है तथा जिसकी तरकारी बनती है। पर्या०—अरब्बी (उ०-पू० मं०), पेकचा (द०-प० मं०)

पेकची (शाहा०), पेपची (गया, शाहा०), अलती (द० भाग०), अरुई (भाज०)। कच्चू, अरुआ, कंदा, कण्डा = अरुई का बड़ा भेद। [*आलुकी* (संस्कृ०), *आलुई* (प्रा०), कोचू, कच्चू (ने०), *आलु, अलवाचा काँदा* (मरा०), *अलवी* (गु०), *राव आलु, अरबी,* कचालू, (पं०), *शिमक, किजहगू* (ता०), चम्मकुरा (ते०)]

अरैया—(सं०)-(१) धान के पौधे का एक रोग (द० मुं०)। पर्या०—पोआरी (पू०)। (२) पानी में होनेवाली बिना पत्तों की एक घास, जिसे पशु खाते हैं (पट०-४)। [*देशी*]

अरौ, अरौवा—(सं०) हलवाहे का छोटा डंडा या छोटा पैना, जिसकी नोक में बैलों के पुट्ठों पर गड़ाने के लिए लोहे की पतली कील लगी रहती है (मुं०-१, पट०-४, भाग०-१)। [*अरुष्कर, अरुंतुद*]

अरौआ—(सं०)-(१) पशु को हाँकनेवाली छड़ी के अन्त का नुकीला काँटेदार भाग (पट०, द० मुं०)। दे०—अरई। [*अरुष्कर, अरुंतुद*] (२) हेंगा खींचने के बरहे (रस्सी) की जगह काम में आनेवाली बाँस की लग्गी। दे०—कुण्डी।

अर्रंछो—(सं०) भैंसा को पुकारने का शब्द (सा०-१, पट०-४)। पर्या०—अर्रंहे (भाग०-१, चंपा०)।

अर्रा—(सं०) एक प्रकार का थोड़ा बड़ा दाँतदार औजार, जिससे लकड़ी काटी जाती है (गं० बं०)। दे०—आरा। [*आर*]

अर्राइल—(सं०) वृक्ष के गिरने के समय की आवाज (चंपा०-१, पट०-४)। [*अनु०*]

अर्रंहे-(सं०)-(भाग १, चंपा०)। दे०—अर्रंछो।

अर्हाएल—(क्रि०) किसी को कोई काम करने के लिए कहना (चंपा०-१, पट०-४)। [*अर्ह + आएल* (प्र०) *अर्ह < अर्ध < ऋद्धि (?)*]

अलंग—(सं०)—(१) जल के खजाने या अहरा से संबद्ध समतल भूमि से ऊपर उठा हुआ बाँध। दे०—पिंड। (२) दो चढ़ावों या जलाशयों के बीच में उठाया गया किनारा या मेंड़ (पट०)। दे०—खाँवाँ। (३) सामान्य भूमि से ऊँची उठी हुई खेतों की सीमा, मेंड़ (पट०, गया, द०-प०)। दे०—आर। (४) शरीर का एक अंग। हिस्सा। भाग (मुं०-१, पट०-४, भाग०-१, चंपा०)। [*अ + लंग < अवलग्न;—मिला०—"हिसायां प्रणये ज्ञानेऽवलग्नो मध्यलग्नयो:"—(अने०)। "अवलग्नोऽस्त्रियां मध्येत्रिषु स्यालग्नमात्रके"—(मेदि०)। अलङ्घ्य = अलङ्घनीय; सीमा*]

अलगल—(सं०) पाला पड़ा या मारा लगा हुआ ज्वार, मकई, बाजरा आदि (गया)। दे०—मखियाएल। (वि०) सामान्य अर्थ में उठा हुआ या उभरा हुआ। [*अ + लग + ल (प्र०) = न लगा हुआ, निष्प्राण*]

अलगा—(सं०) डंठल के बिना ही केवल बाल की कटाई (द० भाग०)। दे०—बलकट। [*अ + गला*]

अलगनी—(सं०)-(१) फसल उखाड़ने का काम (मुं०-१, भाग०-१)। (२) कपड़े टाँगने या रखने की रस्सी या बाँस (पट०-४, भाग०-१)। पर्या०—अरगनी (चंपा०)। [*अ + लग + ना* (प्र०) + ई (प्र०) < *अवलग्न (?)*]

अलगावल—(क्रि०) किसी चीज का बोझ, दूसरे को, किसी के द्वारा उठाया जाना (चंपा०-१, पट०-४, भाग०-१)। [*अ + लगाव + ल* (धा० प्र०)]

अलगी—(सं०) वह हलकी जमीन, जो अपनी उर्वरा-शक्ति खो चुकी होती है (द० भाग०)। दे०—झूस। [*अ + लग + ई*]

अलगोजा—(सं०)—(१) बाँस के कोपल का ऊपरवाला भाग (चंपा०-१)। (२) वह बाँसुरी जो सामने से फूँककर बजाई जाती है (चंपा०-१)। [*देशी*]

अलती—(सं०) एक प्रकार का कंद, जो छोटा, लंबा, लसदार और खाज करनेवाला होता है तथा जिसकी तरकारी बनती है (द० भाग०, भाग०-१)। दे०—अरुई। [*मिला०—आलुकी*]

अलपजिया—(सं०) थोड़ा खानेवाला पशु (द०-पू० मं०)। दे०—निखोराह। [*अलप + जिया < अल्पजीव, अल्पजिह्व*]

अलान—(सं०) लताओं को ऊपर चढ़ाने का थेंगन। पर्या०—चौंड़ा (मुं०-१, पट०-४, भाग०-१, चंपा०)। [*आलन, आलंबन*]

अलावा, अलावे—(सं०)—(१) किसान के द्वारा अपने खेत में अफीम आदि की उपज के बाद बोई जानेवाली नील। (२) एक फसल काट लेने के बाद बोई जानेवाली दूसरी फसल। [*अलावा* (अ०)]

अलावे—(सं०) दे०—अलावा।

अलाह—(सं०) घासपात जलाकर बनाई हुई खाद (पट०, गया)। दे०—खादर।

अलुआ—(सं०)—(१) एक प्रकार का लंबा, मीठा कंद, जो फलाहार आदि में खाया जाता है (पू०-उ० बि०)। दे०—सकरकन्द। (२) एक प्रकार का कंद, जिसकी तरकारी बनती है (मं० उ०, द०, भाग०-१)। [*आलू, आलुक*]

अलुई—(सं०) एक प्रकार का कंद, जिसकी तरकारी बनती है (पू० मं०, सा०-१, चंपा०)। दे०—आलू। [*आलुकी*]

अलेर—(वि०) बहुत ज्यादा, इफरात (मुं०-१, भाग०-१)। [*मिला०—अल़ेख* = (जिसका हिसाब-किताब न हो; अधिक)]।

अलोत—(वि०) किसी वस्तु को किसी चीज की ओट में रखना (चंपा०-१, भाग०-१)। [*आलुप्त, मिला०—अलोप होना* (वि०)]

अल्हुआ—(सं०) एक प्रकार का लंबा मीठा कंद, जो फलाहार आदि में खाया जाता है (द०-पू० मं०, मुं०-१, भाग०-१)। दे०—सकरकंद। [*अल्हु + आ* < *आलुक*]

अवछराह—(सं०) अचानक हल्की चोट लग जाने की प्रक्रिया (चंपा०-१)। पर्या०—ओछ़वाह (पट०-४)। [*अवक्षर*]

अवछार—(सं०) वर्षा का वह झोंका, जो कुछ देर के लिए एकाएक पानी बरसा जाता है (चंपा०-१)। पर्या०—अछार (पट०-४, भाग०-१)। [*अवसार = आ + सार*]

अवाँसल—(क्रि०) नये बरतन को पहले-पहल काम में लाना (सा०)। दे०—उड़ाहल [*आवासन*]।

अवारज—(सं०) वह बही, जिसमें प्रत्येक दिन के आय-व्यय के सारांश का हिसाब लिखा रहता है। पर्या०—वारजा। [*अवारजा* (फा०)]

असकलाइ—(सं०) ढेंकी की धुरी (द० भाग०)। दे०—असोत। पर्या०—साम, समौआ (पट०-४)। [*अक्ष + शलाका*]

असठी—(सं०) मोरी (घोलती) के नीचे की ऊंची भूमि (गया)। [*अष्ठी ?*]

असनी—(सं०)—(१) आश्विन में होनेवाला सफेद छिलकावाला एक लंबा धान (सा०-१, पट०-४, पट०-१, भाग०-१)। (२) वह उड़द, जो अगहन में फलती है (मं०)। दे०—लरही। [*आसिन + ई = असनी* < *आश्विनीय*]। (३) पहला नक्षत्र, अश्विनी (पट०-४, भाग०-१, चंपा०)। दे—अस्विनी। [*अश्विनी*]

असफगोल—(सं०) एक प्रकार की तिल-जैसे दानवाली वस्तु, जो तरल वस्तु के साथ मिलने पर फैलकर लसदार बन जाती है तथा जिसके दाने और भूसी पेट की बीमारियों में खाई जाती है। इसका दाना भूरा एवं गुलाबी होता है और भूसी श्वेत-भूरी होती है। पर्या०—सफगोल (पट०-४, भाग०-१, चंपा०)। [*इसबगोल* (फा०)]

असमानी—(सं०) हल्का नीला रंग (पट०-४, भाग०-१)। दे०—कुसुम। [*आसमान + ई = आसमानी* (फा०)। *मिला०—आशा* (दिशा) *+ मान* (संस्कृ०)]।

असरा—लकड़ी का वह भाग जो कच्चा होता है (चंपा०-१, पट०-४)। पर्या०—असला (भाग०-१) [*अ + सरा* < *असार*]

असराफ—(सं०) ऊँची श्रेणी के काश्तकार (पट०-४)। पर्या०—सुरफा (पट०), सुरफान (गया), बड़ आदमी (गं० उ०)। [*अशराफ* (अर०)]

असरेखा—(सं०) नवाँ नक्षत्र, आश्लेषा। यह नक्षत्र प्रायः सावन के अंत में आता है। यह चक्राकार छह नक्षत्रों से बना है। इसका देवता सूर्य है। कहा०—'जे न भरे असरेखा मग्घा।
फेर भरे असरेखा मग्घा॥'
—जो आश्लेषा और मघा नक्षत्र में नहीं भरता है, वह तबतक नहीं भरता है जबतक पुनः दूसरे वर्ष आश्लेषा और मघा नक्षत्र नहीं आ जाते। पर्या०—असरेस, असरेसा

(चंपा०), असलेखा। असरेखा (आज०)। [*आश्लेषा*]

असरेस—(सं०) दे०—असरेखा।

असरेसा—(सं०)—(चंपा०)। दे०—असरेखा।

असल—(सं०) वह मूलधन, जो सूद पर दिया गया हो (पट०-४, भाग०-१, चंपा०)। पर्या०—मूर, मूल (शाहा०), सूदी रुपया (द०पू०)। [*असल*—(अर०)]

असल-के-असल—(सं०) जिस भाव पर खरीदा गया हो, उसी भाव पर बेचने की प्रक्रिया (द० पू०, पट०-४, भाग०-१, चंपा०)। दे०—बिक्री के भाव।

असला—(सं०)—(भाग०-१)। दे०—असरा।

असलाएल—(क्रि०) सड़ना, स्वाद उतरना, गलना (मुं०-१, भाग०-१)। [*अ + सलाएल* < *अ-शरण* (= आ + √ शृ = नष्ट होना, सड़ना), *मिला०—सल्त्र* (अ०)]

असलेखा—(सं०) नवाँ नक्षत्र, अश्लेषा। दे०—असरेखा [*आश्लेषा*]।

असाढ़—(सं०) आषाढ़, भारतीय वर्ष का चौथा और ग्रीष्म का अंतिम मास। प्रायः जून के अन्त और जुलाई के आदि के १५ दिन। इस मास की पूर्णिमा को प्रायः उत्तराषाढ़ नक्षत्र पड़ता है। अतः आषाढ़ नाम पड़ा है। (पट०-४, भाग-१, चंपा०, शाहा०, सा०, आज०)। दे०—अखाढ़।

असाढ़ी—(सं०)—(१) आषाढ़ में बोई जानेवाली नील की दूसरी खेती (गं० उ०)। दे०—फगुनी। (२) असाढ़ में बोयी जानेवाली फसल। [*असाढ़ + ई* < *आषाढ़ीय*]

असाढ़ी के कोड़—(सं०) ऊख की मुख्य कोड़नी, जो आषाढ़ या आर्द्रा-नक्षत्र में होती है (प०)। दे०—अखाड़ी कोड़नी। [*असाढ़ी + कोड़*]

असाढ़ी कोड़न—(सं०) आषाढ़ महीने में ऊख के खेत की हलकी कोड़ाई (पट०)। दे०—असाढ़ी कोर। [*असाढ़ी + कोड़न*]

असाढ़ी कोर—(सं०) आषाढ़ महीने में ऊख के खेत की हलकी कोड़ाई। पर्या०—टोकब (चंपा०, उ०-पू० मं०), पासा (गया), असाढ़ी कोड़न (पट०), अद्रा-कोरन (चंपा०, द०-पू०)। [*असाढ़ी + कोर*]

असामियार—(सं०) वह समझौता, जिसके द्वारा किसान लोग यूरोपियन निलहों के साथ नील की खेती में प्रवृत्त हुए थे। दे०—रैंयती। [*असामि + यार* < *आसामी* (अ०)]

असामिवार—(सं०) दे०—रैंयती। [*असामि + वार* < *आसामी* (अर०) *+ वार*]

असामी—(सं०)—(१) कर्ज लेनेवाला किसान (भाग०-१, चंपा०)। दे०—खदुका। (२) दे०—रिनिहा। (३) दूसरे की अविकृत जमीन को नगदी आदि किसी शर्त्त पर जोतनेवाला किसान। पर्या०—रैयत, परजा, काश्तकार, पोतेदार, (पट०, भाग०-१)। [*आसामी* (अ०) *मिला०—अस्वामी* (संस्कृ०)]

असार—(सं०) फाल की नोक तेज करवाने की क्रिया (द० मुं०)। दे०—धार पिटावल। [*आशार*]

असुनी—(सं०)—(भाग०-१)। दे०—अश्विनी।

असेरी—(सं०) मावली जमीन में पटवारी को प्रतिमन आधा सेर के हिसाब से मिलनेवाला पारिश्रमिक (शाहा०)। दे०—नोंचा। [*अ + सेरी* < *अधसेरी* < *अर्धसेट*]

अश्विनी—(सं०) पहला नक्षत्र, जिसकी आकृति घोड़े के मुख जैसी मानी जाती है। पर्या०—असनी, असुनी (भाग० १)। [*अश्विनी*]

अहमुख—(सं०) वह पशु, जो हमेशा जीभ निकालता हो (पट०-१)। [*अह + मुख* < *अहिमुख*]

अहरा—(सं०)—(१) जल के संग्रह के लिए बँधा हुआ जलाशय, खजाना, अहरे की मेंड़ (द० बि०, भाग०-१)। पर्या०—बाँध, भरयन (चंपा०), धूर (उ० मं०), छरकी (द०-पू० मं०)। (२) बाँध से घिरी हुई धान की उपजवाली और ऊँची सतह के जल-प्रवाह से युक्त ऊँची समतल भूमि (गं० द०, उ०-प०)। दे०—डँड़ड़ी। [*आधार, जलाधार, आहार*]

अहरी—(सं०)—(१) छोटा जलाशय। दे०—डँड़ड़ी। (२) खेतों की सीमा, जो सामान्य भूमि से ऊँची उठी रहती है, मेंड़ (पट०, गया द०-प०)। दे०—आर। पर्या०—अहीर.

लेहँड़ी = जानवरों के पानी पीने के लिए बनाया गया हौज (भाज०)। [अहरा + ई (अल्पा० स्त्री० प्र०)]

अहुरी—(सं०) बैल के खुर का गस्सा (चंपा०)। [अ + हुरी < अर्ध-खुर]

अहुला—(सं०) मूठा या पूला से बड़ी फसल की राशि (पू० मुं०, भाग०-१) दे०—अँवांसा।

आ

आँउस—(सं०) एक प्रकार का भदैया धान (दर०-, पूर्णि०-१)। [आशु (संस्कृ०), आउश—(बं०), आउस हि०)]

आँकड़—(सं०)— (भोज०, मग०, भाग-१)। दे०—अँकड़ा।

आँख—(सं०)—(१) बीजवाले आलू में निकला हुआ अंकुर (पट०-४, भाग०- १, चंपा०)। दे०—आँखि। (२) ऊख का अंकुर (गं० उ०, शाहा०, गया, चंपा०, भाग०-१)। पर्या०—अँखिय (उ० मुं०), अँखुआ (पट०), कनसी (द० मुं०), गोंफी (द० भाग)। (३) ऊख के टोने का आँख-जैसा वह स्थान, जहाँ से अंकुर निकलता है (गया, प०, द० मुं० भाग०-१) पर्या०—अँखिया (उ० मुं०), अँखवा (द०प० शाहा०), अँखुआ (पट०, पू० मुं०), अँखियाय (द० भाग०)। (४) बाँस की गाँठ पर आँख-जैसा स्थान, जहाँ से अंकुर निकलता है (बिहा०, भाज०)। [अक्षि (संस्कृ०), अक्खि (प्रा०), अक्ष]

आँखा—(सं०)—दे०—आखा।

आँखगुरा—(सं०) बाँट-बखरे का एक तरीका। इसमें जितने आदमियों में सामान बाँटना होता है, उतने हिस्से लगाकर हर आदमी के लिए अलग-अलग नाम सूचक वस्तुएँ मान ली जाती हैं। कोई लड़का अलग छिपा रहता है। उसीको वे सूचक दिये जाते हैं, जो एक-एक सूचक एक-एक हिस्से में रख देता है। जिसका सूचक जिस हिस्से में रखा जाता है, उसका वही हिस्सा हो जाता है (द०-पू०)। [अक्षि + कूट(ढेर', कूट > कूर > गूर > गुरा। अक्षि + गूढ़ (छिपा हुआ), गूढ़ > गूड़ > गुरा]

आँखि—(सं०)—(१) बीजवाले आलू में निकला अंकुर। पर्या०—आँख (पट०-४, भाग०- १)। (२) दे०—आँख—३। [अक्षि]

आँजुर—(सं०) अनाज के बँटवारे में किसान द्वारा प्रतिहल एक या दो सेर लिया जानेवाला अंश (शाहा०)। पर्या०—मुठिया(पट०-४)। दे०—अँजुरी। [अंजलि]

आँजुरी—(सं०) अन्न बोने के समय किसान की ओर से बढ़ई को मिलनेवाला एक निश्चित (अंजलि-मात्र) अन्न-परिमाण (गया)। दे०—अँजुरी। [अंजलि]

आँट—(सं०)—(१) अँदाज (चंपा०-१)। (२) पोखरे का किनारा (चंपा- १, भाग०- १)। [अंटी (हि०)—हि० श० सा०, मिला०—आउट्ट (प्रा०) < आ + √वृत्त]

आँटा—(सं०) जौ, गेहूँ आदि का पीसा हुआ चूर्ण। पर्या०—आटा, पिसान, कनिक, चिकस (पू० मुं०), चिकसा (द० भाग०, भाग०-१)। [अट्ट = 'अट्ट ...चतुष्कभक्तयोः'—(अने०), 'अट्टं भक्ते च' (मेदि०), अट्ट > आटा]

आँटी—(सं०) धान आदि काटने और ढोने की मजदूरी, जो प्रति बोझा एक आँटी के हिसाब से दी जाती है (दर०- १, भाग०- १, अन्यत्र)। [आँट + ई—(हिं०)-अँटना; (अंड ?—हि० श० सा०) [मिला०—ताड (संस्कृ०); ताडस्तु ताडने घोषे मुष्टि मेय तृणादिषु (मेदि०, अने०)]

आँटी, अँटिया—(सं०)-(१) तैयार होने पर रोपने के लिए उखाड़े हुए धान, मड़ुआ आदि के बीज के पौधों का पूला या बंडल (गं० उ०, द०-पू०, चंपा- १, भाग०)। (२) अनाज निकाल लेने के बाद पुआल का पूला (बंडल) (गं० द०, सा०, भाग०-१)। दे०—पूला। (३) अँटिया या पसही से बड़ी दोनों भुजाओं के अंदर भरकर आनेवाली फसल की राशि (द०-प०-शाहा०)। दे०—पाँजा। [आँट + ई, इया (हिं०—अँटना); ताड (संस्कृ०), मुष्टिमेयतृणादिषु (मेदि०—अने०)]

आँठिल—(सं०) एक प्रकार की घास, जिसे पशु खाते हैं। दे०—अँठुली। [आष्ठिल—मिला०—अम्बष्ठा चाम्ललोण्याम्—(मेदि०)]

आँठी—(सं०)—(१) एक प्रकार की घास, जिसे पशु खाते हैं (गया, द०-प० शाहा०)। दे०—अँठुली। (२) आम या किसी दूसरे फल की गुठली (चंपा०-१, भाग०-१)। (३) मवेशियों का एक प्रकार का रोग। इसमें वह काफी खाँसता है (चंपा०-१, पट०-४)। पर्या०—ढरका (पट०-४)। [अष्ठी, अष्ठिल—मिला०—अम्बष्ठा चाम्ललोण्याम्–(मेदि०)]

आँठी के रोटी—(सं०) आम की गुठली को पीसकर बनाई गई रोटी। पर्या०—किसली के रोटी (चंपा०), अमाँठी के रोटी (गया, द० मुं०), गुम्मा (द० भाग०, भाग०-१)।

आँता—(सं०) एक प्रकार का फल (दर०-१)। पर्या०—शरीफा (भाग०-१)।

आँतर—(सं०) खेत जोतने के समय एक पाह में कुछ हटकर आगे की ओर से जोतने की प्रक्रिया, जिससे बैल आसानी से घूम सकें और खेत की जुताई हो सके (दर०, पूर्णि०-१, पट०-४, भाग०-१, चंपा०, भाज०। पर्या०—हट्ठा(उ०-प०, उ०-पू०)। दोसर आँतर धरल (मुहा०)—दूसरी आँतर की जुताई आरंभ करना। [अंतर, अन्तरा]

आँतर, अँतरा—(सं०) पान की लताओं या पंक्तियों के बीच का स्थान (बिहा०, भाज०)। दे०—अँतरा। [अन्तर]

आँवट—(सं०) बिना साफ किया (छाँटा) पीसा हुआ जौ (उ०-पू० बि०, द०-पू० मुं०)। दे०—अखरा। [देशी]

आँसु—(सं०)–(१) भदई फसल (दर०-१ पूर्णि०-१)। (२) एक प्रकार का धान। [आशु]

आइल—(सं०) सामान्य भूमि से ऊँची उठी हुई खेतों की सीमा, मेंड़, (गया, द० मुं०) दे०—आर। पर्या०—आल (पट०-४) [दे०—आर]

आउटकेन—(सं) चीनी मिल में दूर से लाये जानेवाले ऊख, जिनकी तौल बाहर ही कर ली जाती है (बि०, री०, हरि०)। (मिला०—गेटकेन)। [आउट + केन (अँ०)]

आएन—(सं०) कोठी या बखारी का वह मुँह, जिससे अन्न निकाला जाता है। दे०—आन। [आनन, अयन]

आक—(सं०) ऊषर भूमि में होनेवाला एक प्रकार का प्रसिद्ध पौधा (दर०-१)। पर्या०—अकवन (पट०-४, चंपा, भाग०-१)। [अर्क]

आकासफल—(सं०) आसमान से गिरनेवाले ओले। पर्या०—बनौरी (द० मुं०-१, पट०-४, चंपा०, भाग०-१) [आकाश + फल]

आखा—(सं०) मवेशियों की पीठ पर ढोने के लिए रखा हुआ बोरा। पर्या०—आँखा, टंगी (चंपा), गोठिया (गं० द०), पट्टा (गं० द०), जोरा, गोन (शाहा०)। [देशी, मिला० अक्ष]

आखिरी पटावन—(सं०) ऊख की तीसरी या अंतिम सिंचाई (पट०, भाग०-१)। पर्या०-तेसर पटावन, तेसर पानी (पट० से अन्यत्र) तेसरो पटावन, तेसरो पानी (द०, भाग०, भाग०-१)। [आखिरी + पटावन]

आगा—(सं०) बीज के लिए काटे गये ऊख के ऊपर (सिरा) का टुकड़ा, जो और भाग की अपेक्षा जल्दी उगता है (द० भाग०)। पर्या०—अगगा (भाग०-१)। दे०—अंगेरी। [अग्र, अग्रकाण्ड]

आघी—(सं०) ऋण में लिये गये अन्न के बोझ पर दिया जानेवाला सूद (प०, द०-पू० मुं०, भाग०-१)। पर्या०—अगवन (द०-प० शाहा०), छाड़ा (पट०), कठौर (पट०)। [अर्घ]

आटा—(सं०) जौ, गेहूँ आदि का पीसा हुआ चूर्ण। दे०—आँटा। [अट्ट, (अट्टं... चतुष्कभक्तयोः—अने०), (अट्टं भक्ते च–मेदि०)]

आढक—(सं०) गँड़ासी की बेंट के अंत का गाँठदार अंश (द०-प० शाहा०)। दे०—एड़ा। [देशी (?)]

आढ़ा—(सं०) १६ पैला अन्न का परिमाण, जो प्रायः चार सेर से पाँच सेर तक होता है (भाग०-१)। [आढक]

आढ़ा—(सं०) दो सेर आठ छटाँक की एक तौल। पर्या०—अढ़ैया (पट०-४, चंपा०)। [आढक, अर्धदत्र]

आद—(सं०) एक प्रकार का तीता कंद, जिसका मसालों और औषधियों में उपयोग होता है (द०-पू० मुं०, दर०-१)। दे०—अदरख। [आर्द्रक]

आर्दी—(सं०)—दे०—अदरख। [आर्द्रक]

आर्दीचक—(सं०) एक प्रकार का खाने योग्य कंद। पर्या०-कंद, चोकन्दर। [आर्दी+चक]

आधेआध—(सं) किसी जमींदारी या संपत्ति के आधे भाग का अधिकारी (शाहा०, भाग०-१)। दे०—अधिया। [आधे+आध<अर्धार्ध]

आन—(सं०) कोठी या बखारी का वह मुंह, जिससे अन्न निकाला जाता है (भाग० १)। पर्या०—आना, आएन, मोहखा (पू० मुं०, पट०) मुँह (गं० उ०), मुक्का (पट० ४)। [आनन, अन्नायन]

आना—(सं०)—(भाग०)। दे०—आन। [आनन, अन्नायन]

आफत—(सं०) (१) बाढ़, वर्षा आदि के कारण नदी आदि में हुई जलवृद्धि (पट०, भाग०-१)। दे०—दाहर। (२) कष्ट, विपत्ति। [आफत (अ०), मिला० – आपद् (संस्कृ०)]

आबपाशी—(सं०) सिंचाई (सा०-१)। पर्या०—अपासी (पट०-४)। [आब+पाशी (फा०)]

आबादी—(सं०) बस्ती या वह भूमि, जिसमें खेती होती है। पर्या०—आबादी (पट०-४, भाग०-१)। [आबाद+ई (फा०)]

आभा—(सं०) फावड़ा—जैसे फलकवाली लकड़ी की बनी चीज, जो खेत में पानी पटाने के काम में आती है (गं० द०)। दे०—हथा। पर्या०—चाँड़ (पट०-४), छिआ (भाग०-१)। [मिला०—आभोग — आभोगो वरुणच्छत्र पूर्णतायत्नयोरपि-(मेदि०) अभ्रि—नाव में से जलादि के निर्गमन के लिए लकड़ी का कुदाल जैसा औजार। "अभ्रिः स्त्री काष्ठकुद्दालः—(अमर)"]


आभा

आभी—(सं०) कड़ी मिट्टी काटने के लिए नोकदार मजबूत एक प्रकार का फावड़ा (गया) दे०—फोरा। पर्या०-अँगैठी (पट०-४)। [आ+भिद्=यत्नपूर्वक काटना-मिला०—अभ्रि =काष्ठ-कुद्दाल]

आम—(सं०) एक प्रकार का प्रसिद्ध फल (बिहा०)। [आम्र]

आम के बगैचा—(सं०) आम का बागीचा। (भाग०-१)। पर्या०-गाछी (मुं०, भाग०-१)। [आम+के+बगैचा<बागीचा (फा०), मिला०—वार्क्ष (संस्कृ०)=वृक्षाणां समूहः—'वार्क्ष वनं तलं तल्कं गुहिलं समजं त्रसम्'—त्रिका०]।

आमदनी—(सं०) आनेवाला धन (भाग०-१)। [आमदनी (फा०)]

आमन—(सं०) एक प्रकार का धान (बर०-१, पूर्णि०-१)। [आमन (देशी०), मिला०—आमान्न, आम्रान्न=आम के सदृश धान]

आमाघउद—(सं०) एक प्रकार का धान। इसकी बाल में तीन-तीन धान का एक-एक गुच्छा रहता है। पर्या०—आमाघौर (बर०-१, भाग०-१)। [आमा+घउद (=आम की तरह गुच्छावाला धान), आमा<आम्र, घउद<गुत्स अथवा गोध<√गुध् 'परिवेष्टने']

आमाघौर—(सं०)—(बर०-१, भाग०-१)। दे०—आमाघउद। [आमा+घौर<आमा+घउद <आम्रगुत्स, आम्रगोध (?)]

आयमा—(सं०) वह जमीन, जिसे सरकार दान कर देती है (सा०-१)। [आयमा (अ०)=वह भूमि जो इयाम या मुल्ला को बिना लगान या कम लगान पर दी जाय (हिं० श० सा०)]

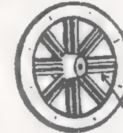
आर—(सं०)-(१) वह खेत या मैदान, जहाँ गायें चराई जाती हैं (द० भाग०)। दे०—चराई। पर्या०—चरागाह (पट०-४)। (२) खेतों के बीच की सीमा, जो सामान्य भूमि से ऊँची उठी रहती है, मेड़। पर्या०-आर (चंपा०-१), आरि, आरी, डँड़ेड़ (गं० उ०), अहरी, अलंग, परांठ (पट०, गया, द०-प०), परँगा, गँडारी, आइल, आल (गया, द० मुं०), डाँड़ (द०-प० शाहा०)। (३) नाली के किनारे को घेरने वाली उठी हुई जमीन (मुं०)। दे०—मेंड़। (४) पहली जोती हुई रेखा को काटकर की गई जुताई (चंपा०, द० भाग०)। दे०—आरा। [आर, आरोह, आल, अलि=(पुल), मिला०—√अड्ड अभियोगे, √अड्ड-उद्यमने]

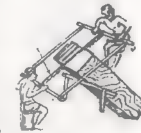
आर—(सं०) मवेशियों को हांकनेवाली छड़ी के अंत का नुकीला और कांटेदार भाग (द० भाग०)

दे०—अरई। पर्या०—अरउआ (पट०-४, भाग०-१)। [अर, आर, अराग्र]

आरहा—(सं०) सत्तू, अनाज आदि की बीस पैले की नाप (मुं०-१, भाग०-१)। [आढक (संस्कृ०), आढ़ (हिं०)]

आरा—(सं०)—(१) पहले जोती हुई रेखा को काटकर की गई दूसरी जुताई। पर्या०—आर (चंपा०, द० भाग०), समार (उ०-पू० मुं०), सम्हार (भाग०)। (२) सींचने के निमित्त बनी नाली का गहरा आंतरिक भाग (उ०-पू०)। पर्या०—पैन, पैनि। दौंगर (द० मुं०, पट०, गया), नारी, करहा (पट०, गया), भीता (पू० मुं०), दौंग (पट०, द०-पू०) (३) गाड़ी के पहिये की पुट्ठी के बीच में जड़ी हुई लकड़ी की मोटी और चौड़ी पटरी। (४) लोहे का बना, रेतकर लकड़ी चीरने का दांतीदार हथियार (बिहा०, आज०)। (५) टेकुआ या सूआ, जिससे चमड़ा सीया जाता है। [अर, आर, आरा, आल, आलि, आलवाल]


आरा—३


आरा—४

आरि—(सं०) खेतों की सीमा, जो सामान्य भूमि से ऊँची उठी रहती है, मेड़। (बिहा०, आज०)। दे०—आर। लोको—"आरि जाई त कपार लाठी, बीच बंगा चरवाही।" यदि तुम आरि (मेड़) पर जाते हो तो अपने सिर की रक्षा के लिए लाठी रखो, (और तब) तुम बंगा (कपास) के खेत के बीच अपने पशु चराओ। [अर, आर, आल, आलि, आलवाल]

आरिछौंटल—(मुहा०) मेंड़ काटना या छांटना (मुं० भाग-०१)। दे०—गोहट। [आरि+छौंटल (देशी)]

आरी—(सं)—(१) खेतों की सीमा, जो सामान्य भूमि से कुछ ऊंची उठी रहती है, मेंड़। दे०—आर। पर्या०—आरी (चंपा०-१, भाग०-१) [आर, आलि, आलवाल] (२) लकड़ी चीरने का एक औजार, छोटा आरा। (चंपा०, पट०-४, भाग०-१, आज०)। [आर+ई<आर]

आरीचास—(सं०) खेत के चारों ओर लम्बे-गोल आकार की जुताई (गया, पट०-४) दे०—चौकेठा। [आरी+चास, आर+चास (देशी)]

आरू—(सं) एक प्रकार का प्रसिद्ध गोल कन्द, जिसकी तरकारी बनाई जाती है (पू० मुं०)। दे०—आलू। [आडू, आलू]

आल—(सं०) सामान्य भूमि से ऊँची उठी हुई खेतों की सीमा, मेड़। (गया, द० मुं०)। दे—आर। [आल, आर, आलवाल, आलि]

आलू—(सं०) एक प्रकार का गोल कंद, जिसकी तरकारी बनाई जाती है (बिहा० आज०)। पर्या०—आरू (पू० मुं०), अलुआ, अलुई (गं० उ०, भाग०-१)। [आडू, आलू]

आलो—(सं०) पूरी फसल के पकने के पहले ही खाने के लिए किसान द्वारा काटा गया अनाज (गया)। [देशी]

आस—(सं०) खाद (बर०-१, पूर्णि०-१)। [आस (संस्कृ०)=राख, धूलि]

आसन—(सं०) एक प्रकार का वृक्ष (बर०-१ पूर्णि०-१)। [असन]

आसाचास—(सं०) जमींदार की ओर से किसान को चौथाई मालगुजारी या मालगुजारी के बिना परती जमीन देने की प्रणाली (चंपा०, प० मुं०)। दे०—खिलही [आसा+चास (देशी)]

आसिन—(सं०) आश्विन, भारतीय वर्ष का सातवां और शरद् ऋतु का पहला मास (सितम्बर के अंत और अक्टूबर के आदि के प्रायः १५-१५ दिन)। आश्विन की पूर्णिमा को प्रायः अश्विनी नक्षत्र हुआ करता है, अतः इस मास का नाम आश्विन पड़ा। ज्योतिष-गणना के अनुसार कभी आश्विन से ही वर्ष का आरंभ किया जाता था, तब यह पहला मास था। [आश्विन<आश्विनी<अश्व+इन् (प्र०)]

आहर—(सं०)—(१) बांध से घिरी हुई धान की उपजवाली, जलप्रवाह से युक्त, ऊँची समतल भूमि (गं० उ०, उ० प०, भाग०-१)। दे-डड़ेड़ी। (२) दो चढ़ावों या जलाशयों के बीच में उठाया गया किनारा या मेड़ (द० मुं०, भाग०-१)। दे०—खांवां [आहर, आधार]।

आही—(सं०) चौर (चवर) के किनारे की सोते-जैसी गहरी जमीन। [*देशी*]

आहुल—(सं०) मूठा या पूला से बड़ी फसल की राशि (पू० मैं०, भाग०-१)। दे०—अँवांसा। [*देशी*]

इ

इँकड़ी—(सं०) अनाज में पाया जानेवाला छोटा-छोटा कंकड़। दे०—अँकड़ी। [*मिला—अंकुर*]

इँकरी—(सं०) दे०—इँकड़ी।

इंगुर—(सं०) कूटकर छिलका-रहित किया हुआ जौ। पर्या०—इंगुरी। [*देशी, मिला०—इंगुर* (=रंग), *हिंगुल* (संस्कृ०)]

इँगुरी—(सं०)—दे०—इंगुर। [*देशी*]।

इंच—(सं०) एक फुट का बारहवाँ हिस्सा (हरि०, री०)।

इँजर—(सं०) एक जंगली पेड़ (मुं०-१, भाग०-१) [*इञ्जल=जल-प्रधान भूमि में उगनेवाला एक पौधा—मो० वि० डि०*]

इँजोरिया—(सं०) शुक्ल पक्ष। महीने के कृष्णपक्ष के अतिरिक्त दूसरा पक्ष, जिसमें चंद्रमा की कला प्रतिदिन बढ़ती है और रात उजेली होती जाती है। (पर० १)दे०—इजोड़िया। [*इन्दुज्योतिष्, ज्योतिष्; ज्योतिर्*]

इँदरा—(सं०) ईंट, पत्थर से बनाया हुआ बड़ा कुआँ (पट०-४)। दे०—इनारा। [*इन्द्रवाट, अन्धु, इरंधर < इरं = जल+धर=धारण करनेवाला, कुआँ*]।

इँदारा—(सं०) ईंट-पत्थर से बनाया हुआ बड़ा कुआँ। दे०—इनारा। [*अन्धु, इन्द्रवाट, इरंधर*]।

इकड़ी—(सं०) (१) सरकंडे की तरह की एक घास, जो टट्टी आदि बाँधने के काम में आती है। (चंपा०-१) पर्या०—ईकर (पट०-४)। (२) अनाज में मिलनेवाला छोटा कंकड़। दे०—इँकड़ी। इक्कट, इत्कट=एक *प्रकार का सरकंडा* (मो० वि० डि०)।

इकरी—(सं०)-(१) एक प्रकार की घास। (२) पान की पंक्तियों का अवलंबन (ब०-पू०, सा०)। दे०—कोरो। [*इक्कट, इत्कट=एक प्रकार का सरकंडा*]—(मो० वि० डि०)]

इक्कर—(सं०) दे०—इकरी।

इजाफा—(सं०) लगान में की गई वृद्धि (सा०-१, पट०-४, भा०-१)। [*इज़ाफ़ा* (अ०)]

इजमाल लगान—(सं०) अनेक भूस्वामियों की सम्मिलित मालगुजारी (सा०-१)। [*इजमाल+लगान* (फा०)]

इजारा—(सं०) बंधक पर लिया गया ठीका। (पट०-४, भाग०-१)। पर्या०—जरपेशगी ठीका। [*इजारा* (फा०)]

इजोड़िया—(सं०) शुक्ल पक्ष (दर०-१-पूर्णि०,-१)। दे०—इँजोरिया। [*इजोड़िया<इन्दुज्योतिर्, <ज्योतिर्*]

इनर बेल—(सं०) एक लता-विशेष (चंपा०-१, दर०-१, पूर्णि०-१)। [*इन्द्रवल्ली*]।

इनाम—(सं०) (१) ऊँची श्रेणी के काश्तकारों की भूमिकर से मुक्ति (पट०)। दे०—माफी। [*इन+आम* (अ०) [(२) प्रसन्नता या सौहार्द के कारण मिलने पर अधिकृत कर-मुक्त भूमि। दे०—खरीदगी। [*इन+आम* (अ०)] (३) पुलिस-अधिकारियों, मैजिस्ट्रेटों के अर्दलियों या कांस्टेबुलों को या किसी दूसरे बड़े सरकारी अफसर के द्वारा भी ग्राम-प्रवेश करने, शिविर डालने या किसी विशेष अवसर पर माँगा गया या दिया गया पुरस्कार (प-मैं०, भाग०-१)। दे०—सलामी। [*इन+आम* (अ०)]

इनामत—(सं०) प्रसन्नता या सौहार्द के कारण मिलने पर अधिकृत कर मुक्त भूमि। दे०—इनाम, खरीदगी। [*इन+आमत* (अ०)]।

इनार—(सं०) ईंट-पत्थर से बनाया हुआ बड़ा कुआँ। (चंपा०-१, पट०-४, भाग०-१)। दे०—इनारा। [*मिला०—इन्द्रवाट, इरंधर* (=इरा + धर = जलधर), *अन्धु*, <* *इन्द्रागार* (—सु० कु० च०)—*नेपा०*]

इनारा—(सं०) ईंट-पत्थर से बनाया हुआ बड़ा कुआँ (बिहा०, आज०)। पर्या०—इंदारा, इनार (चंपा०), इंदरा (पट०-१, भाग०-१)। [*इन्द्रवाट, इरंधर* (इरा+धर=जलधर), *अन्धु*, <**इन्द्रागार* (—सु० कु० च०)—*नेपा०*]।

इंदकमल—(सं०) एक प्रकार का फूल (दर०-१)। [*इन्दुकमल*]

इमली—(सं०) एक प्रकार की खट्टी फली, जो लंबी होती है। इसका पेड़ बड़ा होता है, पत्तियाँ छोटी-छोटी होती हैं, किंतु लकड़ी बड़ी मजबूत होती है। [*अम्लिका*, (संस्कृ०), *अंबिलिया* (प्रा०), *इमली* (हिं०), *इम्लि* (ने०); *इम्मली* (पं०), *आमिड़ी* (सि०), *आमली* (गु०), *आँबली* (म०) *अंबिल्ल* (सिंहा०)]

इमली के चाईं—(सं०) इमली की एक गिरह (पट०-१)। [*इमली के+चाईं*]

इमिरती—(सं०)(१)—एक प्रकार का क्षारयुक्त फल, जिसकी रसदार तरकारी बनती है। पर्या०—रमचरना (गया)। (२) एक प्रकार की मिठाई जो जलेबी के आकार की होती है। [*अमृत*]

इलाम—(सं०) दे०—इनाम। [*इनाम* (अ०)]

इलाही गज—(सं०) अकबर के समय की राष्ट्रीय नाप जो ३३¾ इंच की होती थी। [*इलाही+गज* (अ०)]

इस्तमरारी—(सं०) निश्चित कर (राजस्व) की शर्त्त पर भूमि जोतनेवाला असामी। टि०—मौरूसी और इस्तमरारी में भेद करना प्राय: कठिन होता है। इस भेद को न तो जमींदार ही समझता है और न काश्तकार ही। [अ०]

इस्तमरारी बंदोबस्त—(सं०) भूमि के इस्तमरारी बंदोबस्त करने की प्रक्रिया [*इस्तमरारी+बन्दोबस्त* (फा०)]

ई

ईकर—(सं०) पान की लता का आधार-स्तम्भ, जो प्रधान कोरों के बीच में छह-छह पड़ते हैं (शाहा०, पट०-४)। दे०—सरई। [इक्कट, इत्कट। दे०—इक्कर।]

ईंट—(सं०) साँचे में ढाला और आग में पकाया हुआ मिट्टी का चतुष्कोण, लंबा, मोटा, मकान बनाने का साधन-विशेष (मं० ब०)। दे०—ईंटा पर्या०—ईंटा (पट०-४, भाग०-१, चंपा०)। [इष्टका (संस्कृ०) >इट्ठक (प्रा०) > इट्ठआ (प्रा०) >इट्ठा >ईटा, ईंटा >ईंट]।

ईंटा—(सं०) दे०—ईंट। पर्या०—ईंट, ईंटा (मं० ब०), ऐंटा (पट०, गया, ब० मुं०)। लोको०—"मन में आन, बगल में ईंटा।" —ऊपर से मीठी बातें और सद्व्यवहार करना, पर भीतर-ही-भीतर आघात पहुँचाने की तैयारी। [इष्टका (संस्कृ०) >इट्ठका (प्रा०) >इट्ठआ (प्रा०) >इट्ठा >ईटा, ईंटा >ईंट]

ईकर—(सं०)—(पट०-४)। दे०—इकड़ी-१।

ईनार—(सं०)—(चंपा०-१)। दे०—इनारा।

ईस—(सं०)—(१) हल में लगी लम्बी लकड़ी, जिसमें जुआ या पालो जुड़ा रहता है। पर्या०—हरीस (पट०-४, ब० मुं०-१, भाग०-१)। (२) एक जंगली लकड़ी। [ईषा (संस्कृ०), ईसा (प्रा०)]



ईस

उ

उकटनी—(सं०) बीज बोने के पहले खेत के पुराने पौधों की जड़ या घास आदि को उखाड़ कर बाहर निकाल फेंकने की प्रक्रिया। (चंपा०, पट०-४)। पर्या०—तामना (पट०-४)। [*उकटन+ई< *उत्कर्षण*]

उकटल—(क्रि०) कटे हुए अनाज के पौधों को दौनी के समय उलट-पलट करना (पट०-४, मग०-५, मं०-२)। दे०—कउरल। (वि०) उलट-पलट की हुई वस्तु। [*उकट+ल* (प्र०) *उत्+कृत्, उत्+कृष्*]।

उकठल—(क्रि०) पेड़-पौधों का सूखना (शाहा०-१)। (वि०) सूखा हुआ पेड़-पौधा। [*उकठ+ल* (प्र०) < **उत्काष्ठ, अवकृष्ट*]।

उकठा—(सं०)—(१) अधिक वर्षा के कारण मरा हुआ चना या कोई दूसरी फसल (ब०-प० शाहा०)। दे०—मराइल। (२) गेहूँ में लगा पालो का रोग, जो अनाज को सुखा देता है (ब०)। पर्या०—उकढ़ा, उखरा (भाग०-१), उकसा। [*अवकृष्ट *>उकट्ठ, उकढ्ढ* (प्रा०)> *उकठ, उकढ >उकठा, उकढा*]

उकड़ल—(क्रि०)—(१) किसी पेड़ या पौधा का एक प्रकार के कीड़ा लगने के कारण सूख जाना

(चंपा०-१) । (वि०) (२) कीड़ा लगने से सूखा हुआ पेड़ । [उकढ़+ल (क्रि० प्र०) < *अवकृष्ट]

उकढ़ा--(सं०) दे०—उकठा । [अवकृष्ट]

उकन्हल—(क्रि०) बैल के कंधे से जुआ का अलग हो जाना (चंपा०-१, भाग०-१) । [उकन्ह+ल (क्रि० प्र०)< अवकन्धर, अवस्कंध (?)]

उकसा—(सं०) दे०—उकठा । [उत्कर्ष, अवकर्ष]

उकाँव—(सं०) दौनी करने के बाद ओसाने के लिए रखी हुई भूसा-मिश्रित अनाज की राशि (शाहा०) । दे०—सिल्ली । पर्या०—सिल्ली (पट०-४), ढेरी (भाग०-१) । [मिला० उत्कार, उत्कार्य, उत्+√कृ, अवक्रम<अव+√क्रम]

उकाम, उकुम—(सं०) दौनी करने के बाद ओसाने के लिए रखी हुई भूसा-मिश्रित अनाज की राशि (द०-पू० मं०) । दे०—सिल्ली । [मिला० उत्कार, उत्कार्य < उत् + √कृ, अवक्रम< अव + √क्रम्]

उकास—(सं०) बादल का हट जाना (दर०-१, पूर्णि०-१)। [अवकास, उत्कास=खुला हुआ]

उकुम, उकाम--(सं०)-(द०-पू० मं०)। दे०—उकाम ।

उका—(सं०) लुक्का, लुकाठी, मशाल (मुं -१, भाग०-१) । [उल्का]

उकापाँती—(सं०) सन के डंठलों की बनी लुकाठी, जिसमें आग लगाकर दिवाली की रात में 'दरिद्रा' को घर से बाहर निकालने का स्वांग किया जाता है । उक्कापाँती जलाकर लोग यह पद्य पढ़ते हैं—"उक्कापाँति धू-धू, लछमी घर, दरिद्रा बाहर ।" [उल्का+पंक्ति]

उखड़ल—(क्रि०) (१) किसी गड़ी हुई चीज का उखड़ना । (२) किसी खेत की ऐसी अवस्था हो जाना कि उसमें हल न चल सके । (वि०) (३) कोई गड़ी हुई चीज, जो उखड़ गई हो । (४) ऐसा खेत, जो पानी या नमी के अभाव के कारण कड़ा हो गया हो और पुनः सींचे विना जोता-बोया न जा सके । पर्या०—उलहल (पट०-४, मग०-५) । [उत्खात]

उखड़हाल—(सं०) खेत के छोटे टुकड़े, जिनमें हल न लगा हो (द० भाग०, भाग०-१) दे०—पैंस । [उत्खात+हल्य]

उखड़ा—(सं०) अनाज को मारनेवाली एक छोटी घास, जो लता-जैसी होती है (प० मं०, भाग०-१) । पर्या०—दुधिया (प० मं०, गया, भाग०-१) हड्डा । [देशी]

उखनाएल—(क्रि०) ढोना (दर०-१, पूर्णि०-१) [उखन+आएल प्र०)<उखन< *उत्कर्षण (?)]

उखबँधना—(सं०) ऊख के बोझ को बाँधनेवाली रस्सी । (भाग०-१) । दे०—जोती । [उख+बँधना< इक्षुबन्धन]

उखम—(सं०) गर्मी–(दर०-१, पूर्णि०-१, चंपा०, भाग०-१) । [ऊष्मा]

उखर जाएल—(मुहा०) अधिक भार के कारण बैल का लँगड़ाना । (पट०-४) । दे०—भर जायल । [उखर+जाएल]

उखरा—(सं०) दे०—उकढ़ा, उकठा (भाग०-१)। [अवकृष्ट (संस्कृ०), उकट्ठ (प्रा०) >उकठ, उकढ़, उकठा, उकढ़ा, उखड़ा, उखरा]

उखरिमुसरा–(सं०) एक प्रकार का साग (दर०-१)। [उखरि+मुसरा (देशी), मिला०—उलूखल-मूसल]

उखरी–(सं०) लकड़ी का वह गहरा पात्र, जिसमें ढेकी या मूसल से धान कूटते हैं (द० मुं०, भाग०-१)। दे०—ओखरी। [उखर+ई< उलूखल मिला० 'उरुकरं' हवै उलूखल मित्याचक्षते—'शत०']



उखरी

उखरौरा—(वि०) ओखल से गिरा हुआ । (सं०) कूटते समय ओखल से छिटककर गिरा हुआ अनाज (मुं०-१, भाग०-१)। [उखर+औरा< चाउर]

उखली—(सं०)-(१) दे०—उखरी। (२) लकड़ी का एक गहरा पात्र, जिसमें ईंट कूटकर सुर्खी बनाई जाती है । (द० मुं०, पट०-४)। दे०—ओखरी । [उलूखल]

उखाँव—(सं०) ऊख के लिए तैयार किया हुआ खेत (उ० प०वि०)। पर्या०—उखाव । केतारी खेत (भाग०-१)। [उख+आँव इक्षु+वप्र, व आँव< ढाँव< ठाँव<स्थान, स्थाम; मिला०-एक्षवीन=वह खेत, जिसमें ईख पैदा होती है]

उखाँव, उखारी—(सं०) ऊख रोपने का खेत (प०) । पर्या०—उख के खेत, केतारी के खेत (अन्यत्र, भाग०-१) ।

टि०—ऊख की खेती के लिए बड़ी मेहनत और सावधानी की आवश्यकता होती है, इसलिए कहा जाता है—"तीन पटावन तेरह कोड़न" ऊख के पौधों को तीन बार पटाना और तेरह बार कोड़ना चाहिए । [उख+आँव< ठाँव< स्थान; मिला०-एक्षवीन]

उखाड़ल—(क्रि०)·(१) किसी गड़ी हुई चीज को जमीन से निकालना (चंपा०-१) । (वि०)-(२) कोई गड़ी हुई चीज, जो उखाड़ ली गई हो । [उखाड़+ल< उत्खात, मिला०—उखाड़ना (हि० पं०, ल०), उखड़ना (हि० पं०, ल०) उखेल्नु (ने०), उखाड़नु (सि०), उखाड़ वुँ (गु०), उखाड़ने (मरा०), संभ०< *उत्क्खड, उक्खड (म० भा०), उक्खलिया (प्रा०) संभ०-< *उत्+स्कृत (संस्कृ०)-नेपा०]

उखारी, उखाँव—(सं०)-(१)—(प०) दे०—उखाँव । (२) वह खेत, जिसमें ऊख हो (शाहा०) । [उख + आरी < इक्षु + केदार]

उखाव—(सं०) ऊख के लिए तैयार किया हुआ खेत । (पट०-४, भाग०) । दे०—उखाँव । [उख+आव< इक्षु+वप्र वा आव< ढाँव< ठाँव< स्थान, स्थाम]

उखेड़ा—(सं०)-(१) ऊख का छोटा पौधा, जो उखाड़कर बाहर कर दिया जाता है (पट०-४) । (२) ऊख का छोटा पौधा, जो पानी के विना सूखने लगता है (मग०-५, मुं०-१) । लोको०—"धान पान उखेरा, तीनों पानी के चेरा"—घाघ ।–धान, पान और ऊख–इन तीनों को पानी बहुत चाहिए। [उख+एरा (अल्पा० प्र०), उख< इक्षु]

उखेपो—(सं०) विना चरवाहे का ढोर (मुं०-१)। [उत्क्षेप्य]

उखेरा—(सं०)-(पट०-४) । दे०—उखेड़ा ।

उखेल—(सं०) वर्षा समाप्त होना (मुं० भाग०-१)। मुहा०—उखेल करल—पानी का पड़ना बंद हो जाना । [उखे+ल (प्र०) < अवक्षर (?)]

उखेता—(सं०) खेत से निचली सतह में पानी के रहने पर उसे ऊपर प्रवाहित करके सिंचाई करने की प्रक्रिया (द०-पू०, भाग०-१) । दे०—उदह के पानी ले जाएल । [उत्क्षेपित]

उखैनी—(सं०) खलिहान में फसल की दौनी के समय पुआल तथा डंठल आदि हटाने के काम के लिए बनी हुई एक लग्गी, जिसके अंतिम छोर पर लोहे का काँटा देकर या बाँस की पतली शाखा (कनछी) छोड़कर एक टेढ़ी-पतली नोक बनाई जाती है । (द० भाग०) । दे०—अखैना । [उत्खनन, उत्क्षेपणी, अक्षारणी]

उखौता—(सं०) वह धुरी, जिसपर ढेंकी काम करती है (गया) । दे०—अखौता । [अक्षवत्]

उगरवाह—(सं०) रखवाला (दर०-१, पूर्णि०-१) । दे०-अगोरनिहार, अगोरिया । [उगर+वाह]

उगरवाहि—(सं०) रखवाली (दर०-१, पूर्णि०-१)। [उगर+वाह+इ]

उगल—(क्रि०) (१) उगना, पौधों का जमना । (२) सूर्य का उदय होना । (वि०) उगा हुआ। पर्या०—जनमल । [उग+ल (प्र०) <उग< *उद्ग, उद्गम (संस्कृ०) उगना (हि०)]

उगावल--(क्रि०) उगल क्रि० का प्रे० । उगाना, पौधों का उगाना । [उग+आवल (प्र०)< *उद्ग, उद्गम (संस्कृ०)]

उगाहल—(क्रि०) चंदा आदि की निश्चित रकम को माँगना या इकट्ठा करना, उगाहना (चंपा०-१, पट०-४) । (वि०) उगाही हुई वस्तु । [उगाह+ल< * *अवग्राह, *उद्+ग्राह । < *उद्घातयति; उद्घाटनम्—उग्घाअ (प्रा०), उघाउनु (ने०) उघाई (कुमा०), उगाहना (हि०) उगाहणा (पं०) < *उद्ग्राहयति, उग्गाहइ (प्रा०), < * उद्गृत, उद्गुरते (संस्कृ०), < * उद्गारयति, < उद्घाट, उद्घाटितः, < *उद्घारयति—नेपा०]

उघेन—(सं०) किसी बर्तन में बाँधकर कुआँ से पानी खींचनेवाली रस्सी (उ०-पू० मं०)। दे०—उबहन । पर्या०—उभैन (भाग०-१) । [उद्वहन]

उचका—(सं०) टूटी दीवार, छप्पर, शाखा आदि के सहारे के लिए लगाया गया खंभा (द०-पू० मं०)

भाग०-१)। दे०—अस्थम। [उच्चक, ओच्चक< √'उच् समवाये']।

उचकुन—(सं०)-(१) ओखलसे अनाज निकालने के समय ढेकुली को ऊपर की ओर टिकाये रखने के लिए लकड़ी का एक टुकड़ा (द० भाग०, पट०-४)। (२) किसी प्रकार की वस्तु के सहारे के लिए प्रयुक्त लकड़ी आदि का टुकड़ा (भाग०-१)। दे०—टेकनी। [उच+कुन< उच्च+करण]

उचली (सं०) ऊँची-नीची जमीन (द० भाग०, भाग०-१)। दे०—ऊभर-खाभर।] उच+ली (प्र०)< उच्चल]

उचवड़—(सं०) छप्पर आदि को खड़ा रखने के लिए लकड़ी का मोटा आधार स्तंभ (उ०-पू० मै०)। दे०—खंभा। [उच+वड़]

उचास—(सं०) ऊँची जमीन (हजा०, पट०-४ चंपा०, भाज०)। दे०—उपरवार। [उच्चैस्]

उछटनी—(सं०)-(१) हाथ से की गई घास आदि की सफाई (चंपा०, मै०)। दे०—चिखुरनी। (२) जोते या कोड़े हुए खेत से घास निकालने की प्रक्रिया (चंपा०-१)। (३) आलू या शकरकंद के खेत में फसल कोड़ लेने के बाद खेत को कोड़कर, उससे छूटी हुई फसल को निकालने की प्रक्रिया (चंपा०-१)। [देशी]

उछाड़ी—(सं०) धनरोपनी के अन्त में किया जानेवाला सहभोज (पट०)। दे०—औंजली। पर्या०—बनउखाड़ (पट०-४)। [देशी]

उछाहल—(क्रि०)—(१) बोने के दो-तीन दिन पूर्व खेत को जोतकर और हेंगा देकर छोड़ देना (चंपा०-१)। (२) किसी घर को फिर से छाने के लिए उखाड़ना (चंपा०-१)। [उछाह + ल (क्रि०-प्र०) < उत्साद < उत्+ √सद्]।

उछिटल—(क्रि०) जोते-कोड़े हुए खेत से घास निकालना (चंपा०-१)-पर्या०—तामल (पट०-४) [उछिट + ल (प्र०) <*उत्+ चिट्ट, मिला०—*चिट्ट—नेपा०]

उजड़—(सं०) ध्वस्त या बर्बाद गाँव। दे०—दमका पर्या०—उजड़ल (पट०-४, भाग०-१)। [उजड़ना (हि०), मिला०—उद्+ √ज़ (=वयोहानौ) > उज्जर, उज्जार]।

उजड़ल—(वि०)-(पट०-४, भाग०-१)। दे०—उजड़। (क्रि०) उजड़ना, फसल आदि का नष्ट होना। [उजड़+ल (प्र०) < उज्जर< उद्+ √ज़ (=वयोहानौ)। संभ०—< *उज्जाटयति मिला०—जटा (संस्कृ०), उज्जाटेई (प्रा०) — नेपा०]

उजड़ा—(सं०) (१) ध्वस्त गाँव। दे०-दमका। (२) वह खेत, जिससे फसल नष्ट हो गई है, (३) छुट्टा पशु। [उजड़ना (हि०), मिला०—उत्+√ज़ (=वयोहानौ) >उज्जर, उज्जार]

उजबुज—(सं०) पानी में डूबते समय की वह अवस्था, जब डूबनेवाला पानी के ऊपर और भीतर आता-जाता है। (चंपा०-१, पट०-४) [उद्विज]

उजबुजाइल—(क्रि०) पानी में डूबने या किसी चीज से मुँह ढँक जाने से उत्पन्न श्वासरोध के कारण व्याकुल हो जाना (चंपा०-१)। (वि०) उद्विग्न। पर्या०—उजबुजाएल (पट०-४)। [उजबुज+आइल (प्र०) <उद्विज< उद्+ √विज]

उजबुजाएल—(क्रि०, वि०)-(पट०-४)। दे०—उजबुजाइल।

उजरका—(सं०) एक प्रकार का उजला शकरकंद (द० मुं०, भाग०-१)। दे० - देसी। (वि०) कोई वस्तु, जो उजली हो। [उज्ज्वलक]।

उजरकी—(सं०) तीन पखवारे में होनेवाली उजले रंग की मकई (सा०-१)। (वि०) उजली वस्तु। [उजरक+ई< उज्ज्वलक]

उजरकी बइगन—(सं०) उजले रंग का बबैंन (पट०-१)। [उजरकी+बइगन<उज्ज्वलक +वृन्ताक]

उजर रीत—(सं०) वर्षा ऋतु की समाप्ति के बाद आनेवाली ऋतु (चंपा०१) [उज्ज्वल+ ऋतु]।

उजरल—(सं०)—(१) उजड़ा हुआ गाँव, छुट्टा पशु, फसल विहीन खेत। दे०—दमका। (क्रि०) (२) उजड़ना, फसल आदि का नष्ट होना। [उजर+ल (वि० प्र०) उद्+√ज़ "वयोहानौ"। < *उज्जट< उद्+जटा (संस्कृ०)-नेपा०]

उजरा—(सं०)-(१) वह पशु, जो किसी देखभाल के विना चरने के लिए छोड़ दिया जाता है (द० भाग०, भाग०-१)। दे०—अनेरिया। (२) विना चरवाहे का ढोर (द० मुं०)। (३) दूसरे की फसल चरनेवाला पशु (मुं०-१)। (वि०) [उजला+जरा< उद्रज्जु]

उजराधान—(सं०) एक धान विशेष, जो उजला और लंबा होता है। (पट०-१) [उजरा+धान < उज्ज्वलक+धान्य]

उजागर-(सं०) एक प्रकार का धान, जो फाल्गुन-चैत में बोया जाता है और अगहन में काटा जाता है, (प्राय० गं० उ०)। पर्या०—जागर (सा०, उ०-पू० मै०)। [उ+जागर< उज्जागर= अच्छा जमने वाला, ऊपर उठने वाला]

उजाड़—(सं०) (१) उजड़ा हुआ गाँव। (२) उजड़ा हुआ स्थान। दे०—दमका। (३) छुट्टा पशु, फसल-विहीन खेत। [उजड़ना (हि०) उद्+√ज़ (=वयोहानौ) >उज्जर, उज्जार]

उजारल—(क्रि०) किसी पौधे को उखाड़ना, उजरल क्रिया की प्रे० क्रि०। (चंपा०-१, भाग-१)। (वि०)—उजाड़ा हुआ पौधा। [उजार+ ल (क्रि० प्र०) उद्+√ज़ (=वयोहानौ)> उज्जर, उज्जार। < *उज्जाटयति, मिला०—जटा (संस्कृ०)=मूल, उज्जाडेइ (प्रा०), उजाड़यो (कुमा०), उजारिब (असo), उजारिबा (ओ०), उजाड़ना (हि०, पं०), उजाड़ण (ल०), उजानु (ने०), उजाडनु (सिं०), उजाड़वुँ (गु०)]

उजाह—(सं०) आषाढ़ में प्रथम-प्रथम काफी वर्षा होने पर मछलियों का सामूहिक रूप से बाहर निकलना (चंपा०-१)। [उ+जाह< *उदाज <उद्+√अज्=बाहर निकलना]

उझा—(सं०) वह पशु, जो विना किसी देखभाल के चरने के लिए छोड़ दिया जाता है (द० मुं०)। दे०—अनेरिया। [उज्झित]

उझकुन—(सं०) किसी बर्तन के नीचे, उसकी सतह को बराबर करने के लिए प्रयुक्त लकड़ी आदि का टुकड़ा (चंपा०-१)। पर्या०—उचकुन (भाग०-१)। [उझ+कुन< उच्चकरण]

उझलन—(सं०)—(१) प्रायः माघ महीने में की जानेवाली ऊख की पहली कोड़नी (कोड़ाई) (गया, प०)। दे० —अँधेरी कोरन। (२) छिछली कोड़ाई करके अनाज के खेतों से घास आदि की की जानेवाली सफाई (गया, शाहा०)। [देशी]

उझिलल—(क्रि०) किसी बर्तन से अनाज आदि का बाहर निकालना। (वि०) वह अन्न, जो किसी बर्तन से नीचे रख दिया गया हो (चंपा०-१, पट०-४, भाग०-१)। [उझिल+ल (प्र०), उज्झकरण (हिं० श० सा०), < *उद्गिर <उद्+ √गृ (निगरणे), उद्धरण< उद्+हृ]

उटकनी—(सं०) (१) चिउरा कूटने समय ऊखल में उसे उलट-पलट करने की लकड़ी (पट०-४)। पर्या०—खोइला (पट०-४, चंपा०-१), ठेकरा (भाग०-१)। (२) बोरसी की आग उलट-पलट करने की लकड़ी (द० मुं०, पट०-५)। [उटकन+ई। मिला०—√उठ "उपघाते=ठेकर देना, उटकना]


उटकनी

उटकल—(क्रि०) दे०—उकटल। (वि०) उटकी हुई वस्तु।

उटरा—(सं०) (१) मटर, चना, जौ, गेहूँ या कोई अन्य दो या तीन मिले हुए अनाज, जो एक ही साथ बोये गये हों (पट०)। पर्या०—उटेरा (पट०-४), उटेर (शाहा०)। (२) बैलगाड़ी के आगे सगुन के नीचे लगी हुई एक मजबूत खूँटी, जिससे वह जमीन पर न गिरने पाती है। [देशी]

उटेर—(सं०)-(१) दे० उटरा। (२) जौ-गेहूँ के साथ एक-दो करके बोया जानेवाला मटर या चना (शाहा०)। मुहा०—उटेर बोअल—उटेर का बोना। उटेर उखाड़ल—उटेर का उखाड़ना। उटेर कबाड़ल—उटेर का उखाड़ना।

उटेरा—(सं०) दे० —उटरा (पट०-४, भाग०-१)।

उट्ठा—(सं०) बिना अगाऊ मजदूरी लिए

कामकरने वाला हलवाहा (पू० मं०, द० मुं०, भाग०-१) । [उत्थ<उत्+√स्था]

उठती—(सं०) वह जमीन, जो कभी परती नहीं रहती (चंपा०) । दे०—अवाद । मिला०—परती वा पड़ती । [उठ्ती, उठना (हिं०) <उत्+√स्था]

उठल—(क्रि०)-(१) उठना, खड़ा होना । (२) मादा पशुओं का मैथुनेच्छुक होना । पर्या०—बरदियाएल, मैंसाएल । (वि०)—उठी हुई, मैथुनेच्छुक, [उठ+ल (प्र०)<उठ<*उत्थ <उत्+√ स्था, उठ्नु (ने०)<* उत्थति, मिला०—उत्तिष्ठति (संस्कृ०), उत्थाति (पा०), उत्थेदि (प्रा०)]

उठाएल—(क्रि०)—(१) पोस्ते की फली में से अफीम का उठाना या संग्रह करना । (२) किसी वस्तु का उठाना । पर्या०—काछल (उ०-प० उ०-प० मं०), पोछल (उ०-प० मं०) । [उठा+ एल (क्रि० प्र०, प्रे०), उठना (हिं०)<* उत्था<उत्+√स्था । उठाउनु (ने०)<* उत्थाप्य, मिला०—उत्थापयति (संस्कृ०), उत्थापेति (पा०), उत्थात्रेदि (प्रा०), उठुनी (कुमा०), उठान (बं०), उठाइबा (भ्रो०), उठाना (हिं०), उठाउणा (पं०), उठाव्नु (गु०), उठ्ठाविणे (मरा०)—नेपा०]

उठान हारल—(सं०) किसी मवेशी की वह अवस्था, जब कमजोर होने से उससे उठा-बैठा नहीं जाता (चंपा०-१) । पर्या०—उठौना हारल (भाग०-१) । [उठान + हारल]

उठानो—(सं०) अनुपयोगी, दुर्बल गाय या भैंस (द० भाग०, भाग०-१) । दे०—टुटाह । [उत्थापनीय=स्वयं उठने में असमर्थ, उठाने योग्य]

उठारा—(सं०)-(१) धान के रोपने का अंत होना (मुं०-१) । (२) किसी नये (प्रारंभ) हुए काम का अंत होना (मुं०-१) । [उत्तार, उत्स्तार]

उठौना—(सं०)—प्रतिदिन नियत दर पर नियमित रूप से दूध या किसी वस्तु को देने का काम या भाव (मुं०-१, भाग०-१) । [देशी]

उठौना हारल—(सं० -(भाग०-१) दे०—उठान हारल । [उठौना+हारल]

उठौनिहार-(वि०)-(१) पोस्ते की फली पर इकट्ठी हुई अफीम को उठानेवाला पुरुष । (२) किसी वस्तु को उठानेवाला पुरुष । पर्या०—उठौनिहारिन (स्त्री०) । [उठौनि+हार (प्र०)]

उठौनिहारिन—(वि०) "उठौनिहार" का स्त्री० दे०—उठौनिहार । [उठौनि+हारिन]

उड़ल—(क्रि०) उड़ना । (वि०)-उड़ी हुई वस्तु ।

उड़ावल—(क्रि०) उड़ल क्रिया का प्रे० । उड़ाना, चिड़ियों का खेतों से भगाना । [उड़ाव+ल, उड़ + आवल (प्र०) <*उड्डुय<उड्डाययति (संस्कृ०), उड्डावेइ (प्रा०), उड़ाना (हिं०), उड़ाउनु (ने०), उड़ान (बं०), उड़ौना (पं०)]

उढ़ाहल—(क्रि०)-(१) किसी नये बर्तन को काम में लाना (चंपा-१, सा०-१, पट०-४, भाग०-१)। (२) कुएँ की सफाई के लिए उसके कीचड़, पानी आदि को निकाल डालना (पट०-४, शाहा०-१, सर्वत्र) । [उद्वाहन (?)]

उढ़कल—(क्रि०) किसी वस्तु का नीचे की ओर लुढ़कना । (वि० लुढ़की हुई वस्तु । [उढ़क+ल (प्र०)<उढ़क, उक्ढ<*अवकर्ष<अव+ √ कृष्]

उढ़कावल—(क्रि०) उढ़कल क्रिया की प्रे० क्रि० । किसी वस्तु को ऊपर की ओर से नीचे की ओर लुढ़काना । उकसाना (वि०) लुढ़काई हुई वस्तु । [उढ़क+आवल (प्र०) <उत्कर्ष <उत्+√कृष् , अवकर्ष<अव+√कृष्]

उढ़काहु—(सं०) वह ढालू स्थान, जहाँ से किसी चीज के गिर जाने का भय रहता है (चंपा०-१, भाग०-१) । [उढ़क+आहु<अव+कृष्]

उतरल—(क्रि०) उतरना, ऊपर से नीचे आना । [उतर+ल (प्र०)<*अवतर<अव+√तृ]

उतरा—(सं०) उत्तर फाल्गुनी, उत्तराषाढ़ और उत्तर भाद्रपद नक्षत्र; किंतु विशेषत: उतरा से उत्तर फाल्गुनी नक्षत्र ही लिया जाता है । यह निम्नांकित कहावत से प्रमाणित होता है—

उतरा में जनि रोपहुँ भैया ।
तीन धान होए तेरहे पैया ।।

—हे भाई, उत्तर फाल्गुनी नक्षत्र में धान मत रोपो, यदि रोपोगे तो तीन धान मिलेंगे और तेरह खखड़ी मिलेगी ।

उतराखाढ़—(सं०) इक्कीसवाँ नक्षत्र, उत्तराषाढ़, यह पूस महीने में पड़ता है । [उत्तराषाढ]

उतरा फगुनी—(स०) बारहवाँ नक्षत्र, उत्तर फाल्गुनी, यह प्राय: भादो के शुक्लपक्ष में पड़ता है । [उतरा+फगुनी<*उत्तर+फाल्गुनी]

उतान-(वि०) उत्तान, उलटना । **उतान होअल** (मुहा०)-उलट जाना, चित हो जाना । [उत्तान]

उतारल—(क्रि०) उतरल क्रि० का प्रे० । उतारना, गाड़ी का जूआ या हल का पालो बैल के कंधे से उतारना । [उतार+ल प्र०)<*उत्तार< उत्+√ तृ, (संस्कृ०) उतारना (हिं०), उतानु (ने०), उताड़ना (पं०), उतायुँ (गु०), उतारणें (मरा०)]

उतेर—(सं०)—(१) मटर का हरा और कोमल छीमीदार पौधा, जो खेत से उखाड़ लिया जाता है (सा० १) । (२) मवेशियों के खाने के लिए रखी हुई या निकाली हुई फसल या घास (शाहा०-१) । (३) कमजोर पौधा, जो खेत से निकाल दिया जाता है । [उ+तेर<*अवतीर्य, अवतर]

त्तर भाद्रपद—(सं०) छब्बीसवाँ नक्षत्र, उत्तर भाद्रपद, यह फाल्गुन कृष्ण में पड़ता है । [उत्तर+भाद्रपद]

थर—(वि०) छिछला (पट०-४, भाग०-१) दे०—उथल । [उ+थर<*उत्थल, उत्तल]

उथल—(वि०) कम गहरा, छिछला (चंपा०-१) । पर्या०—उथर (पट०-४, भाग०-१) । [उथल <*उत्थल, उत्तल]

उदंगर—(सं०) वह पशु, जो बिना किसी देखभाल के चरने के लिए छोड़ दिया जाता है (पट०) । दे०—अनेरिया । पर्या०—उदाम (भाग०-१) । [<*उदर्गल=बँधन से निकला हुआ]

उदंत—(सं०) वह मवेशी, जिसके दूध के दाँत अभी नहीं टूटे हों (पट०-४, चंपा०-१, आज०) । पर्या०—अदंत (पू०, भाग०-१) ।

"उदंत बरदे अदन्त बिआय,
आप जाय या खसमैं खाय ।"—घाघ ।

यदि मवेशी अदंत ही बरदाय (गाभिन हो) और बच्चा दे, तो वह या तो स्वयं मरे या स्वामी का नाश करे ।

[उ+दन्त<*अ+दन्त]

उदह के पानी ले जाएल—(मुहा०) खेत की सतह से नीचे पानी रहने पर उसे ऊपर प्रवाहित कर सिंचाई करना । उक्त प्रकार की सिंचाई की प्रक्रिया (पट०-४, सा०-१) पर्या०—उखैया (द०-पू०) । [उदह<*उद्वाह]

उदाम—(सं०) वह पशु, जो बिना किसी देखभाल के ही चरने के लिए छोड़ दिया जाता है (भाग०-१) । दे०—अनेरिया । [<*उद्दाम <उद्+दाम=बंधन-रहित]

उद्राछ—(सं०)-(१) एक प्रसिद्ध वृक्ष का बीज । (२) उस बीज की माला (पट०-४) । [रुद्राक्ष]

उधार—(सं०) वह रकम, जो चुका देने के वादे पर ली गई हो (पट०-४, चंपा०-१, भाग०-१) । [उद्+हार=उद्धार*>उधार]

उधेरल—(क्रि०) किसी कंद आदि को हाथ से खोदना (चंपा०-१) । (वि०)—हाथ से खोदी हुई वस्तु । [उधे+रल (क्रि० प्र०)<उद्+√हृ]

उनटा चिरचिरी—(सं०) एक प्रकार की घास, जो पशुओं के चारे के काम आती है (पू० मं०, गया, पट०-४, भाग०-१) । [उनटा<उलटा <*उल्लट । चिरचिरी (=अपामार्ग)]

उनवल—(क्रि०) घिर आना (खासकर घटा का—घिरना) (चंपा०) । [उनव+ल (क्रि० प्र०) <*उन्नम<उद्+√नम्=झुकना]

उनहल-(वि०) लकड़ी की वस्तुओं या कुदाल, हल-जैसी चीजों का किसी कारण टेढ़ा-मेढ़ा होना या उभर जाना । [<*उन्नह, उन्नद्ध]

उनवाहा—(सं०) खेत जोतने के समय किसी आदमी के एवज में किसी दूसरे आदमी का काम करना (सा०-१) । [<*अन्वावाह< अनु+आ+√वह्+अ (=घञ्)]

उनाह—(सं०)-(१) धान की खेती में धान बोने के पश्चात् घास-पात आदि की सफाई करने और बीज को नीचे दबाने के लिए पुन: की जानेवाली हलकी-सी जुताई (उ०-पू०, उ०-पू० मं०, भाग०-१) । पर्या०—गजर (उ०-पू०मं०), समाह (पट०), बिराह (गया), बिदाह (प०, पट०, गया), बिदहनी (चंपा०, द०-पू०) । उबाहना, उनाहौन, उनाहना (दर०-१, भाग०-१) । [उन+आह<उन+वाह<अनु (पीछे) +वाह] (२) किसी रोग से मुक्त होने के लिए भाफ लेना

(चंपा०-१)। (३) बीज छींट देने के दो-तीन दिनों के बाद खेत में हल जोतना (चंपा०-१)। [उत्स्नान, उद्वाह, मिला० उन्नाह]

उनाहना—(सं०)—(बर०-१)। दे०—उनाह।

उनाहौन—(सं०) बीज बोने के बाद भी मिट्टी गीली रहने पर उसे आड़े-बाड़े (सोमार) जोतकर और हेंगा देकर खेत को बराबर कर देना (बर०, पूर्णि०-१)। दे०—उनाह। [अनुवाहन]

उपचाबेंड़ी—(सं०) दूसरे द्वारा निश्चित की हुई रकम से अधिक देकर चीज प्राप्त करने की चेष्टा (चंपा०-१)। [उपचयविधि, उपचयवृद्धि]

उपछल—(क्रि०) हाथ या किसी चीज से पानी बाहर फेंकना (मुं-१, भाग०-१, चंपा, पट०-४), (वि०) उपछा हुआ (सं०); पानी उपछने की प्रक्रिया। पर्या०—उबछल, उबिछल। [उपछल < उप्पोछन (प्रा०) < *उत्प्रोक्षण]

उपजा—(सं०) फसल, पैदावार (बर०-१, पट०-४, भाग०-१)। [उत्पाद]

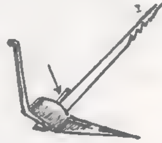
उपटल—(क्रि०) (१) पानी का उमड़ना या मेड़ या बांध से बाहर आ जाना (मुं-१, पट०-४, भाग०-१) (२ किसी हथियार की बेंट का ढीला होकर निकल जाना (चंपा०)। (३) बाढ़ या वर्षा के कारण पानी का घेरे से बाहर निकल कर बहने लगना (चंपा०-१, भाग०-१)। [उपट+ल (क्रि० प्र०) < *उत्पटन, उत्पतन]

उपटाँउ—(वि०) वह ठोकी हुई चीज, जो ढीली होकर निकल जाती है (चंपा०-१)। [उपट+आँउ < *उत्पतयालु]

उपटा—(सं०) नहर या पैन आदि का मुंह खोलकर जमीन की सतह से ऊँची सतह पर जल-प्रवाह के द्वारा पूर्णरूपेण की जानेवाली की खेत धारावाहिक सिंचाई (द० भाग०, पट०-४)। दे०—अपटा। [उपटा < उपट < *उत्पट, उत्पत]

उपटावल—(क्रि०) उपटल क्रि० का प्रे०। उपटाना। [उपट+आवल (प्र०) < *उत्पट, उत्पत]

उपरपाटो—(सं०) हल और हरीस के जोड़ में लगाया जानेवाला ऊपर का दूसरा पच्चड़ (द० भा०, भाग०-१ दे० चैली। पर्या०—पाटा (पट०-४) पाट० (प० चंपा०)। [उपर+पाटो < उपरि+पाट]



उपरवार—(सं०) ऊँची जमीन (पट०, उ०-प०, भाग०-१)। पर्या०—बहरभूम (द० मैं०), उपरार (पू० मैं०); डिहाँस (पट०), टाँड़ (गया, द० मुं०, चंपा०), डील (शाहा०), डीह (द० भाग०, भाग०-१), उचास (हजा०), ढीबर (हजा०), भिट्ठा (भाग०-१) उपराहुत, ऊपराहुत (चंपा०)। [उपर+वार (प्र० = वाला) < वल (संस्कृ० प्र०), < *उपरिवप्र]

उपराबेंड़ी—(सं०) प्रतिस्पर्द्धा (चंपा०-१)। दे०—उपचाबेंड़ी। [उपरा+बेंड़ी < *उपरिवृद्धि]

उपरार—(सं०)—(पू० मैं०)। दे०—उपरवार। [उपर+आर < उपरवार]

उपराहुत—(सं०) दे०—ऊपराहुत, उपरवार।

उपरौछल—(क्रि०) बाढ़ आदि के पानी का, किनारे को पार कर ऊपर से निकलना (शाहा०-१)। [उपरौछ+ल (प्र०) < ऊपर+औछ < उंच, *उदंच = बाहर निकालना]

उपलाइल—(क्रि०) किसी हलकी चीज का पानी के ऊपर की सतह पर बहना। (वि०) उपलाया हुआ (चंपा०-१, भाग०-१)। पर्या०—उपलाएल (पट०-४)। [उपल+आइल (प्र०) < *उप+√प्लु = तैरना, ऊपर छहलाना]

उपलाएल—(क्रि०)—(पट०-४)। दे०—उपलाइल।

उपाड़ल—(क्रि०) धान या किसी फसल को जड़-समेत खींचकर उखाड़ लेना (बर०-१, पूर्णि०-१)। [उपाड़ + ल (क्रि० प्र०) < *उत्पाट < उत्+√पाट]

उफंगिया—(सं०) किसी तरह की मजदूरी लेकर काम करनेवाला खेतिहर मजदूर (गया, चंपा०)। दे०—जन। [देशी]

उबछल—(क्रि०)—(सा०-१, पट०-४)। दे०—उपछल।

उबहन—(सं०) किसी बर्त्तन में बांधकर पानी निकालनेवाली रस्सी (पट०-४, चंपा०-१, सा०-१)। पर्या०—उबहनी, उबहैन (द० भाग०), उघेन (उ०-पू० मैं०), उभैन (भाग०-१)। [< *उद्वहन]

उबहनि—(सं०) लाठा में लगा हुआ पानी निकालने का रस्सा (चंपा०, उ०-पू० मैं०, पट०-४)। दे०—बरहा। [< *उद्वहन]

उबहनी—(सं०)। दे०—उबहन। [< *उद्वहन]

उबहैन—(सं०)—(द० भाग०)। दे०—उबहन।

उबिछल—(क्रि०) हाथ की अंजलि या किसी ढकने आदि से पानी उलीच कर खेत पटाना (चंपा०-१, पट०-४)। दे०—उपछल। [उबिछल < उपछल < उप्पोच्छल (प्रा०) < *उत्प्रोक्षण (संस्कृ०)]

उबेर—(सं०)—(१) वह खेत या मैदान, जहाँ गाएँ चराई जाती हैं (शाहा०)। दे०—चराई। [< *उद्वृत < उद्+√वृ (?)] (२) वर्षा बंद हो जाना (बर०, चंपा०-१)। [< *उद्वार, < *उद्वेल (?)], (३) फसल कटने के बाद वे खेत, जहाँ गाएँ आदि चरती हैं। [उद्वृत]

उबेरा—(सं०) वह खेत या मैदान, जहाँ गाएँ चराई जाती हैं (द० मुं०)। दे०—चराई। [< *उद्वृत < उद्+√वृ]

उभर-खाभर—(सं०) ऊँची-नीची जमीन (उ० प०, द०-पू० मैं०, भाग०-१)। पर्या०—मटहा (उ०-प० मैं०), डाबर (चंपा०, उ०-पू० मैं०), उबर-खाबर (पट०, गया, द० मुं०, सा०), ऊँचखाल (पट०, चंपा, प०), ऊखर-खाबड़ (शाहा०), उचली (द० भाग०)। [उद्भर+खात, उपरि+खात अथवा उभर का अनु०]

उभैन—(सं०) कुआँ से पानी निकालने की डोरी (मुं०-१, भाग०-१)। दे०—उबहन। पर्या०—उबहन (पट०-४)। [< *उद्वहन]

उमकल—(क्रि०) किसी पशु का उमंग में आकर उछलना-कूदना। उत्तेजित होना। जोश में आना (मुं०-१, चंपा, पट०-४)। [< *उद्+√मंक = चलना > उन्मंकन, उमक्नु (नें०) < *उक्रम, < *उत्क्रमयति (?), मिला० क्राम्यति, उत्क्रामति (संस्कृ०), उक्कामति (पा०), उक्कमइ (प्रा०)—नेपा०]

उम्मी—(सं०) होरहा बनाने के लिए मड़ुए की काटी हुई हरी बाल (प०, मैं०)। पर्या०—ऊमी, उनी (चंपा०)। टि०—जौ और गेहूँ की बाल को आग में भूनकर भी उम्मी बनाई जाती है (शाहा०)। [< *उलमुक (संस्कृ०), उम्मुअ (प्रा०) मि०—उम्मत्थिअ (प्रा०) = दग्ध, जला हुआ]

उरकुस्सी—(सं०)—(१) एक पराश्रित घास, जो पोस्ते आदि फसल को हानि पहुँचाती है (द०-पू० वि०)। पर्या०—बिऔतिया, बिछवतिया, भरभौंड़ (द०-प० शाहा०), ठोकरा (शाहा०, चंपा०)। (२) एक प्रकार का पौधा, जिसकी पत्तियों के लगने पर जोरों से खुजलाहट होती है (मुं०-१, चंपा०, मैं०, भाग०-१)। मुहा०—उरकुस्सी लगल = व्याकुल होना, स्थिर न रहना। [कवाछ (हि०), अलाकुशी, आलकुशी (बं०), < *अलिशूक (संस्कृ०)]

उरदी—(सं०) एक प्रकार का दलहन, जो स्लेटी रंग का, छोटा और बीच में उजली-सी पतली रेखा लिये होता है। इसकी दाल पकने पर चिकनी होती है। दे०—उरिद। [ऋद्ध (?), उडिद (देशी)—'उडिदो माषधान्यम्—दे० ना० मा०]

उरिद—(सं०) दे०—उरदी। पर्या०—कलाई, कराई, कलाय (भाग०-१), मास कराई (पू० मैं०), उरीद (बर०-१, पूर्णि०-१, भाग०-१)। [< *ऋद्ध, (?), उडिद (देशी) उडिदो माषधान्यम्—दे० ना० मा०। माष (संस्कृ०), मास (पा०, प्रा०), माह (पं०), उड़द, उड़िद (हि०), माषकलाय (बं०), उडिद (मरा०), उड़द, ऊड़द (गु०), ठरिदु, उरदु (सिं०)]

उलटल—(क्रि०) उलटना, गाड़ी आदि का उलट जाना। [उलट+ल (प्र०) < *उल्लट, √उल्लट्यते। वुल्टावुन (कश्म०), ओलटिव (असं०), उल्टा (बं०), उल्टिबा (ओ०), उलटना (हिं०), उल्टनु (नें०), उल्टणा (पं०), उलटणे (मरा०), उलटनुँ (गु०)—नेपा०]

उलटावल—(क्रि०)—उलटल क्रि० का प्रे०। उलटाना।

उलटा सरसों—(सं०) वह सरसों, जिसकी फली ऊपर की ओर उठी न होकर नीचे की ओर झुकी होती है (प्रायः सर्वत्र)। [उलटी+सरसों < *उल्लट + सर्षप]

उलरुआ—(सं०) गाड़ी को पीछे की ओर गिरने से बचाने के लिए लकड़ी या बांस की बनाई

हुई थुन्नी (बिहा०, भ्राज०)। दे० – एड़ा। [उलार, उलरना (हिं०), < √श्रोलडि 'उत्क्षेपणे = ऊपर उठाना, फेंकना; श्रोलएडक, उलएडक। < *उल्लाटयति, *उल्लटति – नेपा०]



उलरुआ

उलवा —(वि०) उबाला या भूना हुआ अनाज।

उलवा दाल —(सं०) उलाई (श्राग पर भूनकर बनाई हुई) दाल। दे०–दाल। पर्या०–उलावल दाल (पट०-४, भाग०-१)। [उलवा + दाल, उलवा < √उल = जलाना अथवा आग पर थोड़ा भुना]

उलहल —(क्रि०)–(१) दे०–उखाड़ब २, ४। (२) धूप या शुष्क हवा लगने से कच्ची लकड़ी का सूख कर टेढ़ा हो जाना। (पट०-४, मग०-५) दे०–उनहल। [उलह + ल (प्र०) < उलह < *उन्नह (?) < उद् + √नह]

उलार —(सं०) पीछे भार पड़ने के कारण गाड़ी का पीछे की ओर झुक जाना (चंपा०-१, पट०-४, भाग०-१, श्राज०)। मुहा०—उलार होअल = उलार होना। [< *उलएड, < *श्रोलएड < श्रोलडि (उत्क्षेपणे) वा < *उल्लाट, उल्लाटयति, उल्लटति (संस्कृ०)—नेपा०]

उलावल —(क्रि०) किसी अनाज को हल्के-हल्के भूनना (चंपा०-१, मुं०-१, पट-४, भाग०-१)। (वि०) उलाया हुआ अनाज। [उलाव + ल, उल + श्रावल (प्र०) < √उल = भूनना, गर्म करना]

उलावल दाल –(सं०) दे० –उलवा दाल। [उलाव + ल (क्रि० प्र०) < √उल = भूनना]

उसकावल —(क्रि०) –(१) धान आदि को उबालते समय, किसी लकड़ी से चलाना। (२) चिउरा कूटते समय ओखल में लकड़ी या बाँस के छोटे डंडे से उसे चलाना। (३) दीपक की बत्ती को आगे की ओर उसकाना (चंपा-१, मुं०-१, भाग०-१) [< *उत्कृष, ∠ *उत्कर्ष]

उसटल –(क्रि०) फसल का उठ जाना या खत्म हो जाना (मुं०-१)। [उसट + ल (प्र०) ∠ *उत्सद ∠ उत् + √सद्]

उसटावल —(क्रि०) फसल को उठा लेना या उजाड़ना (मुं०-१)। [उसट + श्रावल (प्र०) ∠ *उत्सद ∠ उत् + √सद्]

उसठ –(सं०) (१) कमजोर मिट्टी (गं० द०, पट०-४, चंपा, भाग०-१)। दे०—हलुक। (२) किसी रसीली चीज का रस सूख जाना (चंपा०)। [∠ *उत्सृष्ट]

उसनल —(क्रि०) धान या किसी अनाज को उबालना (मुं०-१, भाग०-१, चंपा०)। (वि०) —उबाला हुआ, उसना हुआ धान आदि। [∠ *उष्ण ∠ *उत्स्वेद। ∠ *उत् श्रीणाति, मिला० –श्रीणाति (संस्कृ०); उसनना (हिं०), उसिन्नु (ने०)—नेपा०]

उसना, उसिना —(सं०)–(१) धान उबालकर तैयार किया हुआ चावल (मुं०-१, चंपा०, भाग०-१)। दे० –चाउर। (२) अरहर, मूँग, चना आदि को उबालकर बनाया गया खाद्य पदार्थ (दर०-१, पूर्णि०-१)। [∠ *उष्ण, ∠ *उत्स्विन्न ∠ उत् श्राण]

उसनापौरी —(सं०) धान उसनने का काम (मुं०-१, भाग०-१)। [उसना + पौरी ∠ पर्यय]

उसरल (क्रि०) किसी काम का जल्दी-जल्दी पूरा होना (चंपा०-१, पट०-४, भाग०-१)। [उसर + ल (क्रि०प्र०) ∠ *उत्सर]

उसिनल —(क्रि०) पानी में धान आदि डालकर, आग पर रखकर उबालना (चंपा०-१, पट०-४)। (वि०), उबाला हुआ। [उसिन + ल, उष्ण, उत्स्विन्न]

उसिना — (सं०) —(चंपा०-१)। दे०—उसना।

उस्सर —(सं०) वह भूमि, जिसमें रेह अधिक हो और जो खेती के योग्य न हो (पट०-४, चंपा०, भाग०-१)। दे०—ऊसर। [ऊषर]

ऊ

ऊँट —(सं) एक प्रसिद्ध चतुष्पाद पशु, जो लंबी और ऊँची गर्दनवाला होता है तथा रेगिस्तान में बहुतायत से पाया जाता है। कहीं-कहीं इससे हल चलाने का काम भी लिया जाता है। पर्या०—शुतुर (मु० प्र०)। [उष्ट्र (संस्कृ०), उट्ठ (प्रा०)]

ऊँटा – (सं०) एक काँटेदार पौधा, जिसके बीज से खुजली की चिकित्सा के लिए तेल बनाया जाता है (द० मुं०, भाग०-१)। [उष्ट्रकण्टक]

ऊँख —(सं०)— दे०—ऊख।

ऊख, ऊखि –(सं०) एक प्रकार का दंडाकार पौधा, जिसका रस मीठा होता है और जिससे गुड़, चीनी आदि बनाई जाती है। पर्या०—केतारी (मं०, पट०, गया, द०-पू० बिहा०), कुशियार उ०-पू० मं०)। [< *इक्षु (संस्कृ०), इक्खु (प्रा०), श्राक्, इक्षु, कुशिर (बं०), ऊंस, उस (मरा०), उस, शेरडी (गु०), कात्तुएदु, कब्बु (क०), चिरकु (ते०), इक्कु (ता०), साँठो, साँठा सेलड़ी (मरा०), गन्ना, गंडा (पं०), कारम्ब (प्रा०), नए शक्कर (फा०), कसबुस्सुक्कर (अ०), ईख, ऊख (हिं०)। [केतारी < कान्तार कुशियार ∠ कोशाकार]

ऊख नम्मर २४ —(सं०) ऊख का एक पारिभाषिक भेद। यह हल्के लाल रंग का पतला ऊख है। यह बँसी नीची जमीन में, जहाँ पानी जमा होता है, रोपा जाता और अधिक परिमाण में उपजता है (बिह०, री०)। [ऊख + नम्मर + २४ ∠ ऊख (हिं०) + नंबर (श्रं०) + २४ (संख्या)]

टि०—ऊख के साथ दिये ये नंबर भारत की विभिन्न ऊख-अनुसंधानशालाओं के वैज्ञानिक शोध के विभिन्न प्रयोगों पर आधारित हैं।

ऊख नम्मर ३१३ —(सं०) ऊख का एक पारिभाषिक भेद, जो उजले रंग का होता है। इसकी उपज अच्छी होती है, इसका छिलका पतला होता है। यह ऊख नरम और रस से भरा होता है। इसका गुड़ साफ होता है। चीनी की मात्रा भी अधिक होती है। आजकल बीमारी लगने के कारण इसकी खेती बहुत कम हो गई है (बिह०, री०, हरि०)। [ऊख + नम्मर + ३१३ ∠ ऊख (हिं०) + नंबर (श्रं०) + ३१३ (संख्या)]

ऊख नम्मर ३२१ — (सं०) ऊख का एक पारिभाषिक भेद। यह लाल रंग का और मोटा होता है। यह नरम और रसीला होता है। इसका गुड़ अच्छा नहीं होता। कुछ वर्ष पूर्व इसकी खेती खूब होती थी। इसमें बीमारी लग जाने के कारण इसकी खेती अब कम हो गई है (मिला०-लाल गोंड़ी, लाल गेंड़ा) (बिह०, री० हरि०)। [ऊख (हिं) + नम्मर ∠ नंबर (श्रं) + ३२१ (संख्या)]

ऊख नम्मर ४१६ —(सं०) ऊख का एक पारिभाषिक भेद। यह काफी मोटा और वजनदार होता है। इसकी उपज अच्छी होती है। (बिह०, री०)। [ऊख (हिं) + नम्मर < नंबर (श्रं०) + ४१६ (संख्या)]

ऊख नम्मर ४५३ —(सं०) ऊख का एक पारिभाषिक भेद, जो काफी मोटा और लंबा होता है। पर्या०—समसेर (री०), हड़हवा, रुसीहवा (भोज०), कटहवा (मग०)। [ऊख (हिं) + नम्मर < नंबर (श्रं०) + ४५३ (संख्या)]

ऊखर-खाबड़ —(सं०) —(शाहा०) दे०—उभर-खाभर। [ऊखर + खाबड़, ऊखर < उखड़ा ∠ उखड़ना (हिं०) < *उत्कर्षण ∠ *उत्खनन; खाबड़ < खर्पर (?)]

ऊखि –(सं०) –(मं०, भोज०, श्राज०)। दे०—ऊख।

ऊना डेढ़ी जोत —(सं०) खेत की टेढ़ी जुताई (चंपा०)। दे०—ऊना ड्योढ़ी जोत। [ऊना + डेढ़ी + जोत—(यौ०)]

ऊना ड्योढ़ी जोत — (सं०) खेत की टेढ़ी जुताई (सा०, पट०)। पर्या०-ऊना डेढ़ी जोत (चंपा०)। [ऊना + ड्योढ़ी + जोत-(यौ०)]

ऊना फानी –(सं०) खेत की चौड़ाई की ओर से जुताई (पट०)। दे०—फानी। [ऊना + फानी-(यौ०)]

ऊनी —(सं०) —(चंपा०)। दे०—उम्मी, ऊमी। [मिला०—उम्मी]

ऊपराहुत –(सं०) ऊपर की ओर वाली जमीन। ऊँची जमीन (चंपा०-१)। दे०—उपरवार। [ऊपर + श्राहुत ∠ उपरि + श्राभृत (?)]

ऊबर-खाबर —(सं०) —(पट०-४, भाग०-१)। (दे०—उभर-खाभर)। [ऊब्बर + खाबर; ऊब्बर ∠ उदवर्त्म (?) खाबड़ (अनु०) वा ∠ खर्पर]

ऊमि —(सं०) मड़ुए के कच्चे दाने, जिन्हें पीसकर और तल कर बड़ी बनाई जाती है या जो भून कर खाये जाते हैं (चंपा०-१)। [मिला०– उम्मी]

ऊमी, उम्मी —(सं०) होरहा बनाने के लिए मड़ुए

की काटी हुई हरी बाल (प० मं०, चंपा०-१)। दे०—उम्मी। पर्या०—ऊनी (चंपा०)। [मिला०—उम्मी]

ऊम्मी, ऊमी—(सं०) दे०—उम्मी, ऊमी।

ऊलुस—(सं०) खाने के बाद नौकर के लिए छोड़ दिया गया जूठन। दे०—नेवाला। [देशी]

ऊसर—(सं०) (भाग०-१, चंपा०, प्राय: सर्वत्र)। दे०—उस्सर। पर्या०—उस्सर, रेहाह, रेहाड़ (पू० मं०), रेहड़ा (पट०, गया, द० मुं०)। [ऊषर]

ए

एँकरी—(सं०) विना साफ किया हुआ चावल। (पट०-४)। दे०—अकरी। [एँकर + ई ∠एँकर ∠अँकर ∠अकर ∠अकतत्र ∠ *अकृतक]

एँड़ियावल (क्रि०)–(१) एँड़ी से मारना (मुं०-१ चंपा०, भाग०-१)। २–एँड़ी से रौंदना(मुं०-१, भाग०-१)। [एंड़+इया+आवल (क्रि० प्र०) ∠एँड़∠*एड्डूक]

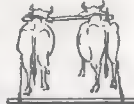
एँसों—(सं०) वर्त्तमान साल, चालू वर्ष (चंपा०-१, भाग०-१)। [∠ *ऐषमस्]

एक चास—(सं०) जमीन की पहली बार हुई जुताई (पट०-४, भाग०-१, चंपा०, प्राय: सर्वत्र)। [एक+चास (देशी)]

एकजाई करल—(मुहा०) एक से अधिक भूमिखंड (होल्डिंग) को इकट्ठा करना या बतलाना (सा०-१)। [एक जाति* 7 एक जाई]

एकठउरी—(सं०) अनेक चीजों का एक साथ का मिश्रण (चंपा०-१, भाग०-१)। [एक+ठउरी ∠ठौरी∠स्थली (?)]

एकठा—(सं०)–(१)—हेंगे का चौरस लंबा काष्ठ-फलक (शाहा०)। दे०—पल्ला। (२) छोटी नाव (चंपा०)। (३) वह हेंगा, जिसमें दो बैल जोते जाते हैं (चंपा०)। [एक+काठ∠काष्ठ]


एकठा

एकठौरी—(सं०) दे०—एक ठउरी।

एकड़—(सं०) भूमि की नाप, जो एक बिगहा बारह कट्ठे के लगभग होती है। लेकिन इसकी निश्चित नाप ४८४० वर्गगज है। (सा०-१, पट०-४)। [एकर (अं०)]

एक तौल—(सं०) पूरे (आठ) दाँत हो जाने के बाद एक वर्ष का पूर्ण वयस्क बैल (प्राय: सर्वत्र)। दे०—तौल। [एक+तौल]

एक फसिला—(सं०) वह जमीन, जिसमें साल में एक ही बार फसल पैदा होती है (पट०-४, भाग०-१)। पर्या०—एकफसिली, एकसलिया (चंपा०)। [एक+फसिला (फा०)]

एकफसिली—(सं०) दे०—एकफसिला। [एक+फसिली (फा०)]

एकबग्गा—(सं०) वह मुँहजोर व्यक्ति या मवेशी, जो किसी बात पर ध्यान न दे और जिधर मुड़े उधर ही रहे (चंपा०-१, मुं०-१, पट०-४, भाग०-१)। [एक+बग्गा∠ *वर्ग, ∠ *मार्ग]

एकवन—(सं०) आक (अकवन) नामक पौधा-विशेष (शाहा०-१)। [अर्क]

एकबाँह—(सं०) खेत की पहली बार की जुताई। दे०—एकचास। [एक+बाँह ∠वाह, वाहु (?)]

एक रउनी—(सं०) किसी खेत की एक बार की निकौनी (चंपा०-१)। पर्या०—निकौनी (पट०-४)। [एक+रउनी (देशी)]

एकरी–(सं०) विना साफ किया हुआ चावल (पट०-४) दे०—अकरी। [एकरी∠अकरी∠ *अकृतक]

एकवाई—(सं०) (१) गाड़ी की वह लीक, जो एक तरफ अधिक गहरी हो और दूसरी ओर अधिक ऊँची हो (चंपा०-१, भाग०-१)। (२) पानी पटाने के लिए आर (मेंड़) के पास बनी नाली (सा०-१)। [मिला० - एकावलि]

एकसलिया—(सं०)—(चंपा०)। दे०—एक-फसिला। [एक+सलिया∠साल (फा०)]

एक साल के तौल—(सं०) पूरे (आठ) दाँत हो जाने के बाद एक वर्ष का पूर्ण वयस्क बैल। दे०—तौल। [एक+साल+के+तौल (यौ०)]

एकसिंघा—(वि०) एक सींगवाला बैल, भैंसा आदि (भाग०-१) पर्या०—सिंघटुट्टा (पट०-४, भाग०-१), एकसिहा। [एक+सिंघा ∠एक+शृंगक]

एकसिंहा—(वि०) दे०—एकसिंघा।

एकहन—(सं०) वह अन्न, जिसमें दूसरा अन्न नहीं मिला हो (शाहा०-१)। [एक+हन∠ एक+अन्न वा < *एकधान्य]

एकहरा—(सं०) वह हेंगा, जिसमें दो ही बैल जोते जाते हैं (द० भाग०, भाग०-१)। दे०—हेंगी। पर्या०—दुबरधिया (चंपा०)। [एक+हरा (प्र०) ∠शस् (संस्कृ० प्र०)]

एकहुला के माल—(सं०) किसी खेतिहर का एकमात्र पशु (चंपा १)। [एक+अहुला+के +माल—(यौ०)]

एकैस—(सं०) इक्कीस की संख्या। [एक+ ऐस∠ * एक विंशति]

एकैसिया—(सं०)—(१) फसल के २१ बोझों की एक राशि (शाहा०)। (२) फसल को काटने, बाँधने और खलिहान तक पहुँचाने के लिए मजदूर को २१ बोझों पर एक बोझा मजदूरी देने की प्रचलित प्रणाली (शाहा०, गया, मुं०, भाग०-१)। दे०—एकैसी। [एकैस+ इया∠ *एकविंशतिक]

एकैसी—(सं०)—(१) बोझे से बड़ी फसल की एक राशि, (२१ बोझे = एक एकैसी)—(पट०, गया, द० मुं०)। (२) फसल को काटने, बाँधने और खलिहान तक पहुँचाने के लिए मजदूर को २१ बोझों पर एक बोझा मजदूरी देने की प्रचलित प्रणाली (पट०, गया, द० मुं०, भाग०-१)। पर्या०—एकैसिया (शाहा०)। [एकैस+ई∠ *एक विंशतिक]

एखरा जात—(सं०) जमींदारी के विषय में होनेवाला गाँव का खर्च (पट०)। दे०—गाईं खरच।

एगदाईं—(सं०) दौनी में घूमनेवाला सबसे तेज बैल (द० भाग०, पट०-४)। दे०—पाट। [∠ *युगदमिन् ∠ *एकदमिन्]

एघाँव—(सं०)–(१) वह ऊँचाई, जहाँ तक करीन, लाठा आदि से पानी उठाया जाता है। दे०—बोदर। (२) जब करीन, लाठा आदि से पानी चलाने में कई उठान (ऊँचाई) पड़ते हों और प्रत्येक को पार करके ऊपर खेत तक पानी पहुँचाया जाता हो तो उस दशा में पहला उठान या जलाशय (गं० द०)। दे०—थेवका। पर्या०—एघावा (पट०), एघाय (द० भाग०), एघाई (भाग०-१), दोघाँव = दूसरा उठान; दोघावा (पट०), दोघाइ (भाग०-१)। तेघाव = तीसरा उठान; तेघावा (पट०)। तेघाई (भाग०-१) चौघाँव = चौथा उठान; चौघावा (पट०)। [ए+घाँव∠एक+स्थाम (?)]

एघाइ—(सं० (भाग०-१)। दे०—एघाँव।

एघाय—(सं०)—(द० भाग०)। दे०—थेवका। [एक+स्थाम (?)]

एघावा—(सं०)—(पट०)। दे०—थेवका। [एक+स्थाम]

एड़ा—(सं०)—(१) गड़ासी की बेंट के अंत का गाँठदार भाग (गं० उ०)। पर्या०—हूर (उ०-पू० मं०, चंपा०), ठेकवा (द०-प० मं०, शाहा०), आढ़क (द०-प० शाहा०), मूठ, मुठिया (द०-पू० बिहा०, भाग०-१)। (२) दे०—हूरा। (३) गाड़ी को पीछे की ओर गिरने से बचाने के लिए दी जानेवाली थूनी। पर्या०—उलरूआ, सिधवाइ, लरूआ (पट०)। [< *एड्डूक(?)]


एड़ा

एदली—(सं०) एक प्रकार का धान, जो छींट कर (बावग) बोया जाता है (गया)। [(देशी), मिला०-एतक, एतल = काले वर्ण का हरिण, संभ०—एतक सदृश होने से नाम पड़ा हो।]

एमारत सेस—(सं०) किसान से मकान बनाने के लिए लिया जाने वाला एक प्रकार का कर (सा०-१)। [इमारत+सेस]

ऐ

ऐंजा—(सं०) एक प्रकार का साग (दर०-१)। [देशी]

ऐन—(सं०)—(१) रुपये के बदले अन्नादि के रूप में चुकाया जानेवाला भूमि-कर। दे०—माल। (२) कौल के मुताबिक जमीन की फसल का हिस्सा (मुं०-१)। (३) भावली या ठीके की जमीन का मालिकाना हिस्सा (मुं०-१, भाग०-१)। [अन्न, अयन]

ऐमाल—(सं०) एक प्रकार की घास (दर०-१, पूर्णि०-१)। [मिला०—अम्ल]।

ओ

ओंटल—(सं०) दे०—ओटल। [<*आवर्त्त (संस्कृ०), आवट्ठ (प्रा०)]

ओइलल—(क्रि०)—(१) किसी अन्न की ढेरी से उसके पत्ते आदि को अलग करना (चंपा०-१, पट०-४, भाग०-१)। (२) किसी जोते-कोड़े खेत से घास-फूस निकालना (चंपा०-१, भाग०-१)। [मिला०—अव+√लुञ्च, अव+√लुल्=उखाड़ना, अलग करना]।

ओखर—(सं०)—(१) (उ०-पू० मं०, पट०-४, भाज०)। दे०—ओखरी। (२)—(उ०-पू० मं०, उ०-पू०)। ओखरी। [उलूखल]

ओखरा—(सं०)—(द०-प० शाहा०)। दे०—ओखरी। [ओखर+आ (प्र०)<*उलूखल]

ओखरी—(सं०)-(१) लकड़ी या पत्थर का बना गहरा वर्तन, जिसमें मूसल से धान, तंबाकू आदि कूटे जाते हैं। (भाग०-१)। पर्या०—ओखर (उ०-पू० मं०, शाहा०), ओखरा (द०-प० शाहा०), ओखली (गया), कुरदन (पट०), धनकुट्टी (सा०)। [ओखर+ई (प्र०) <*उलूखल] (२) लकड़ी का वह गहरा बर्तन, जिसमें मूसल या ढेंकी से धान कूटते हैं (गं० उ०)। पर्या०—ओखर (उ०-पू० मं०, उ० प०), ओखरी, भुंदो (द० भाग०, भाग०-१), उखरी (द० मुं०), कोँड़ी (द०-प० शाहा०), भुड़िया (शाहा०), भुई ओखरी (गया), भुड़की (पट०), घुंडी (पट०-१)। [*उलूखल]

ओछी कानी—(सं०) छह दाँतोंवाला बैल (मुं०-१, भाग०-१)। [ओछी + कानी < *तुच्छ+स्कन्ध (?)]

ओछी-कान्ही—(सं०) वह बैल, जिसके दूध के छह दाँत टूट गये हों और आठवाँ अभी तक जन्मा न हो (सा०-१)। दे०—ओछी कानी। [ओछी +कान्ही<*तुच्छ+स्कन्ध (?)]

ओट—(सं०)—(१) किसी चीज के नीचे किसी वस्तु को लगा देना ताकि वह गिरे या लुढ़के नहीं (चंपा०-१, भाग०-१, पट०-४, भाज०)। (२) किसी वस्तु की आड़। [ओट∠उट (संस्कृ०), =तृण (हिं० श० सा०), मिला०—अवट=गर्त्त]

ओट करल—(मुहा०) आड़ करना, छिपाना, किसी वस्तु से घेरना।

ओटनी—(सं०) वह वस्तु, जिससे बीज रूई से अलग किया जाता है। पर्या०—ओटाई (सा०), औंटाई (द० भाग०, चंपा०-१)। [<*आवर्त्तनी]।

ओटल—(क्रि०)—(१) कपास को चरखी में दबाकर रूई और बिनौले को अलग करना (चंपा०-१)। (२) अपनी ही बात कहते जाना (चंपा०-१)। [∠*आवर्त्त]

ओटाई—(सं०)—(सा०)। दे०—ओटनी। [<*आवर्त्त, *आवृत्ति]

ओड़हुल (सं०) लाल रंग का एक प्रसिद्ध फूल, जो देवी देवता पर चढ़ाया जाता है (शाहा०, चंपा०)। [ओड़+हुल < ओड्र+फुल्ल, मिला०—ओड्र-पुष्प]

ओड़ा—(सं०) बाँस की कमची या करची का बना बड़ा खुला टोकड़ा। इसमें विशेषतः ताल का पत्ता देकर बुना जाता है (पट०-४, अन्यत्र)। [ओड़ा< कुंड(?) (संस्कृ०)—(हिं० श० सा०), मिला०—ओत=बुना हुआ<आ+उत, अवट]

ओड़िया—(सं०)—(१) कोल्हू में ऊख के टुकड़ों को डालने के लिए प्रयुक्त टोकरी (द० भाग०, पट०-४)। दे०—छैंटी। (२) बाँस आदि का बना दौरा। डलिया (मुं०-१, भाग०-१)। [मिला०—ओत∠आ+उत =बुना हुआ, अवट=गर्त्त]

ओड़ी—(सं०)—(१) कोल्हू में ऊख के टुकड़ों को डालने के लिए प्रयुक्त टोकरी (शाहा०, पू० मं०)। दे०—छैंटी। (२) हल से जोतने पर खींची गई गहरी रेखा, जिसमें रोपने के समय ऊख का बीज डाला जाता है (भाग०-१)। (३) ऊख का उबाला रस (गुड़) रखने का बर्तन। दे०—मटुकी। [∠*ओत∠आ+उत] (४) एक धान-विशेष, जो फलाहार में गिना जाता है (पट०-१)। [मिला०—ओड्र्य = ओड्र (उड़ीसा) संबंधी]

ओड़ैसा—(सं०)—(१) बाँस की कमची या करची की काफी बारीक बुनी हुई टोकरी, जिसमें

पानी आ सके। (२) चारा खिलाने के लिए प्रयुक्त टोकरी (कहीं-कहीं)। दे०—पथिया। [मिला०—ओतेषीक∠आ+उत+इषीक]।

ओद—(वि०)—(१) गीला (चंपा०-१)। (सं०)—(२) एकसाथ मंडलाकर उगनेवाले बाँस के पौधों का समूह (चंपा०-१)। [आर्द्र, ओद्म, आवन्ध]

ओदरल—(क्रि०)-(१) किसी सटी हुई चीज का फटकर अलग हो जाना (चंपा०-१, भाग०-१)। (२) खेत की पपड़ी का फटना। [<*अवदार< अव+√दृ=फटना]

ओदार—(सं०) किसी फसल का बोझा बाँधने के लिए पटुए की ऐंठी हुई रस्सी (पू० मं०)। दे०—कचरा। [देशी]

ओदारल—(क्रि०) ओदरल क्रि० का प्रे०। किसी सटी हुई ऊपरी चीज को फाड़ना या अलग करना (चंपा०-१, भाग०-१, पट०-४)। [*अव-दार< अव + √दृ=फाड़ना]

ओदौंछी—(सं०) गीले खेत को जोतकर उसमें बीज बोने पर फसल में लगनेवाला एक रोग-विशेष (शाहा०-१)। [ओद+ औंछी< ओदा <आर्द्र, उद + औंछी, औंछी.< उच्छ्व (?)]

ओध—(सं०) बाँस के पौधों का समूह (चंपा०-१), दे०—बाँस के कोठी। [आवन्ध]

ओरहा—(सं०)—(१) पकने के पहले ही काटी हुई गेहूँ की फसल (द०-पू० मं०, भाग०-१)। दे०—होरहा। (२) भूनने के लिए काटा हुआ अनाज (द०-पू० मं०, चंपा०, भाग०-१)। दे०—होरहा। [अव+√उल=जलाना, भूनना]

ओरीटीनी—(सं०) एक पशु-खाद्य घास (पट०, गया)। [देशी]

ओल—(सं०) जमीन में पैदा होनेवाला एक प्रकार का कंद। इससे भरता, तरकारी आदि बनाये जाते हैं। पर्या०—सूरन (दर०-१, पट०-४, भाग०-१, पट०-१)। [ओल (संस्कृ०), ओल (हिं०), ओल् (मे०), ओल् (बं०), ओल (भो०), सूरण (गु०)]

ओलल—(क्रि०)—(१) अन्न को चलाकर उसमें मिले विजातीय अन्न या दूसरी वस्तु को अलग करना। (२) जोते हुए खेत या बारी की मिट्टी को घास-फूस निकाल देने के बाद बराबर करना। (दर०-१, चंपा०, पूर्णि०-१, भाग०-१)। [अव + √लल्=चलाना]

ओल्हनी—(सं०) रोपनी के समय गाया जानेवाला एक प्रकार का गीत, जो अपराह्न के परार्द्ध में गाया जाता है और जिसका स्वर धीरे-धीरे नीचे की ओर झुकता है। इसका प्रतिकूलार्थक शब्द 'चढ़न्ती' है (चंपा०-१)। [उल्हा (प्रा०) =वुभना, अव + हरण=< *अवहलन <अव + √हल् (=नीचे जाना, गिरना, झुकना)]

ओल्हल—(क्रि०)—(१) किसी चीज का किसी एक तरफ झुक जाना (चंपा०-१, पट०-४)। (२) हल या ट्रैक्टर द्वारा एक तरफ ज्यादा मिट्टी फेंकना (चंपा०-१)। [<*अवहल <अव+√हल् (=गिरना, चलना)—(संस्कृ०), उल्हा (प्रा०)=वुभना, अव+ हरण=एक तरफ रखना, झुकाना]

ओल्हे आव—(सं०) हल, गाड़ी आदि में जुते बैलों को घुमाने के समय हाँकनेवाले का संकेत-शब्द। (सा०-१)। [ओल्हे+आव]

ओसर—(सं०) पूर्ण वयस्का बाछी, जो गाय बनने के लिए तैयार हो। पर्या०—कलोर (प०), गोर (उ०-पू० मं०), फेटाइन (पट०), अँकरिया (द० भाग०)। [उपसर्या, < *उस्रा (गाय)]

ओसाएल—(क्रि०) ओसाना, वायु के बहाव में अनाज को सूप आदि से ऊपर से नीचे तक पतली रेखा में गिराकर भूसा आदि से अलग करना। पर्या०—ओसावल (चंपा-१, पट०-४)। [<*अव + √सो (षो) 'अन्तकर्मणि'= समाप्त करना, पूर्ण करना; *अव + √शृ = छितराना, फैलाना; *अव+√सृ=प्रेरणा देना, नीचे फैलाना, अवसवन]

ओसारा—(सं०) घर के आगे का बरामदा।

ओसावनि—(सं०)। दे०—ओसौनी।

ओसावल—(क्रि०)—(चंपा०-१, पटना०-४) दे०—ओसाएल। (वि०) ओसाया हुआ [<√अव+√सृ, *अव+√सो]

ओसौनी (सं०)-(१) चीनी के रस को ठंडा करने के लिए प्रयुक्त लकड़ी का कड़ाह। दे०-कठौत। [< *अभिषवन = सोमरस रखने का पात्र] (२) धान आदि अन्न ओसाने की प्रक्रिया बिहा०, भ्राज०)। पर्या० — ओसावनि (हर०-१, पूर्णि०-१)। [अव + √सू ∠ अवसवन]।



ओसौनी

औ

औंकर-(सं०)-एक प्रकार की घास, जो पशुओं के चारे के काम में आती है (शाहा०, गया)। [देशी-मिला०—अवकर (संस्कृ०) = कूड़ा-करकट]

औंजली-(सं०) धनरोपनी के अंत में किया जानेवाला सहभोज (द० भाग०)। पर्या०—बन-उसरा या बनुसार (गया), गावा-पखार (प० चंपा०), उछाड़ी या बनउखाव (पट०) [देशी]

औंटाई-(सं०)-(१) वह वस्तु, जिससे रुई औंटी जाती है। दे०— ओटनी, (२) रुई ओटने की मजदूरी (ब० भाग०)। [औंटा + ई (प्र०) ∠ आवर्त्त (संस्कृ०), आवट्ट (प्रा०)]

औगारल--(क्रि०) ज्यादा गड्ढा करके हल जोतना (चंपा०-१)। [< *अवगर्त, < *अव-गाढ (संस्कृ०), ओगाढ (प्रा०) = गंभीर, गहरा]

औछार—(सं०) वर्षा का एक झोंका (चंपा०-१)। पर्या०—अछार (पट०-४, भाग०-१)। [< *अवशार < अव + √शृ + घञ्]

औदार—(सं०)-(पट०, गया)। दे०—अदार। [मिला०-उदार = धुरीण]

औरंग--(सं०) ज्वार, मकई और ऊख के पौधों का एक रोग, जो पत्तों पर श्वेत चिह्न-जैसा होता है और पौधे के ऊपर का भाग नष्ट कर देता है (चंपा०)। पर्या०—गपतू (पट०, उ०), बभनी (उ०-प० मुं०, चंपा०), गभतू, ठोठियारी (शाहा०), गपसू (सा०)। [अवरंग]

औरा—(सं०) एक प्रकार का प्रसिद्ध फल जो दवा, मुरब्बा, अँचार आदि के काम में आता है। इसका फल कागजी नींबू की तरह या उससे छोटा और कसैला होता है। पेड़ सफेदी लिए तथा पत्तियाँ इमली के पत्तों की तरह, छोटी-छोटी होती हैं। यह फल भारत के प्रायः सभी भागों में पाया जाता है। पर्या०—अँवरा (शाहा०, चंपा०)। [आमलक (संस्कृ०), आमला, आँवला, औरा, आमरा (हि०), आमला, आमरो, आमलकी (बं०), आँवले, आँव्ली, आँवलीकाटी (मरा०), आमला, अंवुल, अंवुली (पं०), आँवला (मार०), आँवला, आमला, आमली (गु०), नेल्लि, नेल्लिकायि (क०), नेलि, नेलिकर (ता०), उसरिकाय, उसरकाय (ते०), अंडा (ओ०), आमलज, आमलजू, आमलय, आमलह, आमलाह (फा०), अमलज (अ०), अमला, आमलकी (अस०)]

औल्हा—(सं०) मूठे या पूले से बड़ी फसल की राशि (उ०-मुं०, भाग०-१)। दे०—अँवासा। [देशी]

क

कँइत—(सं०) कपित्थ फल। इसका फल गोल-गोल बेल-सा होता है। पर्या०—कँइती (शा०-१)। [कपित्थ (संस्कृ०); कइत्थ (प्रा०), कैथ, कैंत, कइंत (हि०), कयेथ, कत्वेल (बं०), कवंठ, कवट, कंवट, कविठ (मरा०), कोठ, काठ, कोठु (गु०), बेललु, बेलडा, बलुवत, व्यालदमर (क०), एलांगकाया बेलग चेट्टु, एकांगा काया (ते०), कैथ (मार०)]

कँइती—(सं०) एक फल-विशेष। यह श्रीफल की तरह होता है तथा इसके भीतर का भाग खट्टा होता है (शाहा०-१)। दे०-कँइत। [कपित्थ]

कंकड़-(सं०)-(१) चूना मिला हुआ गाँठदार पत्थर का छोटा, गोल और मटमैला टुकड़ा, जिसे पकाकर चूना बनाया जाता है। (२) पत्थर का टुकड़ा, जो सड़क बनाने के काम में आता है। (३) अनाज में मिलनेवाला आँकड़। (मुं०-२)। दे०—अँकड़ा। पर्या०—आँकड़, इकड़ी, इँकड़ी (द०-पू० मुं०, प०), गंगट—(पट०, गया), गींगट (द०-पू०)। (४) विशेष प्रकार से बनाया हुआ एक तम्बाकू, जो भुर-भुरा होता है और गाँजे की चिलम पर रखकर पीया जाता है। [कर्कर, = कठिन, दृढ़, चूना का पत्थर (मो० वि० डि०); 'कर्करो मुकुरे दृढे'—(अने०); 'कर्करी भाण्डभेदना-दर्पणे कठिने त्रिषु' (मेदि०)]

कंकड़ी—(सं०)-(१) ईंट-पत्थर का छोटा टुकड़ा (गया, पट०, भ्राज०)। दे०—अंकड़ी। पर्या०—अंकरी। [कर्कर]

कँकड़ी—(सं०) दे०—ककड़ी।

कंकराही—(सं०) कँकरीली मिट्टी (सा०, पट०, मुं०-२)। पर्या०—अँकड़ैल (सा०, शाहा०) अँकड़ौर (प०)। [कंकर + आही < अस्थि (?)]

कँकरोटिया—(सं०) एक प्रकार की कड़ी मिट्टी, जो जमीन खोदने पर जमीन की ऊपरी सतह के नीचे मिलती है (द० भाग०, पट०-४)। दे०—गँगटियाहा। पर्या०—गँगारट (पट०-४), कँक-रोटी [कँकर + ओटिया < *ओष्ठी, अस्थि (?)]

कंकरी—(सं०)-(शाहा०, सा०, चंपा०)। दे०—कंकड़ी।

कँकरोटी—(सं०) दे०—कँकरोटिया।

कँगनिया—(सं०) नदी का खड़ा ऊँचा किनारा (उ०-पू० मुं०)। दे०—करारा। [कंकट = सीमा, अवधि; कच्छ = किनारा]

कंचनचूर—(सं०)—(१) रोपा जानेवाला एक प्रकार का उत्कृष्ट धान (द० मुं०, चंपा०)। (२) वासमती चावल का एक भेद (पट०-४)। [काञ्चनचूर्ण]

कंचा—(वि०) दे०—कच्चा।

कंचु—(सं०) एक प्रकार का साग, जिसकी पत्ती अरुई की तरह चौड़ी होती है (हर०-१, मुं०-२)। [मिला० —कंज]

कँचोरस-(सं०) ऊख को पेरकर या चूसकर निकाला गया रस (द० भाग०)। दे०—रस,। पर्या०—कचरस (पट०-४, चंपा०)। [कँचो + रस]।

कंजर—(सं०)—(१) रस्सी बाँटनेवाली एक विशेष जाति (उ०-प० बिहा०, गया)। पर्या०—कंजड़ा, कंजड़ (चंपा०), चाँई (प० मुं०), रसबंटा (शाहा०, गया)। (२) एक प्रकार का हरा पक्षी (मुं०-२)। [कंजर (देशी), कालंजर = बुंदेलखंड का एक भाग, उस प्रदेश के रहनेवाले लोग। इनका पेशा रस्सी बाँटना और भीख माँगना है]

कँटहवा तार—(सं०) दो-तीन पतले तारों को मिलाकर बनाया गया लोहे का तार, जिसमें दो-एक इंच की दूरी पर लोहे के ही काँटे बने होते हैं। यह फसल की सुरक्षा के लिए खेत के चारों ओर घेरने के काम आता है (बिह०), [कँट-हवा + तार (देशी), कँटहवा < काँटा < कंटक]

कंटा—(सं०)-(१) वर्षा या सिंचाई के बाद तेज धूप के कारण कड़ी हो गई खेत की मिट्टी को मुलायम करने के लिए व्यवहृत कुछ काँटों-जैसी लोहे की कीलों से बना एक तरह का हल (मुं०)। पर्या०—खखोरनी (मुं०) [< *कण्ट, कण्टक < √कण्ट > कण्टति = चलता है, घूमता है। (२) काँटा। ( ) सरकंडा, (चंपा०-१)। पर्या०—कौंड़ा (चंपा०, पट-४, शाहा०)। [काण्ड]

कँटिया—(सं०)-(१) गाय-भैंस के दूहने या घी-तेल आदि रखने के काम में प्रयुक्त लंबी गर्दन वाला मिट्टी का छोटा बर्तन। पर्या०—कटिया (चंपा०), घूंचा (चंपा०), टेहरी (पट०-४), मेटिया (चंपा०, द० भाग०), झवही (चंपा०, मुं०-२)। [मिला०—कंठिन, लंबी गर्दनवाला। कंठाल = पात्र; करक = कमंडलु—'कमंडलुश्च करकः' (शाश्व०)] (२)-(उ० पू०, द० प० मुं०) दे०—कोहा। [मिला०—कंठाल = पात्र]

कंठ—(सं०) दे०—कंठी। [∠ *कण्ठ]

कंठफोड़—(सं०) वह सुग्गा, जिसके गले में इन्द्र-धनुष-सा रंग निकल आया हो (शाहा०-१)। [कंठ + फोड़ < कंठ + फोड़ < स्फुट]

कंठा—(सं०)—(१) मवेशियों के गले में पहनाई जानेवाली घुंडीदार मोटी रस्सी (बिहा०, भ्राज०)। (२) स्त्रियों के गले का एक आभूषण। [< *कंठक]

कंठी—(सं०) कुदाल की धार और पासे की जोड़ (पट०, गया)। पर्या०—नट्टी (शाहा०), सन, कंठ (द० भाग०), सुन (द० मुं०)। (२) दे०—कंठा। (३) तुलसी या बेल की टहनी की बनी पतली-सी माला। [< *कण्ठ]

कँड़ड़ा—(सं०) जंगल या चरागाह में सूखा हुआ गोबर, जो खाद अथवा जलाने के काम में आता है (गं० उ०, मुं०-२)। पर्या०—कड़ड़ा (गं० उ०), डमारा (पट०-४, मग०-५), कंडा

(गं० द०), डमार (पू० मुं०), बिनुआ गोइठा (प०), बनगोइठा (सामा०; मुं०-२)। [मिला०—करण्ड = मधु का छत्ता, 'करण्डं मधुकोशासि कारण्डेषु दलाढके' (मेदि०), 'करण्डं मधुकोशेऽसौ' (अने०)]

कँड़रा—(सं०)—(१) सूखा हुआ गोबर (प०, सा०)। दे०—डमारा। (२) गोइठे की ऐसी राख, जो बिखरी नहीं रहे, बल्कि बँधी और कड़ी रहे। (चंपा०-१, पट०-४, मग०-५, मुं०-२)। [करण्ड]

कँड़वानी—(सं०) मूँज पैदा होने का स्थान (उ०-प०, चंपा०-१)। दे०—मुजवानी। पर्या०—करवानी (शाहा०)। [कँड़+वानी< *काण्ड+वन]

कंडा—(सं०)—(द० भाग०)। दे०—कंदा, अरुई। [∠ *काण्ड, ∠ *कन्द]

कँड़ा—(सं०)—(१) (गं०द०)। दे०—कँड़ड़ा। (२) सूखा हुआ गोबर (शाहा०, पट०)। दे०—डमारा। पर्या०—करसा (मुं०-२)। [∠ *कांड, ∠ *करंड]। (३) मूँज या सरपत नामक घास (शाहा०-१, भाग०-१)। पर्या०—काँड़ा (चंपा०-१, पट०-४, मुं०-२)। [कंड< *कांड]

कंता-कनेल—(सं०) एक प्रकार का फूल। (दर०-१, पूर्णि०-१)। [कंता+कनेल< कान्त + कर्णिकार]

कंदरी—(सं०)—नदी के किनारे खोदा हुआ कुआँ, जिसमें नदी का पानी छनकर जाने से शुद्ध रहता है (पट०, गया)। पर्या०—कानर (मग०-५)। [मिला०—कन्दर, कन्दल]

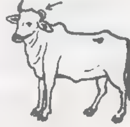
कंदा—(सं०) अरुई की जाति का जमीन में बैठनेवाला एक कंद, जिसकी तरकारी होती है(पट०-१,। मिला०-अरुई, कंडा। टि०—कंदा दो प्रकार का होता है, एक लंबा और गोल, जिसे मगही कंदा कहते हैं; दूसरा अपेक्षाकृत छोटा और गोल होता है (पट०-४, मुं०-२)। [∠ *कंदक]

कंदौला—(सं०) एक झाड़ीदार पौधा। इसका फल खट्टा और आकार कसैली की तरह होता है (पट०-१)।

कंधा—(सं०)-(१) कोल्हू के जाठ (मोहन) के ऊपर का कटा हुआ भाग। दे०—कंध। (२) ऊख के कोल्हू के पेट में रहनेवाले जाठ (मोहन) के मूँड़ के ऊपर का कटा हुआ भाग। दे०—कान्ह। [स्कन्ध, कन्ध]

कँवरी—(सं०) गाय-बैल आदि के द्वारा निगले हुए चारे का थोड़ा-थोड़ा अंश फिर मुँह में लाकर चबाने का व्यापार (सा०-१)। पर्या०—कउरी (शाहा०), कबुरी (द०-प० चंपा०), पाग(मुं०-२) पागुर (मग०-५, चंपा-०) [< *कवल]

कंसासुरी—(सं०) वह बैल, जिसका एक सींग नीचे की ओर और दूसरा ऊपर की ओर जाता है (द०-प० शाहा०)। दे०—सरग-पताली। पर्या०—सुरंग-पताली (पट०-४, मग०-५), डेवा (पट०-४)। सरगपताली (मुं०-२, चंपा०)। [कंसासुर (?)]



कंसासुरी

कँसिया—(सं०) वह बैल, जिसका रूप-रंग काँसे की तरह हो (पट०-१)। [कँस+इया (प्र०) < काँसा < *कांस्य]

कइन—(सं०) बाँस की गिरह पर का धूलि-जैसा रोएँदार छिलका (चंपा०-१, पट०-४, मग०-५, आज०)। (२) बाँस का पतला छिलका या टहनी (शाहा०, मुं०-२)। [कणी, कणिका, कञ्चिका]

कइल—(वि०)—(१, सफेद रंग का मवेशी(चंपा०-१, शाहा०)। पर्या०—कयर। (२) कपिल वर्ण का पशु (पट०-४, मग०-५)। [∠ *कपिल]

कइलाएल—(क्रि०)—(१) फसल की बाल का दृढ़ और पोख्ता होना (पट०-४, मग०-५)। दे०—कलाएल, हबसाएल। (२) किसी अन्न के दाने का कुछ-कुछ पकने लगना (चंपा०-१ शाहा०, पट०-४, मग०-५)। [कइल+आएल (क्रि० प्र०) < *कपिल]

कईंत—(सं०)—(चंपा०)। दे०—कईंता।

कईंता—(सं०) ककड़ी-जैसी एक प्रकार की तरकारी। यह एक हाथ से लेकर तीन हाथ तक लंबी होती है। इसका आकार सर्पाकार होता है (पट०-१, मुं०-२)। पर्या०—कईंत, चिचड़ा (चंपा०)। कैंता, झिंगा (संता०)। श्वेतराजि (संस्कृ०)।

कउनी—(सं०) दे०—कौनी।

कउर—(सं०) वह स्थान जहाँ गड्ढा खोदकर गोइठो लकड़ी, पुआल आदि डालकर और उसमें आग लगाकर गाँव के लोग जाड़े में आग तापते हैं और शीत-निवारण किया करते हैं (शाहा०)। दे०—घूर।

कउरल—(क्रि०) कटे हुए अनाज के पौधों को दौनी के समय उलट-पुलट करना (चंपा०-१, शाहा०)। पर्या०—उकटल (पट०-४, मग०-५, मुं०-२)। [कउर+ल (प्र०) < *कवर = संयुक्त, सम्मिलित (मो०वि०डि०), < *कणाव-किरण < कण+अवकिरण < अव+√कॄ (विक्षेपे = फेंकना)]

कउरी—(सं०) दे०—कँवरी।

कउली बूँट—(सं०) उजले और बड़े दानोंवाला एक प्रकार का चना (पट०-१)। पर्या०—कवली बूट (मग०-५, मुं०-२); कबुली बूँट (चंपा०) [कउल+ई+बूँट< काबुली+बूँट]

ककड़िया—(सं०) आम का एक भेद, जो ककड़ी के समान होता है (दर०-१, मुं०-२)। [मिला०-कर्कोटक, कर्कटी]

ककड़ी—(सं०)-(१) खीरे की जाति का एक लंबा पतला फल, जो कच्चा खाया जाता है। पर्या०—कँकरी, (शाहा०, सा०, पट०-४, मग०-५ अन्यत्र भी), काँकरि (=बड़े आकार की ककड़ी)—(शाहा०), कँकड़ी (पट०-१, शाहा०)। यह फल बहुत जनप्रिय है। इसके विषय में कहावत है—"निकौरिया गेलाह हाट, कांकरि देखि हिया फाट" (कोई मनुष्य बिना पैसे के बाजार गया, वहाँ ककड़ी देखकर उसका हृदय फटने लगा।)। 'एक हाथक कांकरि, नौ हाथक बीया' (एक हाथ की ककड़ी और उसमें नौ हाथ का बीज)। (२) खरबूजे की तरह का एक फल जो पकने पर फूट जाता है और फूटने पर फूंट या फूट कहा जाता है। [कर्कटी (संस्कृ०), कक्कडी (प्रा०), ककड़ी (हि०), काँकूड़, वड़ काँकूड़ (बं०), काँकड़ी (ओ०), कक्कड़ी (पं०), काँकड़ी (मरा०) काकड़ी (गु०), काकिरा (सिंह०), ख्यारजाब (फा०), क़िस्सा क़दस (अ०), कूकंबर (अं०)]



ककड़ी

ककना—(सं०) फसल को हानि पहुँचानेवाली एक घास (पट०-४, गया, द०-पू०)। पर्या०—बनसारी (शाहा०, पू० मुं०) [मिला०—कङ्कण (?) (संस्कृ०), कंगुनी। मिला०-काँको (ने०)]

ककीर—(सं०) प्रचलित श्रेणी का एक अच्छा पान, जिसके पत्ते लंबे और कोमल होते हैं (उ०-पू० मुं०)। दे०—कनवा। पर्या०—ककेर (द० पू० मुं०)। [मिला०—ककड़ी = ककड़ी की तरह लम्बा होने के कारण संभावित नाम]

ककुड़ी—(सं०) तम्बाकू के पत्ते का एक रोग, जिसमें हरा पत्ता सिकुड़ जाया करता है (दर०-१, चंपा०, मग०-५)। टि०—कद्दू और मिरचे के पत्तों में भी यह रोग कभी-कभी हो जाता है। [∠ *कर्कट = एक प्रकार का रोग। कक्कड़ (हि०), कर्कर (संस्कृ०) = सूखी या सेंकी हुई सुरती का मुरमुरा चूर, जिसमें पीनेवाला तम्बाकू मिला रहता है (हि० श० सा०)]

ककेर (सं०)—एक प्रकार का अच्छा पान, जिसके पत्ते लंबे और कोमल होते हैं (द०-पू० मुं०, मुं०-२)। दे०—ककीर।

कगिया—(सं०) वह बैल, जिसका रंग काग की तरह काला हो (पट०-१, मग०-५)। पर्या०—करिया (मुं०-२)। [काग + इया (प्रा०) < काग < *काक]

कचकुट्टा—(सं०) ईख का अधपका रस (मुं०-१, चंपा०)। दे०—कचरस।

कचटाही—(सं०) वह मिट्टी, जो कुछ मुलायम तथा कुछ कड़ी हो (शाहा०-१)। [कचट + आही (देशी)]

कचनार—(सं०) एक प्रकार का प्रसिद्ध वृक्ष, जो मझोले आकार का होता है, कहीं-कहीं लता के जैसा भी होता है। इसकी पत्तियाँ गोल और सिरे पर कटी होती हैं। छाल भूरा और फूल लाल, पीले और सफेद होते हैं। फूलों और कलियों की तरकारी बनती है। फली चिपटी होती है (दर०-१, पट०-१–४, मग०-५, चपा०, शाहा०)। [काञ्चनार (संस्कृ०), कंचणार (प्रा०) कचनार (हि०), कांचन, कांचनार (बं०), कोरल,

कौंचनी (मरा०), जिग्य (संता०), कोचली, चम्पाकाटी (गु०), टकी (ने०), कोचाले, कंच-नाल (क०), देवकांचन, देवकांचनमु (ते०), सेंगपुसुंथरी (त०)]

कचमहुआ—(सं०) एक बीजू आम, जो कच्चा खाने में भी मीठा लगता है। [कच+महुआ< कच्छ+मधुक वा कच्चा+मधु (=मीठा)]

कचरस-(सं०)-(१) ऊख को पेरकर या चूसकर निकाला गया रस (शाहा०, चंपा०, पट०-४, मग०-५)। दे०—रस। [कच+रस+कच्चा रस]। (२) पानी मिला हुआ ऊख का रस (उ० प०)। पर्या०—पनुआँ (द०-प० शाहा०)। (३) ईख का अधपका रस (मुं०-१, चंपा०) पर्या०—कचकुट्टा। [कच+रस< कच्छ+ रस (?)]

कचरा-(सं०)-(१) बूट की अधपकी छीमी। पर्या०—ढसराइल कचरी (शाहा०); कचरी (अन्यत्र)। (२) फसल के बोझों को बाँधने के लिए पटुए की ऐंठी हुई रस्सी (गं० उ०, पू०)। [कच+रा (प्र०) <कच<कच्चा]

कचरी-(सं०)-(१) कच्चे-हरे चने के पौधे (शाहा०, चंपा०-१, पट०-४, मग०-५)। (२) कच्चे-हरे चने के छुड़ाये हुए दाने (शाहा०, चंपा०-१)। (२) आल नामक रंग के पौधे की मोटी जड़ (शाहा०, द० मुं०)। दे०—आल। (४) दे०—कचरा। [कच+री (प्र०)<कच, <कच्चा] (५) भोजन के लिए काटा हुआ कच्चा अनाज (सामा० पू०)। (६) एक प्रकार का गुरम्ही नामक फल, जो बरसात में मकई के खेत में होता है और जिसके पौधे लत्तर की तरह फैले हुए होते हैं। (७) चने या खेसारी की दाल को पानी में फुलाकर, फिर सिल पर पीस-कर और तेल या घी में तलकर बनाई हुई बड़ी। कभी-कभी यह केवल प्याज या अन्य चीजों को बेसन में मिलाकर तथा तल कर बनाई जाती है। (पट०-४, मग०-५, चंपा०, रांची)। [कच+री (प्र०) <कच, <कच्चा]

कचल—(क्रि०) कुदाली से थोड़ी-थोड़ी दूरी पर छेव देकर जमीन को कोड़ना (दर०-१) [कच+ल(प्र०)<कच, <*कर्त <√कृती (छेदने)]

कचाठी—(सं०) धान का वह पौधा जिसकी बाल पुष्ट न हो पाती और जिसे हरा रहते ही काट-कर पशुओं को खिला दिया जाता है (मुं०-१) पर्या०—गुआर (चंपा०, पट०-४), मरहीना (मग०)। [कच+आठी< *अस्थि (?)]

कचिया—(सं०)—फसल काटने की दाँतदार हँसिया (द०-पू० बिहा० मुं०-१, दर०-१)। दे०—दँतुला। [मिला०-कच्, कच्छ। *कौक्षेयक (संस्कृ०) >कउच्छेअय (प्रा०) >कचिया, कर्त्तरी* (संस्कृ०) >कट्टारी, कत्तारी (प्रा०)]



कचिया

कचुआ—(सं०) पान की लता के ऊपर की घनी झाड़ी (द० मुं०)। दे०—खरई। [कञ्चुक= झाड़ी, आवरण, वृक्ष-विशेष (मो० वि०डि०)]

कचेलिया—(सं०) वह बैल, जिसकी पूंछ लंबी तथा लिंग के संधिस्थल से गुदा-स्थान तक मांस लटका हो तथा वह नील वर्ण का हो (पट०-१)। [कचेल=इया (प्र०)-(संभवतः ' <कच]

कचोहा—(सं०) तम्बाकू का एक रोग (द० भाग०)। [मिला०—कच्छू]

कच्चा-(सं०)-(१) भोजन के लिए काटा हुआ कच्चा अनाज (गं० उ०)। दे०—गदरा। (२) ईंट-पत्थर के बिना ही बनाया हुआ कुआँ। पर्या०—कूआँ ,कुइयाँ। (वि०)—कोई वस्तु, जो पकी नहीं हो। [<*कृत्य (संस्कृ०) किच्च (प्रा०)—(= जिसके निर्माण का कार्य शेष हो), कुत्सित (<कुत्सा)] टि० - कच्चा शब्द की व्युत्पत्ति अभी तक स्पष्ट नहीं हो सकी है, संस्कृत-वाङ्मय में इसके लिए 'आम', 'अपच्यमान', 'अपक्व' आदि शब्द व्यवहृत हैं। हि०श०सा० में 'कषण' (संस्कृ०) से 'कच्चा' की उत्पत्ति लिखी है और 'मराठी व्युत्पत्ति कोष' में 'कच' (ध्वनि-शब्द) से। कुछ शब्द नीचे लिखे जाते हैं, जिनसे व्युत्पत्ति की संभावना हो सकती है। [कुत्सा, कत्, (>कदन्न), कुपच्, कापच्, कृतान्न (अकृतान्न), कच्छ (=जलप्राय प्रदेश की वस्तु), कृत्य (संस्कृ०), किच्च (प्रा०), कृत्त

(=कटा हुआ), कच्य (विकसित होनेवाला) <*कच् (विकसने)]

कच्चाबिगहा—(सं०) जमीन की एक नाप, जो किसी स्थान-विशेष में तो प्रचलित हो, पर दूसरे स्थानों में उससे भिन्न हो। भिन्न-भिन्न स्थानों में 'बिगहे' की नाप में अन्तर पाया जाता है। 'बिगहा' की असंतुलित माप। पक्का बिगहा ३०२५ वर्गगज या २० कट्ठे का होता है। [कच्चा+बिगहा< *विग्रह (?)]

कच्चाबीघा—(सं०) दे०—कच्चा बिगहा।

कच्चू—(सं०)अरुई की जाति का लंबा-मोटा कन्द, जिसकी तरकारी बनती है (मग०-५, पट०-४)। दे०—अरुई। पर्या०—अरुआ (चंपा०), कनचू (दर०-१)। [मिला०—कचु, कच्ची=एक प्रकार का खाद्य कन्द (मो० वि० डि०)]

कच्छड़—(सं०)-(चंपा०)—दे०—कछाड़-२।

कछाड़—(सं०)-(१) नदी या पोखर का किनारा, कछार। दे०—करारा। (२) इस प्रकार पहनी हुई धोती या लुंगी, जिसके नीचे लटके हुए छोर को ऊपर खोंसकर कमर में कसकर बाँध लिया गया हो। (चंपा०, मग०-५, पट०-४)। पर्या०—कच्छड़ (चंपा०)। [कच्छ* >कछा+ड़, काछ]

कछाड़ा—(सं०)-(पट०-४)। दे०—करारा। [कच्छ* >कछा+ड़ा]

कछार—(सं०) दे०—कछाड़।

कछुआ-डाबर—(सं०) वह अत्यंत उपजाऊ खेत, जो कछुए की उलटी हुई खोपड़ी की तरह गहरा होता है और जिसमें आसपास के चारों ओर से पानी और सड़ी-गली खाद आदि आकर गिरती है। (दर०, मुज०) [कछुआ+डाबर]

कछुआ ढाव—(सं०) नदी का वह बहाव, जिसमें जल-प्रवाह के कारण रेतीली जमीन की ऊँचाई और नीचाई में फेर-बदल होते रहने से कहीं थोड़ा और कहीं अधिक जल रहा करता है (मग०-५, मुं०-१, पट०-४)। [कछुआ+ढाव, कछुआ<कच्छपक, ढाव< √ध्वल (गतौ), (म० व्यु०), अवधार]

कछुआ-सीम—(सं०) एक प्रकार की सेम, जो तरकारी के काम में आती है (दर०-१)। पर्या०—कचछुआ सेम (चंपा०), गैचिया सेम (पट०-४)। [कच्छु+शिम्बि (?)]

कछुइया—(सं०) कुआँ खोदने में मिलनेवाली ढीली मिट्टी (पट०, पट०-४, गया)। [*कच्छ]

कजई—(सं०) खाने से रोकने के लिए बैल के मुंह पर बाँधी जानेवाली रस्सी की बनी हुई जाली। (द०-पू० मुं०)। पर्या०—कजुई, मुँहबन्द (मग०-५), जाबा (पट०-४), जाब (चंपा०)। [देशी]

कजरगोट—(सं०) एक प्रकार का काला धान (दर०-१)। पर्या०—कजरगौट, कजरघौर, कजरघोद (द० भाग०)। [कजरी (हि०), <*कज्जलगुत्स (?)]

कजरगौट—(सं०)-(दर०-१)। दे०—कजरगोट।

कजरघरो—(सं०) छींटकर (बावग करके) बोया जानेवाला एक प्रकार का धान, जिसकी बाल काले रंग की होती है। (द० भाग०)। [कज्जलगुत्स (?)]

कजरघौर—(सं०) महीन तथा सुगंधित धान का एक भेद, जिसकी बाल काले रंग की होती है (मुं०-१)। पर्या०—कारीबाँक (पट०-४)। [कजरी (हि०), कज्जल गुत्स (?)]

कजरा—(सं०)—(१) बड़ा और बलिष्ठ वह बैल, जिसकी आँखों के चारों ओर का स्थान नीला हो। (पट०-१, पट०-४)। कहा०—'बैल लीजै कजरा, दाम दीजै अगरा।'—(घाघ) =कजरा बैल लेने के लिए अग्रिम मूल्य देना चाहिए। [कजर+आ (प्र०) <काजर <काजल<कज्जल] (२) धान, गेहूँ और जौ के पौधों में लगनेवाला एक प्रकार का कीड़ा, जो पौधों को करीब छह इंच के होने पर चाट जाता है (प० मुं०, पट०, गया)। दे०—कजरी। [कज्जल, मिला०—कञ्जुल=एक प्रकार का पक्षी, कञ्जार=मयूर (मो० वि० डि०)]

कजरी—(सं०) रोपा जानेवाला एक प्रकार का धान (द० मुं०, दर०-१)। [कज्जल] (२) एक पशु-खाद्य घास (शाहा०)। दे०—कजला। [कज्जल, मिला०—कच्चक=एक प्रकार की छत्राक (कुकुरमुत्ता)-जाति की घास (मो० वि० डि०)] (३) धान, गेहूँ और जौ के पौधों में

लगनेवाला एक प्रकार का कीड़ा, जो पौधों को करीब छह इंच के होने पर चाट जाता है। पर्या०—कजरा (प० मुं०, पट०, गया, पट०-४), कजला (उ०-पू०-मुं०), मजरी (पू०मुं०) [कज्जल, मिला०—कज्जल = एक प्रकार का पक्षी, कज्जार = मयूर (मो० वि० वि०)] (४) छींट कर (बावग करके) बोया जानेवाला एक प्रकार का धान (द०-मुं०)। [कज्जल] (५) बरसात में गाया जाने-वाला एक प्रकार का मौसमी गीत, कजली।

कजला—(सं०)-(१) (उ०-पू० मुं०)। दे०—कजरी। (२) एक पशु-खाद्य घास (चंपा०, उ०-पू०मुं०)। पर्या०—कजरी (शाहा०)। [∠ *कज्जल]

कटुँई आलू—(सं०) वह आलू, जो काटकर रोपा जाता है (पट०-१, पट०-४)। [कटुंई + आलू, < काटल = (काटना)]

कटइला—(सं०) एक काँटेदार पौधा, जिसके बीज से तेल निकलता है (पट०-१, पट-४)। [कटैल < *कंटकिल < कंटक]

कटकसार—(सं०) मोटे धान का एक किस्म (मुं०-१)। [कटकशालि]

कटनियाँ—(सं०)-(प०)। दे०—कटनिहार।

कटनिया—(सं०) ऊख की खड़ी फसल को काटनेवाला मजदूर (द० भाग०, मग०-५)। दे०—अँगेड़ीहा। [कटन + इया (वि०-प्र०) < कटन < कर्तन < कृती (छेदने)]

कटनिहार—(सं०) फसल काटनेवाला (गं० उ०, पट०, गया तथा अन्यत्र भी)। पर्या०—दिनिहार (पट०, गया, द०-मुं०), लेवनिहार, कटनियाँ (प०), जन, बनिहार (सामा०)। [कटनि + हार (वि०-प्र०), < कर्तन < √कृती (छेदने)]

कटनी—(सं०)-(१) धान आदि फसल की कटाई (पट०-४, चंपा-१, मुं०-१)। (२) फसल की कटाई का समय। पर्या०—कटिया (उ०-प०), लौनी (द०-प० शाहा०)। [कटनी < कर्तन < √कृती (छेदने)]

कटनीकरल (मुहा०)—(१) धान आदि की कटनी करना। (२) तम्बाकू का पत्ता काटना। दे०—ऊपर पत्ता तूरल। [कटनी + करल < कर्तन < √कृती (छेदने)]

कटहर—(सं०)-(१) एक प्रसिद्ध फल, कटहल। (२) कटहल का पेड़। पर्या०—कटहल। टि०—कटहल का पेड़ घना होता है। यह बिहार में सर्वत्र पाया जाता है तथा भारतवर्ष के दूसरे भागों में भी मिलता है। इसकी पत्तियाँ तीन-चार अंगुल लंबी, कड़ी, मोटी और श्यामलता लिये हुए हरे रंग की, अंडाकार होती हैं। इसका फल एक-डेढ़ हाथ लंबा और प्रायः इतना ही मोटा होता है। ऊपर का छिलका काफी मोटा होता है



कटहर

तथा ऊपर बहुत-से नुकीले कँगूरे होते हैं। फल के भीतर मोटे-मोटे रेशों की कथरियों के बीच में गूदेदार कोए होते हैं। कोए पकने पर मीठे होते हैं। कोओं के भीतर पतली झिल्लियों से लिपटे हुए बीज होते हैं। इसका फल माघ-फागुन में लगता है तथा जेठ-आषाढ़ में पकता है। कच्चे फल की तरकारी और अचार होते हैं। कटहल नीचे से ऊपर तक फलता है। जड़ और तने में भी फल लगते हैं। इसकी छाल से लसीला दूध निकलता है। पेड़ की लकड़ी नाव तथा चौखट बनाने के काम में आती है। इसकी छाल के उबालने से पीला रंग निकलता है, जिससे बरमा के साधु अपना वस्त्र रँगते हैं। [< *कंटकि फल, पनस (संस्कृ०) फणस (प्रा०), कटहर, कटहल, (हि०, पं०), कटहर (ने०), काँटाल, काँठाल, (बँ०), फणस (मरा०), फनस (गु०)]

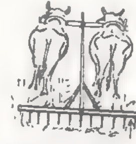
कटहरी—(सं०)—(१) एक प्रकार का केला (दर०-१)। (२) छोटा कटहल (शाहा०-१, पट०-४)। [कटहर + ई (= कटहल के समान)]— [कटहर + ई (प्र०) < कट + हल ∠ *कंटकि + फल]

कटहल—(सं०) दे०—कटहर।

कटहवा—(सं०)-(मग०)। दे०—ऊख नम्मर ४५३। [देशी]

कटही हर—(सं०)-(चंपा०)-दे०—कटही हल।

कटहीहल—(सं०) एक प्रकार का हल, जिसमें लंबी कीलें लगी रहती हैं और जिससे निकौनी की जाती है (दर०-१)। पर्या०—कटही हर—(चंपा०), बिदह (दर०-१) [कटही + हल, कटही < काटल (बिहा०), काटना (हि०) < √कृती (छेदने) वा कटही < कंटक (= कील)]



कटही हल

कटारी—(सं०) एक थैला, जिसमें बैल पर अन्न ढोनेवाला व्यापारी अपना सामान रखता है (द० भाग०)। पर्या०—हँड़वाय (द० मुं०), खास (सा०, चंपा०)। [संभ०—कर्तरी (?)]

कटिया—(सं०)-(१) (उ०-पू०)। दे०—काटल, कटनी। (२)-(चंपा०)। दे०—कँटिया। [कृत्ति ∠ √कृती (छेदने)]

कटुआ—(सं०)-(१) अनाज के ऊपर का छिलका (पट०, गया, मग०-५, पट०-४)। दे०—भूसा। (२) मँड़ुए के दानों को निकाल लेने पर बची हुई ऊपर की भूसी (उ०-पू० मुं०)। दे०—ढोंटी। (३) चारे के लिए व्यवहृत होनेवाला अरहर या किसी अन्य दलहन का छिलका अथवा भूसा (पट०)। दे०—भूसा। [< *कट्टुक, √कुट्ट (कूटना, छिलका-रहित करना), छिलका-रहित किया हुआ कुट्टक, कडंकर, कडंगर]

कटुइ—(सं०)-(१) डंठल के बिना ही केवल बाल की कटाई (द०-प० शाहा०)। दे०—बलकट। (२) गेहूँ के आटे में गुड़ मिलाकर तथा घी में तलकर बनाया हुआ एक प्रकार का पकवान (मग०-५)। (३) एक प्रकार का आलू, जो काट कर खेतों में रोपा जाता है (मग०-५, अन्यत्र भी)। (४) वह दही, जिसके ऊपर का मलाईवाला अंश काट (निकाल) लिया गया हो (चंपा०)। [< *कृत्ति < √कृती (छेदने), 'कृत्तिः कृन्ततेर्यशो वाऽन्नंवा, इयमपीतरा कृत्तिरेतस्मादेव, सूत्रमयी, उपमार्थेवा'—निरु०]

कटुई—(सं०)-(१) जल में रहनेवाला एक प्रकार का झींगुर, जो धान के पौधों को काटता है। (२) गेहूँ, जौ आदि के पौधों को काटनेवाला कीड़ा (शाहा०-१)। [कटु + ई < कटु < काटल (बिहा०), काटना (हि०) < √कृत्, कीट]

कटुओ—(सं०) चारे के लिए व्यवहृत होनेवाला अरहर या किसी अन्य दलहन का भूसा (द०-पू०)। दे०—भूसा। [मिला०—कट्टुक, कुट्ट, कुट्टक, कडंकर]

कटैया—(सं०)-(१) एक प्रकार का कीड़ा (कोआ), जो धान में लगने पर उसकी बाल को पीला बनाकर नष्ट कर देता है (द०-प० शाहा०)। पर्या०—कटोई, कटोइया (गं० द०), हरदा (पट०-४)। [∠ *कण्टकिन्] (२) एक प्रकार का कटीला पौधा (दर०-१)। [∠ *कण्टकारिन्]

कटोइया—(सं०)—(गं० द०)। दे०—कटैया। [∠ *कीट, ∠ *कंटकिन्]

कटोई—(सं०)—(गं० द०)। दे०—कटैया। [∠ *कीट, ∠ *कंटकिन्]

कटौनी—(सं०) फसल काटने की मजदूरी (मुं०-१, पट०-४)। [कटौन + ई, < कटावल (बिहा०) < √कृती ('छेदने'), कर्त्तन]।

कट्टा—(सं०) पशुओं के खाने के लिए गँड़ासे या मशीन से काटे हुए घास, पुआल, लत्तर आदि के छोटे-छोटे बारीक टुकड़े (पट०)। पर्या० कुट्टी (द०भाग०), बिचाली (मग०-५, पट०) लेद्दी। (चंपा०)। दे०—कुट्टी। [< *कर्तित < √कृती ('छेदने'), (प्रे०) कट्टिअ (प्रा०), < *कृत्त (संस्कृ०), कट्ट (प्रा०)]

कट्ठा—(सं०) बीस धुर जमीन की एक नाप, बिस्वा (शाहा० पट०-४)। [∠ *काष्ठा]

कठंजा—(सं०) कई तरह के मिले हुए अनाज। (२) कच्चा अन्न (मुं०-१)। [अस्पष्ट, संभ० < कतिपयान्नजाति, मिला०—सतंजा (चंपा०, पट०-४) < सप्तान्नजात]।

कठकरंज—(सं०) एक काँटेदार झाड़ी, जिसके फल का गूदा दवा के काम में आता है (मुं०-१)। पर्या०—कठकरेजी (मग०-५, पट०-४)। [< *कटुकरंज, < *कंटकरंज]

कठकरेजा—(सं०) दे०—कठकरंज।

कठकरेजी—(सं०) दे०—कठकरंज।

कठकूआँ—(सं०) लकड़ी के बने गोल ढाँचे (कोठी) से सुरक्षित कुआँ। [कठ + कूआँ < काष्ठकूप]

कठखुरपी—(सं०)–(१) काठ की बनी हुई चम्मच-जैसी चीज जिससे कड़ाह से रस निकाला जाता है।(२) दे०–कठही। (३) कड़ाह की पेंदी में चीनी बैठने से बचाने के लिए उसे खुरचनेवाला औजार (उ०-पू० मं०)। दे०–खुरपी। [कठ+खुरपी<काष्ठ क्षुरप्र (?)]

कठजामुन—(सं०) एक प्रकार का जामुन। यह छोटा होता है तथा इसका बीज बड़ा-बड़ा होता है (शाहा०-१, चंपा०, पट०-४)। [कठ+जामुन <काष्ठ+जम्बू (?)]

कठडुम्मर—(सं०) एक प्रकार का जंगली वृक्ष। इसके फल की तरकारी होती है (पट०-१)। [कठ+डुम्मर<काष्ठ (वा कटु)+उदुम्बर]

कठनही—(सं०)–(१) कुएँ से पानी निकालने का काठ का बना हुआ एक प्रकार का पात्र (गया)। (२) काठ का बना हुआ तश्तरी की तरह का बरतन, जिसमें चटनी आदि जैसी चीजें रक्खी जाती हैं (मग०-५)। [कठ+नही (संभ०) <काष्ठ+नध्री, यथा पनही <पन्नध्री]

कठपिरी—(सं०) एक प्रकार का फूल(दर०-१)। [मिला०—कटभी, "कटभी स्वादुपुष्पश्च मधुरेणुः कटंभर"—(भा० प्र०)]

कठफनेल—(सं०) छोटा-छोटा जामुन। यह बरसात में फलता है और इसका बीज बड़ा-बड़ा होता है (पट०-१)। [कठ+फनेल <काष्ठ (वा कटु)+फनेला (देशी)]

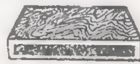
कठबंधन—(सं०) लकड़ी का खंभा, जिसमें हाथी बाँधा जाता है।[कठ+बंधन< *काष्ठ बंधन]

कठबाँस—(सं०) पतला और ठोस बाँस (शाहा०-१)। [कठ+बाँस<काष्ठ+वंश]

कठबाँसी–(सं०)एक प्रकार का बाँस, जिसकी गाँठें घनी होती हैं और बाँस छोटा एवं पतला होता है(चंपा०-१)। [कठ+बाँसी<काष्ठ+वंश (?)]

कठरंजनी–(सं०)–(गुंजा मुं०-१)। [कंटकरंज]

कठरा—(सं०)–(१) लकड़ी का बना हुआ एक प्रकार का नाद। यह मवेशियों को दाना खिलाने के काम में आता है। (२) लकड़ी का बना


कठरा

गोल बरतन, जिसमें आटा गूँधा जाता है, अथवा घर का दूसरा काम होता है। (३) स्लेट, चित्र आदि में लगा चौखट तथा ढोलक, डंफ आदि का बिना मढ़ा हुआ लकड़ी का बना ढाँचा (पट०-४)। (४) अनाज रखने के लिए काठ का बरतन (पट०, गया०)। पर्या०—कठौती (गं० द०)। [कठ+रा (प्र०) अथवा ∠काष्ठामत्र, ∠काष्टपात्र]


कठौती

कठरेंगनी—(सं०) खाली जमीन पर फैलनेवाली गोखुर की जाति की एक काँटेदार घास, जिसके पत्तों और डाँटों में काँटे होते हैं। इसके फूल बैंगनी तथा फल पीले रंग के होते हैं (पू०, मुं०-१, मग०-५)। दे०—रेंगनी। [कंटकारिन्]

कठला—(सं०) दे०—कठरा। [कठ+ला (प्र०); मिला०—काष्ठामत्र, काष्ठपात्र]

कठली—(सं०) कुएँ से पानी निकालने के लिए काठ का बना हुआ एक प्रकार का पात्र (मुं०-१)। दे०–कठनही। [कठ + ली (प्र०); मिला०—काष्ठामत्र , काष्ठपात्र]

कठवत—(सं०)–(१) कुआँ खोदने के समय मिट्टी को भीतर से बाहर निकालने का पात्र (कठौती) (द०-पू० मं०, शाहा०, मग०-५)। दे०—चलना।(२) चीनी के रस को ठंडा करनेवाला लकड़ी का कड़ाह (सा०)। दे०—कठौत। (३) काठ का बना हुआ गोलाकार बड़ा पात्र। [कठ+वत ∠काष्ठामत्र, काष्ठपात्र]

कठही—(सं०) कड़ाह से रस निकालनेवाली चम्मच-जैसी वस्तु। दे०–कठखुरपी। पर्या०–सैक या सैका (पू०, शाहा०), सफई या सफैया (गं०-द०), डोहरा (द०-प० शाहा०), डपटी वा डब्बू (द० भाग०)। [कठ + ही (वि० प्र०), मिला०—कडच्छक=एक प्रकार की कलछी (मो० वि० डि०)]

कठा—(सं०)–(१) कृषि के औजारों की मरम्मत आदि करने के बदले में बढ़ई-लोहार आदि को मिलनेवाली मजदूरी (सा०)। पर्या०—जौरा (चंपा०), पाल (मं०), कमाई (शाहा०, पू० मं०), भाँवर (द०-पू० मं०), कमैनी (द० मुं०)। (२) कट्ठा। जमीन नापने की पाँच हाथ की लग्गी।[संभ०-< *काष्ठा वा *कृष्टि]

कठाघर—(सं०) खेतों को नापनेवाला ग्रामीण। [कठा+घर< *काष्ठाघर]

कठार—(सं०) एक प्रकार का कंद, जिसकी तरकारी बनती है (द०-प०)। दे०—लतार। [मिला०—काष्ठालुक]

कठुली—(सं०) कुआँ खोदने के समय भीतर से मिट्टी को बाहर निकालने का पात्र (छोटी कठौती)। दे०—चलना। [कठ+ठल+ई (प्र०) < *काष्ठ]

कठेस—(वि०) वह फल, जो ठीक से पका न हो और कड़ा हो (चंपा०-१)। [मिला०—कठर, कठिन]

कठौआ—(सं०) लकड़ी का फावड़े-जैसे फलक वाला औजार, जो खेत में पानी पटाने के काम में आता है (द० मुं०)। दे०—हथा। [कठ+औआ। मिला०–काष्ठामत्र, काष्ठ कुद्दाल]

कठौत—(सं०)–(पू०)। दे०—कठवत, कठौता। [काष्ठामत्र, काष्ठपात्र]

कठौता—(सं०) लकड़ी का कड़ाह, जो रस ठंडा करने के काम में आता है। पर्या०—कठौती, कठौत (पू०), कठवत (सा०), नाद या ओसौनी (सा०, चंपा०)। [काष्ठामत्र]

कठौती—(सं०)–(१) चीनी के रस को ठंडा करने के काम में आनेवाला काठ का कड़ाह (पू०)। दे०—कठौता। (२) अन्न रखने का काठ का बरतन (गं० द०)। दे०—कठरा। [कठ+औत+ई, < काष्ठामत्र]

कड़ड़ा—(सं०)—(गं० उ०)। दे० कँड़ड़ा।

कड़रू—(सं०) भैंस का बच्चा (सं० प०)। पर्या०—पड़रू (चंपा०)।

कड़वार—(सं०)—(१) खड़, बड़ी-बड़ी घास, जो घर छाने के काम में आती है। काश की जाति की एक घास। (२) धान के बोझों की राशि (चंपा०-१)। [<कट, कड (= तृण, पुआल आदि) + वार (=समूह), मिला०–कतम्ब=शाक का डंठल। कडप, कडवा। (मरा०), कडप (गु०)]

कड़ाँव—(सं०)—(चंपा०)। दे०—कड़ाम।

कड़ा—(सं०) मोट की गर्दन के चारों ओर लगी हुई लोहे की कड़ी (सा०, मग०-५)। दे०—मेंड़ड़ा। [*कटक (संस्कृ०) > *कड़अ (प्रा०) >कड़ा]

कड़ाम—(सं०) दौनी में बैलों को सिलसिलेवार बाँधने की लंबी डोरी (मुं०-१)। पर्या०—कड़ाँव (चंपा०)। [मिला०—कलम्बिक= गर्दन के पीछे का भाग, कण्ठमाल]

कड़ाह—(सं०) (१) ऊख के रस को उबालने के लिए लोहे का बड़ा गोल बरतन। (२) लोहे की बनी बड़ी गोल और गहरी कड़ाही (बिहा०, आज०)। दे०—कराह [< *कटाह]


कड़ाह (१)


कड़ाह (२)

कड़ाही—(सं०)—(१) मोट की गर्दन के चारों ओर लगी हुई लोहे की कड़ी। दे०—मेंड़ड़ा। (२) लोहे का छोटा गोल बरतन, जिसमें तरकारी आदि पकाई जाती है। [कड़ाह +ई< *कटाह]।

कड़ी—(सं०) (१) हेंगा का लंबा चौरस काष्ठ-फलक (गया)। दे०—पल्ला। [< *कटक] (२) मोट में लगी हुई टेढ़ी लकड़ियों (घोरानी) के दोनों छोरों को बाँधने के लिए लगी हुई लोहे की कड़ी। पर्या०—बाला। [कड़ा+ई <कटक (संस्कृ०) >कड़अ (प्रा०) >कड़ा]

कढ़ौर—(सं०) अन्न के बीज पर दिया जानेवाला सूद। दे०—आधी। [कढ़ + और< * कर्ष (संस्कृ०) >कड्ढ (प्रा०)]

कतकी—(सं०) वह धान, जो कात्तिक महीने में होता है (पट०-१)। पर्या०—कतिका (चंपा)। [कतक+ई< कातिक< *कार्त्तिकीय]

कतकी ऊख—(सं०) वह ऊख जो कातिक मास में रोपा जाता है (रो०)। [कतकी+ऊख, कतकी<*कार्त्तिकीय, ऊख< *इक्षु]

कतरपार—(सं०) ऊख की खड़ी फसल को काटने वाला (पट०, गया)। दे०—अँगड़ोहा। (कतर +पार<कतारा + पार < *कान्तार+पार।

पार=अन्त । पारयति (=समाप्त करता है), पाट (=उत-पाट)]

कतरपारा (सं०)-(द० मुं०)। दे०—अँगेड़ीहा, कतरपार ।

कतरवहा—(सं०) दे०—कतरवाह ।

कतरवाह—(सं०)ऊख के कोल्हू के बैल को हाँकनेवाला । पर्या०—कतरिवाह, कतरवाहा, कतरवहा (द० भाग०), हँकवा (द०-प० शाहा० मं०), हँकवाहा (पट०-४), हँकवाह (मं०-२) । [कतर+वाह । कतरी=कोल्हू में लगा एक पटरा जिसपर बैठकर बैल को हाँका जाता है ।<कतरी<*कर्तरी(=चक्र—हि० श० सा०)+वाह अथवा कर्त (=गर्त)+री]

करतवाहा—(सं०) दे०—कतरवाह ।

कतरा—(सं०)-(१) एक पशु-खाद्य घास(सा०, मं०, दर०-१, मं०-२) । पर्या०—मारमूर (पट०-४) । [मिला०-कत्तृण (=एक सुगंधित घास, रोहिस। कर्तरीय=एक प्रकार का विषैला पौधा (मो० वि० डि०)] (२) पके हुए धान के बँधे हुए पुल्ले से बाल काट लेने के बाद का बचा हुआ डंठल (मुं०-१, मं०-२)। [<*कर्त्य=काटने योग्य,<*कृत्त,<*कर्तित <√कृती 'छेदने']

कतरिवाह-(सं०)दे०—कतरवाह । [कतरि+वाह< कान्तारक+वाह, कतरी=कोल्हू में लगा एक पटरा, जिस पर बैठकर बैल को हाँका जाता है; कतरि+वाह<*कर्तरी(=चक्र-हि०श०सा०) +वाह अथवा कर्त (=गर्त)+री >कर्तरी]

कतरी—(सं०)-(१) ऊख के कोल्हू का वह तख्ता, जिससे बैल जुड़ा रहता है । पर्या०—कातरी या कातर (शाहा०, द०, पू०, मं०, द० भाग०)। (२) कोल्हू से लगा हुआ वह चौड़ा तख्ता, जो बैल के पीछे रहता है और जिसपर तेली बैठकर बैलों को हाँकता है । (३) दे०—कातरी । [<*कर्तरी=(चक्र—हि० श० सा०) <*कृत्ति<√कृती "छेदने" अथवा कर्त=गर्त+री (वि० प्र०) । (४) धान के पौधे का एक रोग (द०-प० शाहा०, मं०-२) । मिला०—कर्तरीय =एक प्रकार की विषैली घास (मो० वि० डि०)] । (५) फलों के कटे हुए छोटे-छोटे टुकड़े (चंपा०-१, मं०-२, भाग०-१) [*कृत्त]

कतिका—(सं०)-(१) वह उड़द, जो कार्त्तिक में फलती है (गं०उ०, मं०-२, पट०-४) दे०—तेपखी । (२) कार्त्तिक में होनेवाला महीन दाने का एक सफेद धान । इसका चावल सफेद होता है (सा०-१, चंपा०-१, मं०-२, पट०-४) । [कतिक + आ <कातिक <*कार्त्तिक <*कृत्तिका <√कृती‌कृती ('छेदने')+अण्] (३)एक प्रकार का धान, जो छींटकर (बावग) बोया जाता है और कार्त्तिक में काटा जाता है (गया, मं०-२, चंपा०, पट०-४) ।

कतिकी—(सं०)-(१) कार्त्तिक में बोई जानेवाली नील (द०भाग०)। (२) कार्त्तिक में होनेवाली फसल । मिला०—फाल्गुनी—फाल्गुन में बोई जानेवाली नील । [कातिक + ई <कातिक <*कार्त्तिका <*कृत्तिका (नक्षत्र <√कृती- 'छेदने')+अण्]

कत्ता—(सं०) डोम-जाति द्वारा बाँस काटने तथा बाँस की चीजें बनाने के काम में आनेवाला लोहे का बना एक हथियार-विशेष (प्रायः सर्वत्र) । [<कर्त्तृ < कृत्+त्रल्, कर्तरी]


कत्ता

कथ—(सं०) खैर के पेड़ से निकालकर बनाया गया मसाला, जो पान में खाया जाता है । पर्या०—खैर (मं० २, पट० ४, चंपा० तथा अन्यत्र)। [<*क्वाथ (हि० श० सा०), <कत्थोत्थ <*खदिरोत्थ <कदर, खदिर (=खैर)+उत्थ (=उत्पन्न) <उत्+√स्था]

कथई—(सं०) कत्थे जैसा रंग ।

कदई—(सं०)-(१) दे०—कादो । पर्या०—कदवा (मं०-२)। (२) बाढ़ हटने के बाद नदी द्वारा छोड़ी हुई गीली मिट्टी । पर्या०—कदोई, पाँक, पंक,पाँकि(मं०-२)।(३) मिट्टी का कच्चा गारा गिलावा, जिससे दीवाल तैयार करने में ईंटें जोड़ी जाती हैं (मग०-५) । [<कर्दम]

कदवा करल—(मुहा०) धान की रोपनी के लिए खेत को तैयार करना (दर०-१, मं०-२) ।

दे०—कादो करल । कदवा+करल ∠ *कर्दम (ई) + √कृ]

कदम—(सं०)—(१) एक प्रसिद्ध फल, जो गोल और केसरयुक्त होता है (दर०, पूर्णि०-१, मं०-२, पट०-४) [कदम्ब] (२) घोड़े की एक चाल । (३) चलने में दोनों पगों के बीच का अन्तर । [कदम (अ०)]

कदराह-(वि०)—(पट०-४, मग०-५) । दे०—काछल।

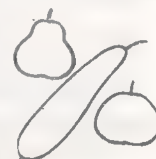
कदवा—(सं०) पानी भर जाने के बाद घास-पात के नाश के लिए धान के खेत की जुताई (उ०-पू०, मं०, चंपा०, मं०-२) । दे०—लेव । [< *कर्दमक]

कदीमा—(सं०)—(पू०-मं०, दर०-१, मं०-२) । दे०—कोंहड़ा । [(देशी), मिला०—कद्दू, कदू (फा०)]


कदीमा

कदीमी—(सं०) वह काश्तकार, जिसे अधिकृत भूमि प्राप्त है । (प्राचीन प्रयोग) । दे०—मौरूसी । [कदीम=पुराना (फा०)]

कदुआ—(सं०)लता में होनेवाला एक प्रकार का लंबा या गोल फल, जिसकी तरकारी होती है । पर्या०—कद्दू, कद्दू (द०-भाग०), लौका (गया, द०-मुं०, चंपा०, प०, पट०-४), लौआ (पट०-१), सजिवन (पू०-मं०), कदुआ, लौकी (पट०-१) । [कदुइया (देशी), कटु तुम्बी, अलाबुक (संस्कृ०) लाउ लाड़ (बं०), दुध्या, मोंपल (मरा०), दुधियुँ, दुधलु, आलड़ी (गु०), कदु उवलकाई, कडंड वलकायि (क०), तोंय, तुम्बड़ो काया (ते०), कद्दू, कदू (फा०)]


कदुआ

कदोई—(सं०)—(१) दे०—कदई, कादो । (२) कीचड़ । दे०—कादो । [< *कर्दम] (३) वह खेत, जिसका कीचड़ कभी नहीं सूखता और बिना जोते हुए ही जिसमें खेती की जाती है । दे०—चहल । [< *कर्दमिन्]

कद्दू—(सं०) —(द० भाग०) । दे०—कदुआ ।

कधोर—(वि०)कीचड़ मिला हुआ पानी (मुं०-१) पर्या०—किधोर (चंपा०, द० भाग०), किनोर (चंपा०), किदोड़, किदौड़ा (पट०-४), कदवइल (चंपा०) [कध+ओर <*कर्द (=कर्दम)+पूर वा<*कर्द+उदक]

कन—(सं०)—(१) बँटवारे के लिए खेत की फसल का मोटा-मोटी मूल्य-निर्धारण । पर्या०—कूत, कनकूत, कनकुत्ती । [संम०— *कण]

टि०—जब किसान के खेत में फसल तैयार हो जाती है तब काटने के समय जमींदार अपने अमीन और सालिस को खेत पर भेजता है । वहाँ किसान, पटवारी-गुमाश्ता के कठाधर से जमीन नपवाता है और सालिस खेत के चारों तरफ घूमकर फसल की देखरेख करके तथा अमीन और पटवारी से परामर्श करके खेत की फसल का आनुमानिक परिमाण निर्धारित करता है । यदि यह आनुमानिक परिमाण किसान को स्वीकृत होता है तो खेसरा-बही पर चढ़ा दिया जाता है । बात यहीं समाप्त हो जाती है । किंतु यदि यह अनुमान किसान को मंजूर नहीं होता है तब दूसरे किसान मध्यस्थता के लिए बुलाये जाते हैं और वे परिमाण निर्धारित करते हैं । यदि उनका निर्णय किसी एक दल को भी अमान्य होता है तो पुनः यह मामला जाँच-पड़ताल के लिए चला जाता है । इसमें खेत की अच्छी फसल के एक हिस्से को जमींदार की ओर से और उसके बराबर ही घटिया फसल को किसान की ओर से काटकर दौनी करके अनाज अलग-अलग तौला जाता है । फिर दोनों को मिलाकर उसका मूल्य-निर्धारण किया जाता है और खेसरा-बही पर चढ़ाया जाता है । उसके बाद शेष भाग को किसान काटकर तैयार करके अनाज घर पर ले जाने के लिए स्वतंत्र रहता है । किसान को जमींदार की ओर से फसल की कम उपज होने तथा काटने, दौनी करने और तैयार करने के बदले प्रतिमन दो सेर की छूट या छुट्टी दी जाती है । इसके बाद अनाज का परिमाण करके दोनों में अलग-अलग अंशों में बाँट दिया जाता है, किंतु अनाज किसान के घर रह जाता है और हिसाब लिख लिया जाता है । यदि किसान उस अनाज को

चालू वर्ष में जमींदार के पास जमा कर देता है तो हिसाब बेबाक होता है, नहीं तो उसके नाम से अगले साल के हिसाब में बाकी पड़ जाता है। (२) भादो में पान के पौधे की जड़ से निकलने वाला नया अंकुर। [<*कण, <*कन्दल (=नया अंकुर)] (३) भावली खेत की पैदावार का कूतना (चंपा०-१, मैं०-२)। (४) गाय या भैंस को पोसने के लिए देने पर उसके दूध-घी का बँटवारा करने के लिए किया जानेवाला मूल्यांकन (चंपा०-१)। (५) चावल छाँटने पर उससे निकली हुई धूल की तरह महीन भूसी (चंपा०-१, मैं०-२, पट०-४)। [<*कण]

कनइल—(सं०)-(शाहा०-१, चंपा०, दर०-१)। दे०—कनैल। [कन+इल<*कर्णकील]

कनई—(सं०)-(१) तंबाकू या किसी पौधे के ऊपर के भाग को काट लेने के बाद उसमें से निकला हुआ अंकुर या नई पत्ती (पू०) दे०—दोंजी। पर्या०—काँखी (२) दे०—कादो। (३) दे०—कनवई (मैं०-२, चंपा०)। [∠*काण्ड, ∠*कन्दली]

कनकचूर—(सं०) रोपा जानेवाला एक प्रकार का उत्कृष्ट धान (द० भाग०, अन्यत्र भी।) [<*कनकचूर्ण]

कनकजीर—(सं०) एक प्रकार का रोपा जानेवाला उत्कृष्ट महीन धान (पू० मैं०, मैं०, दर०, पूर्णि०-१, चंपा०, सा०-१) [कनक + जीर <*कनकजीरक]

कनकजीरा—(सं०) रोपा जानेवाला एक प्रकार का उत्कृष्ट धान (शाहा०, चंपा०-१)। [कनक+जीरा ∠*कनकजीरक]

कनकिल्ली—(सं०) पालो के दोनों छोरों पर बैलों के कंधे के बाद पालो में छेद करके लगाई हुई लकड़ी या बांस की कील (द० भाग०, पट०-४)। दे०—सैला। [कन + किल्ली <*कर्णकील]

कनकुत्ती—(सं०) बँटवारे के लिए फसल का मोटा-मोटी मूल्य-निर्धारण (मैं०-२, चंपा०)। दे०—कन। [कन+कुत्ती<*कण (संस्कृ०) +कुत्ती <कूतना (हिं० क्रि०)]

कनकुत्ती बटाई—(सं०) मूल्य-निर्धारण के द्वारा फसल का बँटवारा। पर्या०—दानाबन्दी, भौकट्ट (शाहा०, द०-पू०), दमाब, दमकट्टो (शाहा०, पट०, गया)। [कन+ कुत्ती+बटाइ∠*कण (संस्कृ०)+कुत्ती∠कूतना (हिं० क्रि०)+बटाई ∠वण्टन ∠√वण्ट]

कनकूत—(सं०) दे०—कन। [कन+कूत<कण (संस्कृ०) +कूत∠कूतना (हिं० क्रि०)]

कनखी—(सं०) ऊख की जड़ से निकलनेवाली शाखा, जिससे पौधे को हानि पहुँचती है (द०-प० शाहा०)। दे०—दोंज। [<कण, कणिक, ∠कण+अक्ष]

कनगोजर—(सं०)-(१) ऊख की आँख (पोर) से निकलनेवाला अंकुर (द०-पू० मैं०)। दे०—कनोजर। पर्या०—अँखुआ (मैं०-२)। [कन+ गोजर, कन+ओजर (∠गोजर)]। (२) एक पतले आकार का गोजर जो कई पैरोंवाला छोटा विषैला कीड़ा होता है। पर्या०—कनखजूरा। [कन + गोजर। मिला०—कर्ण खजूर]

कनबद्दा—(सं०) एक प्रकार का धान, जो छींट कर (बावग) बोया जाता है (गया, मैं०-२) [देशी]

कनभो—(सं०) बाँध की रक्षा के लिए फालतू पानी को बहाने के किनारे पर का नाला। [देशी, मिला०—कोणभंग। मिला०—कन्ध ∠कं (जल) + क + (धारण करनेवाला) =मेघ, कन्धरः∠कं+धरः=मेघः]।

कनरची—(सं०) खम्भे के ऊपरी भाग की दो भुजाएँ, जिनके सहारे ढेंकुल रहती है। [देशी]

कनरा—(सं०)-(पट-४)। दे०—कानर-३।

कनवई—(सं०) एक आने या छटांक का सोलहवाँ भाग। दे०—छदाम [<*कण (वती)]

कनवह—(सं०) पैन से निकलनेवाली छोटी संकीर्ण नाली (पट०, गया, पट०-४)। दे०—कनवा। पर्या०—कनवोहा (चंपा०) [∠*कण+वह, ∠*कोणवह, मिल०—कन्ध, कन्धर (=मेघ)]

कनवाँ—(सं०)-(१) एक आने का सोलहवाँ भाग (पट०-४)। दे०—छदाम। (२) पाँच तोले या एक सेर के सोलहवें भाग के बराबर की तौल, छटाँक। (वि०) पाँच तोले नाप की वस्तु (बिहा० री० हरि०)। [<कण+वत् (=धान)] (३) धान की फसल की वृद्धि को रोकनेवाली एक घास (गया)। पर्या०—काना (मैं०, पट०, पू०, चंपा०, मैं०-२), कन्ना (उ० पू० मैं०), केना (प० मैं०), ककना (पट०-४)। [काण]

कनवा—(सं०)-(उ० पू० मैं०) दे०—कनवह। [<*कणवह, + <*कोणवह]

कनवाहा—(सं०)—(चंपा०) दे०—कनवह।

कनसन—(सं०) फसल को पूर्णतः हानि पहुँचाने वाली एक घास (सा०)। पर्या०—कांसी (प० मैं०, पट० गया, द० पू०), कास (शाहा०, उ० वि०) [देशी]

कनसी—(सं०)-(१) ऊख का अंकुर (द० मुं०)। दे०—आँख। (२) भूमि पर उगा हुआ पहला अंकुर (द० मुं०)। दे०—डिब्भी। (३) पेड़ की टहनी से निकला हुआ नया पल्लव (पट०-४, मग०-५)। दे—कलस, कन्नी। [< *कणिश, <*कणाक्ष]।

कनसुप—(सं०)—मैं०-२)। दे०—कोलसुप।

कना—(सं०)-ऊख का एक रोग-विशेष, जिससे ऊख के अन्दर के रेशे लाल हो जाते हैं और उतनी दूर का रस और मिठास कम हो जाती है (मग०-५, पट०-४, मैं०, उ० वि०)। [कना>कान<*काण]

कनाइल—(वि०)—(१) कीड़ा लगा हुआ (चंपा०-१)। [कन+आइल (वि० प्र०) <*काण](२) कीड़ा लगा हुआ ऊख का पौधा (गं० उ०)। दे०—सीना। पर्या०—रताइल (पट०-४)। [कन+आइल (वि० प्र०) <*काण]

कनाई—(सं०) दे०—कना। [कना+ई (प्र०) <कान <*काण]। लोको०—'ऊख कनाई काहे से, स्वाती पानी पाये से'—घाघ(=स्वाती का पानी पाने से ऊख काना हो जाता है।)

कनाठ—(सं०) बाँस का वह टुकड़ा, जिसके दोनों किनारों पर आँटी के जोड़े बाँधकर एक जगह से दूसरी जगह ढोये जाते हैं (प०)। दे०—विहन-ढोआ। [देशी, मिला०—स्कन्ध = तरुस्कन्ध, शाखा]

कनाठा—(सं०) एक प्रकार का कीड़ा, जो दलहन, कपास और तम्बाकू के पौधों में लगता है (द० भाग०)। पर्या०—कन्ही (द० मुं०), छोरी (द०-प०), छेड़ी (उ०-प०, मैं०), छीरा (चंपा०)। [देशी, मिला० —स्कन्ध + स्थ]

कनाह—(सं०) कीड़े लगा ऊख का पौधा (मैं०, चंपा०, द०-प०-शाहा०, मैं०-२)। दे०—सीना। [कना+ह <*काणः]

कनाहा—(सं०)—(द० मुं०)। दे०—कनाह [<*काणः]।

कनिक-(सं०)गेहूँ या जौ का मोटा आटा (चंपा०, मैं०-२, भोज०)। दे०—आँटा। [<*कणिक, <*कण]

कनियाएल—(क्रि०) बोए हुए बीज के अंकुर से पहले-पहल पत्ता निकलना (पट०, गया)। (वि०) पहले-पहल निकले हुए पत्तोंवाला अंकुर। दे०—पतिआएल। [कनिआ+आएल (क्रि० प्र०) <*कण, <*कणिश]

कनियाल-(सं०) एक प्रकार का धान। [मिला०—कर्णिकार]

कनिल—(सं०) परती जमीन जोतने के दो वर्ष बाद का खेत (द० भाग०)। दे०—खील। [मिला०—कर्णि=टुकड़ा करने या काटने की प्रक्रिया (मो० वि० डि०)]

कनेटी—(सं०) कूँड़ को किल्ली से बाँधनेवाली रस्सी (उ०-प०)। पर्या०—कुँड़ियाठी (गं० उ०), चोरकिल्ली (चंपा०, उ०-प० मैं०)। [कन+एटी, कन <*कर्ण; एटी <ऐंठल (क्रि०) <*आवेष्टन]

कनेल—(सं०)—(१) बैलगाड़ी के जुए में लगी काठ, लोहे या पीतल की बनी किल्ली, जो बैल के कंधे को बहकने से रोकती है (मुं०-१)। [कन+एल ∠*कर्णकील, मिला०—कणेर] (२) एक प्रकार का फूल, जो लाल, पीला, सफेद और अन्य रंगों का भी होता है (दर०-१, पूर्णि-१)। [<*कर्णिकार, <*कणेर]। (३)—(दर०-१, पूर्णि०-१) दे०—कनैल।

कनैल—(सं) (१) तंबाकू या किसी पौधे के ऊपर का भाग काट लेने के बाद उसमें से निकला अंकुर या नई पत्ती (द०मैं०)। दे०—दोंजी। (२) जुए के दोनों पल्लों को जोड़ने के लिए बैल के कंधे के



कनैल

बाहर छिद्र में लगाई गई कील (उ०-प०, पू०, बर०-१, पूर्णि०-१)। दे०—सईल, कनेल। (३) हल-पालो के दोनों छोरों पर बैलों के कंधे के बाद पालो में छेद कर लगाया जानेवाला लकड़ी या बाँस का टुकड़ा। दे०—सैला। पर्या०—कनेल, कनईल (बर०-१, पूर्णि०-१, चंपा०, सा०)। [∠*कर्णकील, ∠*कोणकील] (४) दे०—सेमल।

कनोजर—(सं०) तंबाकू या किसी पौधे के ऊपर का भाग काट लेने पर उसमें से निकला हुआ अंकुर या नई पत्ती (उ०-प० मं, मं०-२)। दे०—बोंजी। [कन + ओजर ∠ *कण; कांड]

कनगोजर—(सं०)-(१) ऊख की आंख (पोर) से निकला हुआ अंकुर (द०-पू० मं०)। [कन+गोजर. देशी वा कण, कांड < कंड (प्रा०) कंडोरा (मरा०)] (२) एक प्रकार का विषैला सरीसृप कीड़ा जिसके बहुत-से पैर होते हैं।

कन्ना—(सं०)-(१) अनाज के खेतों में होनेवाली एक पशु-खाद्य घास (द०-भाग०, गया)। दे०—कनवां। (२) धान की फसल की वृद्धि रोकनेवाली एक घास (उ०-पू० मं०)। दे०—कनवां। [देशी] (३) खम्भे की एक शाखा (नोक), जिसमें घिरनी चलती है (मं०-२, पट०-४)। दे०—कानी। [∠*कण ∠*कोण] (४) एक किस्म की घास (मुं०-१)। (५) (वि०) बराबर रोते रहनेवाला (मुं०-१)। [देशी, मिला०—कण, कणिक]

कन्नी—(सं०)-(१) गेहूँ या किसी अनाज का पहले-पहल निकला अंकुर (पट०)। दे०—सुइया। उदा०—'कनियाएल आवे है' = अंकुर फूट रहा है (पट०)। [∠*कण, ∠*कणी, ∠*कणिश] (२) ढेंकुल के खम्भे के ऊपर की शाखा, जिसपर ढेंकुल का बल्ला लटकता है। दे०—कान। [<*कणी, ∠*कोण, ∠*कोणिक] (३) पेड़ की टहनी से निकला हुआ नया पल्लव (पट०-४, मग०-५)। दे०—कलस।

कन्हिया—(सं०) ऊख के कोल्हू के पेट में रहनेवाले जाठ (मोहन) के मूंड़ के ऊपर का कटा हुआ भाग (उ०-प० मं०)। दे०—कान्ह। [<*स्कन्ध, <*कन्ध]

कन्ही—(सं०) दलहन, कपास और तंबाकू के पौधों पर लगनेवाला एक कीड़ा (द०-मुं०)। दे०—कनाठा। [देशी, मिला०—क्रिणि, गन्धिन्]

कन्हेरी—(सं०) वह खेत, जिसमें पानी ले जाने में दिक्कत हो। [मिला०-कन्धरा (=ग्रीवा)]

कन्हेली—(सं०)-(१) ऊख के कोल्हू की कतरी और जुए को मिलानेवाला चमड़े का तस्मा (मग०-५)। दे०—नाधा। (२) मवेशियों की पीठ पर की गद्दी के नीचे रखी जानेवाली वस्तु (बर०-१, पूर्णि०-१)। (३) बैलों की पीठ पर की गद्दी। (गं०-उ०, मग०-५, द० मुं०)। पर्या०—छल्ला, बखरा (गं० द०-प०), छल्ला (गं० द०-पू०)। [मिला०—स्कन्ध, कन्ध, कन्धरा]

कन्हैया—(वि०) सिचाई करनेवाला पुरुष (द०-प० शाहा०)। दे०—पनछना। [<*कं + धर (=मेघ, जलधर)]

कन्हैली—(सं०) बैल के कंधे पर रखी जानेवाली गद्दी (शाहा०-१)। [कन्हा+एली (प्र०) ∠ *स्कन्ध]

कपटा—(सं०) एक कीड़ा, जो धान के पौधों में लगता है (चंपा०, मं०-२)। [देशी, मिला०—कर्पर]

कपाई—(सं०)-(१) मवेशियों का घास खाने का झोला (पट०)। (२) घास ढोने का एक प्रकार का जाल-जैसा बुना हुआ बड़ा बोरा (द० भाग०)। दे०—जाला। [मिला०—कपर्द, कपर्दिन् = गूँथा हुआ केश]

कपाई—(सं०)-(पट०) दे०—कपाइ।

कपारी फोरल—(मुहा०) कपास या किसी दूसरे बीज के अंकुर में दो पत्तों का निकलना (मं०)। दे०—दोखिया। [कपारी + फोरल ∠ *कपाल, ∠ *कपाट + फोरल (क्रि०) ∠ √स्फुट (विकसने)]

कपास—(सं०)-(१) रुई का पेड़ (प०)। टि०—वस्तुतः कपास रुई है। कपास प्रायः वैशाख में पकती है। इसके कई भेद हैं। (२) फली में पड़ी हुई बिना साफ की हुई रुई (मग०-५)। पर्या०—बाँग (मं०-२), बाँगा (पू०मं०, चंपा०), बाँगी (द० भाग०), काँच रूआ (द०-मुं०)। [< *कर्पास]

कपास फूटल—(मुहा०) कपास का फूटना, फली का खिलना (प०)। पर्या०—बाँगा फूटल (मं०), बाँगो फूटल (द० भाग०), फोटा (द० मुं०)। [कपास + फूटल < *कार्पास + *स्फुट < √स्फुट]

कपुरिया—(सं०) एक प्रकार का नींबू, जिससे कपूर-जैसी गंध आती है (चंपा०, मं०-२)। [कपुर + इया (सादृ० प्र०) < *कर्पूर]

कपुसार—(सं०) एक प्रकार का अगहनी धान, जो पीलापन लिए उजला होता है और जिसकी जड़ और फुनगी काली, सूँड़दार तथा चावल उजला एवं महीन होता है (मं०-२)। [< *कपिश + शालि]

कपूरनि—(सं०) एक लत्ती-विशेष (चंपा०-१)। [देशी, मिला०—कर्पूर]

कपूरनो—(सं०) एक प्रकार की लता (बर०-१, पूर्णि०-१)। [देशी, मिला०—कर्पूर]

कपूरसाह—(सं०) कपूर की तरह गंधवाला आम (पट०-१)। [कपूर + साह < *कर्पूर]

कपूरी—(सं०) पान का एक उत्तम भेद, जिसका पत्ता बड़ा कोमल होता है। यह कम कड़ुआ और खाने में स्वाद-युक्त होता है (मं०-२, मग०-५)। [< *कर्पूर]

कप्फा—(सं०) नई अफीम से बहा हुआ रस, जो चिथड़े आदि पर इकट्ठा कर गाढ़ा किया जाता है (सा०, द०-मुं०)। दे०—कफा। [कप्पा (=चिथड़ा) < *कर्पट]

कफा—(सं०) दे०—कप्फा। पर्या०—काफा (शाहा०), कप्फा (सा०, द०-मुं०)। [कप्पा (=चिथड़ा) < *कर्पट]

कबज—(सं०) किराया या मालगुजारी देने के प्रमाण में लिखा हुआ पत्रक। दे०—रसीद। पर्या०—काबिज (मग०-५)। [< *कब्जः (अ०) = अधिकार]

कबजाना—(सं०) मालगुजारी की रसीद लेने के लिए प्रति रुपया एक पैसा पटवारी के द्वारा निर्धारित देय (पू०-मं०)। दे०—रसिदाना। [कब्जा (उर्दू), < *कब्जः (अ०)]

कबरा—(वि०) दो रंगों का बैल आदि मवेशी, जिसकी आधी देह उजली और आधी काली हो (पट०-१, चंपा०, पट०-४, मग०-५)। पर्या०—चितकबरा (पट०-४, चंपा०, मग०-५)। [कबरा < *कर्बुर]।

कबरिया—(सं०) धान के बिड़ार से बीया उखाड़नेवाला मनुष्य। (मग०-५) पर्या०—कबरिहा (सा०), मोरकबरा (द०-मुं०, मग०-५)। [< कबारल (=उखाड़ना—क्रि०) (देशी) मिला० √कर्ब गतौ]

कबरिहा—(सं०) बिड़ार से बीया उखाड़नेवाला मनुष्य (सा०)। दे०—कबरिया। [(देशी) दे०—कबारल (क्रि०)]

कबली—(सं०) उजले वर्ण का बड़े दानोंवाला मटर (गं० द०, मग०-५) दे०—कबिली। [काबली < काबुली]

कबाड़ल—(क्रि०) उखाड़ना, अलगाना, नोंचना (मुं०-१, मं०-२, मग०-५) [देशी]

कबारल—(क्रि०) फसल, घास आदि का उखाड़ना। दे०—कबाड़ल।

कबारी—(सं०)—(१) कबाड़नेवाला (२) साग-सब्जी बेचनेवाली कुँजड़ों की तरह एक जाति (मुं०-१, मं०-२, मग०-५)। [देशी]

कबाला—(सं०) वह दस्तावेज, जिसके द्वारा किसी की जमीन आदि संपत्ति दूसरे के अधिकार में जाती है। दे०—केबाला। कबाला लिखल। (मुहा०) = कबाला लिखना। कबाला लिखाबल (मुहा०) = कबाला लिखाना। [कबाला (अ०)]

कबिली—(सं०)-(१) (गं० उ०) दे०—कबली। पर्या०—कबली (गं० द०), धेबली (द० पू० मं०)। (२) चने का एक भद जो बड़ा और उजला होता है (काबुली, (शाहा०-१)। [काबुली]

कबुरी—(सं०) दे०—कँवरी।

कबूलियत—(सं०) वह दस्तावेज, जिसे पट्टा लेनेवाला पट्टे की स्वीकृति में ठीका देनेवाले या पट्टा लिखनेवाले को लिख देता है। पर्या०—करारनामा (पट०-४, मग०-५, सा०-१)। [कबूलियत (स्त्री० उर्दू) < *कबूलियत (अ०) कबुलात, कबुलायत (मरा०)]

कमकोढ़ी—(वि०) कामचोर, आलसी । [कम+कोढ़ी < काम+कोढ़ी, काम < कर्म, कोढ़ी < कुष्ठी]

कमची—(सं०) बाँस को चीरकर बनाई गई उसकी पतली फट्ठी (चंपा०-१, मं०-२) । पर्या०— कमाची—(पट०-४, मग०-५) ।[कञ्चिका (= बाँस की पतली डाली) । [(मो० वि० डि०)] ।

कमरकल्ला—(सं०)—(१) बंधागोभी, जिसमें पत्तों का संपुट होता है; अंत में इसमें फूल हो जाता है (मुं०-१) । दे०—करमकल्ला । (२) सोनारों की एक अच्छी उपजाति (मग०-५) [कमर + कल्ला < करम + कल्ल]


कमरकल्ला

कमरख—(सं०) एक प्रकार का फल । इसका वृक्ष मध्यमाकार होता है, पत्ती एक-डेढ़ अंगुल चौड़ी और दो अंगुल लम्बी होती है, जेठ-आषाढ़ में फूलता-फलता है, पका फल खट्टा-मीठा होता है, फल की अचार-चटनी बनती है । यह दवा के काम में भी आता है । कच्चे का रंग भी बनता है (दर०-१, पूर्णि०-१, पट०-१, मं०-२, पट०-४, मग०-५)। [< *कर्मरङ्ग (संस्कृ०) < मम्मरङ्ग (प्रा०) कर्मारक]

कमर-खोलाई—(सं०) पुलिस अधिकारियों, मजिस्ट्रेटों के अर्दलियों या पुलिस कांस्टेबुलों द्वारा ग्राम में प्रवेश करने या शिविर डालने पर माँगा गया पुरस्कार। दे०—सलामी । [कमर + खोलाई]

कमरसायर—(सं०)—(१) लोहार के काम करने का निश्चित स्थान । पर्या०—लोहसारी (सा०, (चंपा०, पट०-४, मग०-५) कमसारी, मरई (द० भाग०) कमरसाल (सा०-१) । (२) बढ़ई के कान करने की जगह । पर्या०—कमरसार (मुं०-१, भाग-१) । [कमर + सायर < कर्मार + शाल, कर्म + शाल]

कमरसार—(सं०) कमारों या बढ़इयों का अड्डा या घर (मुं०-१) । [कमर + सार < *कर्मशाल, < कर्मारशाल] ।

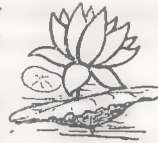
कमरसारी—(सं०) दे०—कमरसायर । [कमर + सार + ई, < कर्मार + शाल, कर्मशाल]

कमरसाल—(सं०) लोहारों के काम करने का स्थान, कर्मशाला (सा०-१) । [कमर + साल < *कर्मशाल, < *ममरिशाल] ।

कमरिया—(सं०) मजदूर । पर्या०—जन (मं०, द०-पू० मं०, चंपा०, मं०-२) बनिहार, कमियाँ (पट०, गया, द० मुं०, चंपा०), चाकर (= वैतनिक नौकर)—(मं०), बहिया, चरवाह (अवैतनिक नौकर), रोजहा = रोज की मजदूरी परकाम करनेवाला । हाकिमहुक्मि–वह मजदूर, जिससे विना मजदूरी दिये बलात् काम कराया जाता है । बेगार (गया) । [< *कर्मार, < *कमरिक]

कमरी—(सं०)—(१) कटहल के फल का छिलका (शाहा०-१, मं०-२, पट०-४, मग०-५, सर्वत्र) । [कमर + ई (साद० प्र०), < *कम्वल] (२) वह बैल, जिसकी कमर झुकी हो (पट०-१, चंपा,० पट०-४, मग०-५), कमर + ई < कमर (फा०); मिला०—कम्र (संस्कृ०) = नम्र]

कमल—(सं०) एक प्रसिद्ध फूल । यह पानी में होता है तथा करीब-करीब संसार के सभी भागों में पाया जाता है । यह अधिकतर लाल, सफेद और नीले रंग का होता है । कहीं-कहीं पीले रंग का भी होता है । इसका पत्ता गोल-गोल बड़ी थाली के आकार का होता है, जिसे 'पुरइन' कहते हैं (दर०-१, पूर्णि०, मं०-२, चंपा०, पट०-४, मग०-५, अन्यत्र भी) । [संस्कृ०]


कमल

कमलगट्टा—(सं०) कमल के फूल का बीज (पट-४, मग०-५, चंपा०, सार०, अन्यत्र भी) । [कमल + गट्टा, गट्टा < गट्ठा < ग्रन्थ (संस्कृ०) गट्ठा (पा०) = गुच्छा, गट्ठिमा (प्रा०) गट्ठा (हि०)]

कमलघट्टा—(सं०) कमल के फूल का बीज (पट०-१) । [कमल + घट्टा, गट्टा (हि०)]

कमला परसाद—(सं०) रोपा जानेवाला एक प्रकार का धान (गया) । [कमला + परसाद < *कमला + प्रसाद (?)]

कमसरे—(सं०) ऊँची श्रेणी के काश्तकारों के लिए भूमि-कर से मुक्ति (पू०मं०) । दे०—माफी ।

पर्या०—जागीर (पट०-४, चंपा०, मग०-५) । [देशी]

कमाइल—(क्रि०)—(१) काम करना, (२) जोतना-कोड़ना आदि कृषि-कार्य करना, (३) कच्चे चमड़े को सिद्ध करना, (४) किसी खेत को जोत-कोड़ कर तैयार करना (चंपा०-१, मं०-२) । (वि०) कमाई हुई मिट्टी, खेत, चमड़ा, आदि । पर्या०—कमायल (भोज०, आज०) । [कमाइल कर्मन्]

कमाई—(सं०)—(१) किसी तरह के काम करने के बदले बढ़ई, चमार आदि को दी जानेवाली मजदूरी । (२) नये कोल्हू बनाने के बदले बढ़ई को दी जानेवाली मजदूरी (उ०-पू० मं०)। दे०—खान, माँवर । (वि०) कमाया हुआ, अर्जित। (३) कृषि-साधनों की मरम्मत करने आदि के बदले मिलनेवाली मजदूरी (शाहा०, पू० मं०, पट०-४) । दे०—कठा । (४) अगाऊ मजदूरी लेकर काम करनेवाला मजदूर (प०, पट०-४) । दे०—अगवाड़ । [< *कर्मन्]

कमाउन—(सं०) दे०—कमैनी ।

कमाची—(सं०) दे०—कमची ।

कमायल—(क्रि०) दे०—कमाइल ।

कमार—(सं०)—(१) लोहा-लकड़ी का काम करनेवाली एक जाति । दे०—लुहार । (२) लकड़ी का काम करनेवाली एक जाति । दे०—बढ़ई । [< *कर्मार]

कमावट—(सं०) खुरपी से खर-पात निकालने की प्रक्रिया (दर०-१, पूर्णि०-१) । पर्या०—सोहनी (चंपा०), निकौनी (पट०-४, मं०-२, मग०-५) । [काम < *कर्मन्] ।

कमावल—(क्रि०) दे०—कमाइल ।

कमासुत—(वि०)—(१) काम करनेवाला, (२) अधिक परिश्रम से काम करनेवाला (चंपा०-१, पट०-४, मग०-५, मं०-२) [कमा + सुत < कमाना (हि० क्रि०) + सुत]

कमिअई—(सं०) हलवाहे को नियुक्त करते समय रुपये, अन्न या जमीन के रूप में दी जानेवाली अग्रिम मजदूरी (पट०, पट०-४, मग०-५)। [कमाइल (क्रि०) < *कर्मन्]

कमियई—(सं०) अग्रिम मजदूरी लेकर काम करनेवाला मजदूर (पट०, गया, द० मुं०, पट०४, मग०-५) । दे०—अगवड़ । पर्या०—कमियाँ [कमाइल (क्रि०) < *कर्मन्]

कमियाँ—(सं०)—(१) अग्रिम मजदूरी लेकर काम करनेवाला मजदूर (पट०, गया, द०-मुं०) । दे०—अगवड़ । (२) वह परंपरागत नौकर या दास, जो अपने जमींदार स्वामी की इच्छा के विना न तो उस परिवार को छोड़ सकता है, या विवाह कर सकता है और नहीं कोई दूसरा काम कर सकता है (गया०, पट०, द० मुं० पट०-४, मग०-५) दे०—नफर । [< *कर्मन्]

कमियौटी—(सं०)—(१) मजदूर को दी जानेवाली अग्रिम मजदूरी (गया) । (२) हलवाहे को नियुक्त करते समय रुपये, अन्न या जमीन के रूप में दी जानेवाली अग्रिम मजदूरी । (गया, पट०-४, मग०-५) । दे०—हरवर । [< *कर्मन्]

कमी—(सं०) ऊँची श्रेणी के काश्तकारों को मिलनेवाली भूमि-कर की छूट (पट०) दे०—माफी । [फा०]

कमीना—(सं०)—(१) अधिक मेहनत से काम करनेवाला । (२) छोटी जाति के काश्तकार (शाहा०) । दे०—राड़ जाति । (वि०)—(३) बदमाश, बुरे आचरण का व्यक्ति । [< कमीन (फा०)]

कमीनी—(सं०) मजदूरी । [< कमाइल (क्रि०) < * कर्मन्]

कमुआ—(सं०) एक प्रकार का चिकना कीड़ा, जो पौधों में लगता है (पट०) । दे०—कम्मा । [देशी]

कमेड़ा—(वि०) काफी काम करनेवाला मनुष्य (चंपा०-१) । [< *कर्मठ < *कर्मन्]

कमैनी—(सं०)—(१) छिछली कोड़ाई; खुरपी, कुदाल आदि से हल्के-हल्के कोड़ना (चंपा०, मं०, मं०-२, मग०-५) । दे०—खुरपियाना । (२) छिछली कोड़ाई करके अनाज के खेत की घास आदि की सफाई (गं० उ०) । दे०—सोहनी । पर्या०—कमाउन (दर०-१, पूर्णि०-१), कमौन (दर०-१) । [कमाइल (क्रि०) < *कर्मन्] (२) कृषि, साधनों की मरम्मत आदि करने के बदले बढ़ई को मिलनेवाली मजदूरी (द० मुं०, चंपा०) । दे०—कन । [कमाना (हि० क्रि०), कमावल (बिहा०) < *कर्मन्] ।

कमोच—(सं०) रोपा जानेवाला एक प्रकार का काला धान (उ०-प०)। [संभ०—कमोच < *कुमुद]

कमोदी—(सं०) रोपा जानेवाला एक प्रकार का उत्तम सुगन्धित धान। [संभ०—कमोच < *कुमुद]

कमोरा—(सं०) कोल्हू की कतरी और मोहन के खंभे के ऊपर की ओर घूमनेवाले टेढे भाग से लगा हुआ बाँस या लकड़ी का टुकड़ा। दे०—खेरचाँड़ी। [देशी]

कमौनी—(सं०)—(१) खुरपी या कुदाल आदि से की जानेवाली हल्की-हल्की कोड़ाई। छिछली कोड़ाई (द० भाग०)। दे०—खुरपियाना। (२) छिछली कोड़ाई करके अनाज के खेत से की जानेवाली घास आदि की सफाई (द० भाग०, द० मुं०)। दे०—सोहनी। [कमाना (हि०), कमावल (बिहा०) < *कर्मन्]

कम्मा—(सं०) एक प्रकार का चिकना कीड़ा, जो पौधों में लगता है। पर्या०—कमुआ (पट०)। [देशी]

कयरवा—(सं०) केले की तरह का लंबा-लंबा आम (पट०-१, पट०-४, मग०-५) पर्या०—सुगवा, केलवा (पट०-४), केरंबा (मग०-५), केरवा (मं०-२, चंपा०), केरवा (चंपा०)। [कयर+वा (प्रा०) < कयरा < कयल < *कदल < *कदली]

कयरा—(सं०) केला। केले का पौधा, (पट०-१) पर्या०—केरा (पट०-४, मग०-५, मं०-२, चंपा०, अन्य०)। [कयरा < कयल < *कदल]

कयरा के कंद—(सं०) केले की जड़ (पट०-१)। [कयरा+के+कंद]

करँगा—(सं०) काले दानोंवाला एक प्रकार का धान (द०-प० शाहा०, सा०)। पर्या०—करंगी, करङा (चंपा०, मं०२)। [मिला०—कर‍ङ्क = एक प्रकार की ईख (मो० वि० डि०), कडंगर—भूसा, डंठल]

करँगी—(सं०) (द०-प० शाहा०, सा०)। दे०—करँगा।

कर—(सं०)—(१) मूंज का वह भाग, जिससे रस्सियाँ बाँटी जाती है (चंपा०-१)। (२) मालगुजारी, जैसे—जलकर, फलकर आदि (चंपा०-१)। (३) पार्श्व करवट (चंपा०-१)। [< *कर]

करइला—(सं०) एक प्रकार की लता और उसमें उत्पन्न होनेवाली तरकारी। (पट०-१, पट०-४, मग०-५, चंपा०, अन्य०)। [< *कारवेल्ल]



करइला

करइली—(सं०) छोटा करेला (पट०-१, पट०-४, मग०-५)। [करइल+ई (प्र०) < कारवेल्ल]

करकंधा—(वि०) वह गाय या बैल, जिसके कंधे पर एक काला धब्बा होता है। पर्या०—करिकंधा (शाहा०)। करकन्हा (आज०)। [कर+कंधा, कर < काल; कंधा < स्कंध, कालस्कंध, यथा—कालकंठ]

करकजाँघी—(सं०) बैलों का एक रोग। इसमें चलते-चलते बैल के पैर ऐंठ जाते हैं (सा०-१, चंपा०, मं०-२)। पर्या०—करजाँघिल (पट०-४, मग०-५)[करक+जाँघी, < कड़कल (बिहा०), कड़कना (हि०) +जाँघी]

करकट—(सं०) दुहते समय पैर चलानेवाली गाय या भैंस। पर्या०—लथराहु (मं०)। [मिला०—कर्कोट = एक प्रकार का नाग, हाथ की एक विशेष मुद्रा]

करका—(सं०) काली मिट्टी। (वि०) काला [कर+का (प्र०) < *काल+कमिला करल (मरा०)]

करकी माँटि—(सं०) काली मिट्टी (दर०-१)। [करकी+माँटि < *कालक+मृत्तिका]

करकुट—(सं०) रुई की गंदगी। [मिला०-कर्कर]

करखा—(सं०) दे०—करिखा। [< *कालक]

करखो—(सं०)—(शाहा०)। दे०—करिखा। [< *कालक]

करखी—(सं०)—(द०भाग०)। दे०—करिखा। [< *कालक]

करङा—(सं०)—(चंपा०, मं०-२), दे०—करँगा।

करज—(सं०)—(१) निश्चित अवधि के लिए वादा करके किसी से द्रव्य लेने की प्रक्रिया। दे०—करजा। (२) उधार। [कर्ज (अ०)]

करजखउख—(वि०)—(शाहा०), दे०—करजखौक। [करज+खउख]

करजखोर—(वि०) कर्ज लेकर निर्वाह करनेवाला (पट०, पट०-४, मग०-५, मं०-२, चंपा०, भाग०-१)। दे०—रिनिहा, करजखौक। [करज+खोर < कर्ज (अ०) + खूर (फा०)]

करजखौक—(वि०) कर्ज लेकर जीवन-निर्वाह करनेवाला (पट०, मं०-२, पट०-४, चंपा०, मग०-५)। दे०—रिनिहा। [करज+खौक, खौख < खाना (हि०), खायल (बिहा०)]

करजवाम—(सं०) दे०—करजा। [करज+वाम = कर्ज; दोनों एक ही अर्थ के वाचक हैं]

करजाँघिल—(सं०)—(पट०-४, मग०-५)। दे०—करकजाँघी।

करजा—(सं०)—(१) पशु खरीदने या कुआँ आदि बनाने के लिए दी जानेवाली अग्रिम द्रव्यराशि, ऋण। पर्या०—तगावी। (२) निश्चित अवधि के लिए सूद पर उधार लिया जानेवाला द्रव्य। पर्या०—करज (गं०द०), करजवाम, पैंचा। [< *कर्ज—(अ०)]

करती मूरी—(सं०) दूहने के समय बहलाने के निमित्त मृतवत्सा गौ या भैंस के सामने रखी गई घास या भूसे से भरी बछड़े या पाड़े की खाल (गया) दे०—लगावन। [करती+मूरी; मूरी < मूंड़ < *मुंड; करती < *कृत वा *कृत्त (?)]

करदुम्म—(सं०) वह बैल, जिसकी देह उजली और पूंछ काली हो (पट०-१, पट०-४, मग०-५)। [कर्+दुम्म < कार (बिहा०)+दुम्म (फा०)]

करबीर—(सं०) एक प्रकार का पीला फूल, जिसकी पत्तियाँ लंबी होती हैं और पौधा मूल से ही शाखावाली झाड़ी की तरह होता है (दर०-१, पूर्णि०-१) [< *करवीर]

करमकल्ला—(सं०) पत्तियों से भरी हुई गोभी या पत्ती-साग की जाति की एक तरकारी (पट०-४, मग०-५, मं०-२)। पर्या०—बंधाकोबी। [करम+कल्ला < करम (अ०) + कल्ला (हि०)]

करमा—(सं०) रोपा जानेवाला एक प्रकार का लंबा काला धान। यह नीची जमीन में रोपा जाता है। (चंपा०, मं०-२)। [मिला०-कलम, कलंब]

करमिया—(सं०) एक प्रकार का उजला शकरकंद। दे०—देसी। [मिला०—कलम्बी]

करमी—(सं०) जल या दलदल में होनेवाली एक लता, जिसके फूल छोटे एवं उजले-बैंगनी रंग के होते हैं, इसका साग होता है तथा यह पशुखाद्य भी है (द० भाग०, पट-४, मग०-५, मं०-२)। पर्या०—करमीलत, करेम, (द०-प० शाहा०), कर्मी (दर०-१)। [< *कलम्ब, < *कलम्बी]

करमीलत—(सं०) दे०—करमी। [करमी+लत < कलम्बीलता]

करमोआ—(सं०) वह वस्तु, जो पूरी भींगी न हो (खासकर धान)—(चंपा-१, पट०-४, मग-५)। [कर+मोआ, मोआ < मोअल (बिहा०) = (भिगोनासंभ० < √मिह (सींचना) वा < √मव (=बंधन) (?)]

करुआ—(सं०) छोटे पत्तों वाला मीठा पान (प०, मं०-२)। [कटु (?)]

करल—(क्रि०) करना, काम करना। मुहा०—खेती करल = खेती करना।

करवानी—(सं०) दे० कंड़वानी।

करसी—(सं०)—(१) गोबर के स्वतः सूखे हुए टुकड़े, जिनका जलावन होता है (मं०-२, चंपा० पट०-४मग०-५ आज०)। पर्या०—अमारी (द० मुं०, भाग०, गया; मग०-५, पट०-४)। (२) (पू०)। दे०—खादर। (३) गदहे की लीद (सा-१)। [< *करीष]

करहनी—(सं०)—(१) छींट कर बोये जानेवाले ललगोंदिया धान का एक प्रधान भेद, जिसकी बाल काली होती है (पट०, पट०-४, मग०-५)। दे०—ललगोंदिया। (२) छींट कर बोया (बावग) जानेवाला काली बालोंवाला उत्कृष्ट धान (द० मुं०, गया)। (३) छोटे काले दानोंवाले धान का एक प्रकार (द०-प० शाहा०, सा०)। [कर+हनी < *काल+धान्य]

करहनी धान—(सं०) एक प्रकार का धान, जो पतला, काला और महीन होता है (पट०-१)। [कर+हनी+धान < कार*काल+धान्य]

करहा—(१)—(सं०) बड़े जलस्रोत या पैन से

खेत तक जानेवाले जल-प्रवाह का मार्ग या नाली (पट०, सा०, शाहा०)। दे०—पैन। (२) पैन से निकलनेवाली नाली। [< *कर्षू = नहर, गड़हा (गड्ढा), ताल, आग। "कर्षूः पुमान् करीषाग्नौ स्त्रियां कुल्येष्टिखातयोः।" (मेदि०)] (३) सींचने के निमित्त बनी हुई नाली का गहरा आंतरिक भाग (प०, पट०, गया)। दे०—आरा। (४) नाली के किनारे को घेरनेवाली उठी हुई मेंड़ (शाहा०, पट०, गया)। दे०—मेंड़ [< *कर्षू = नदी, नहर, ताल] (५) कोल्हू के सामने बना हुआ लोहे का परनाला, जिससे होकर ऊख का रस नीचे के बरतन में गिरता है। (द० भाग०, पट०-४, मग०-५)। दे०—नाली।

कराई, कलाई—(सं०) एक प्रकार का दलहन, जो स्लेटी रंग का छोटा और बीच में उजली-सी पतली रेखा लिये होता है। इसकी पकी दाल चिकनी होती है (पू० मं०)। दे०—उरिद। [< *कलाय (संस्कृ०) = मटर, कलाय = (बं) = उड़द] टि०—पूर्वी मैथिली अथवा द० भाग० और द० मुं० में उड़द को 'कराई' वा 'कलाई' कहते हैं तथा बंगला में भी 'कलाय' ही कहने हैं, किंतु संस्कृत में 'कलाय' का अर्थ मटर होता है।

कराम—(सं०) वह बड़ी मोटी और विशेष प्रकार की बनी रस्सी, जिसमें दौनी करने के लिए बैल बांधे जाते हैं (पू०मं०)। दे०—मंझा। पर्या०—कड़ाम (दर०-१, पूर्णि०-१, मं०-२) कड़ाँव (चंपा०)। [देशी]

करार—(सं०)-(१) एक पशु-खाद्य घास (शाहा०, द०मुं०)। [मिला०—कराला = अनंत मूल, सारिवा] (२) काफी मजबूत जमीन, जिसमें ८५ प्रतिशत मिट्टी रहती है (पट०-४, मग०-५, मं०-२)। दे०—केवाल [मिला०—कासार (संस्कृ०) = केवाल मिट्टी, कराल = कड़ा]

करारा—(सं०) नदी का खड़ा ऊँचा किनारा। पर्या०—अररा, अरार, अरारि, कछाड़, कछाड़ा, ढाह (उ०) कँगनिया (उ०-पू० मं०)। [< *कराल = ऊँचा। कट (काटना हिं०) + आर = (संस्कृ०) किनारा]-(हिं० श० सा०)]

करावल—(क्रि०) करल क्रिया का प्रे०। कराना, काम कराना।

कराह—(सं०) ऊख के रस को उबालने का बरतन (सर्व०)। पर्या०—कड़ाह, कराहा। (२) नमक बनाने अथवा नील आदि के रस उबालने के लिए प्रयुक्त लोहे का बड़ा बर्तन। पर्या०—कड़ाह, कराहा, कराही। [< *कटाह]

कराह के घर—(सं०) चीनी बनाने का घर। दे०—चूल्हा के घर।

कराह घर—(सं०) नील उबालने का घर। [कराह + घर < *कटाहगृह]

कराहा—(सं०)। दे०—कराह। [< *कटाह]

कराही—(सं०)—(१) (पट०-४, मग०-५, मं०२, चंपा०, आज०) [कराह + ई] (२) दे०—कराह (अल्पा० स्त्री० प्र०) < कटाह]।

करिंगवाह—(सं०) करीन चलानेवाला (पू०, पट०-४, मग०-५)। दे०—करीन, दोनवाह। [करिंग + वाह; मिला०—कलिंज (देशी) = छोटी लकड़ी, कलिंत्र = बांस का एक पात्र-विशेष कलिंबो वंस कप्परी, (पा० स०म०); कालिन्दी = एक पात्र-विशेष—(मो० वि० डि०)]

करिअंबा—(सं०) गुण के अनुसार आम का एक भेद (दर०, पूर्णि०-१, पट०-४, मग०-५, मं०-२)। [करि + अंबा < करि < कारि < *काल; अंब < *आम्र]

करिआकामोद—(सं०) एक अगहनी लंबा काला धान, जिसके दाने महीन और चावल सफेद तथा सुगंध-युक्त होते हैं (सा०-१)। [करिया + कामोद; करिया < *कालक]

करिकंधा—(वि०)—(शाहा०)। दे०—करकंधा। [करि + कंधा < *काल + स्कन्ध, कालकंठवत्]

करिखा—(सं०) कालिख। करिखाइ हाँड़ी करिखाइ हँड़िया = दुष्ट आंखों से फसल को बचाने के लिए खेत में रखी जानेवाली हंडी। पर्या०—करखा, करखी (शाहा०), कारिख (गया), करखो (द०भाग०)। [करिखा (देशी), कालिख (हिं०) कालक (संस्कृ०)]

करिङवाह—(सं०) दे०—करिंगवाह।

करिनवाह—(सं०)—(पू०, पट०-४, चंपा०, मग०-५)।

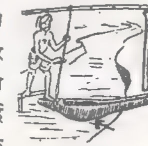
करियवा—(वि०)—(१) काले वर्ण का पशु। दे०—कारी। (२) काले रंग का आम। [करिय + वा (वि० प्र०) वा < वान् < मान् < मतुप्, वा < वर्ण; करिय < कारी < काली]

करिया—(वि०) दे०—कारी। [करिया < कारी < काली]

करिया, कारी—(सं०) काली उड़द (शाहा०, द० पू० मं०)। दे०—डंगा। [करिया < कारी < काली]

करिलत—(सं०) एक प्रकार की लता (दर०-१)। [देशी]

करींग, करीन—(सं०) लकड़ी, टिन या लोहे की बनी हुई एक नलिका जो बीच में गहरी ऊपर खुली हुई तथा लंबी होती है और जिससे सिंचाई का काम होता है। इसकी लंबाई सात से लेकर नौ हाथ तक तथा चौड़ाई करीब एक डेढ़ फुट होती है (पू०, चंपा०, उ० विहा०, मग०-५, पट०-४, मं०-२, द०मुं०-१)। दे०—दोन।


करींग

करीनवाह—करीन चलानेवाला। [मिला०—कलिंज (देशी) = छोटी लकड़ी, कलिंब = बाँस का पात्र विशेष "कलिंबो वंशकर्प्परी" (पा० स० म०), कालिंदी (संस्कृत) = एक पात्र विशेष (मो० वि० डि०)]

करीङ—(सं०) दे०—करींग।

करीन, करींग—(सं०)—(पू०, दर०-१)। दे०—करींग।

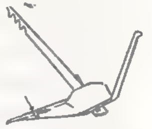
करींगवाह—करींग चलानेवाला।

करुअइनी—(सं०) (१)—एक प्रकार का कीड़ा (चंपा०-१)। [(देशी), मिला०—कटुकीट, एक प्रकार का मच्छर (मो० वि० डि०)]। (२) एक प्रकार का प्रसिद्ध वृक्ष जिसकी दातून अच्छी मानी जाती है, फली तीखी होती है और नजर आदि से बचाने के लिए बच्चों के गले में ताबीज की तरह पहनाई जाती है। [< *करंज (संस्कृ०), करंज, करंजवा, कहोंनी, डिठौरी (हिं०), डहर करंज (बं०), करंजाचे (मरा०), करणझी (गु०), कंज (ते०), पंग (त०) पोंगस (मल०)]

करुआ—(वि०)-(द० भाग०)। दे०—कारी। [कर + उआ (वि० प्र०) < काल, कालक]

करुआ तेलिया—(सं०) वह बैल, जिसकी पूँछ काली और अन्य अंग दूसरे किसी रंग के हों (पट०-१, मग०-५, पट०-४) [करुआ + तेलिया]

करुआर—(सं०) फाल को गिरने से बचाने के लिए हल में ठोका गया टेढ़ा पतला लोहा। (चंपा०-१, पट०-४, मग०-५, मं०-२)। पर्या०-करुआरा (प०) करुआरी (पट०, चंपा०, प० (मं०), खूरा (द०-प० शाहा०), जोक (पट०), जोंकी, चोभी (द०-पू० मं०), गाँसी (उ०-पू० मं०), करुवार (आज०)। [(देशी), मिला०—कटर्कक (= तराजू के डंडे के दोनों ओर की मुड़ी किनारी, मुड़े हुए हाथ की मुद्रा, करुवार (हिं०, देशी०)]


करुआर

करुआरा—(सं०)—(प०)। दे०—करुआर।

करुआरी—(सं०)—(पट०, चंपा, प०-मं०)। दे०—करुआर।

करुना—(सं०) एक प्रकार का खट्टा फल, जिससे चटनी, अचार आदि बनाये जाते हैं (दर०-१)। दे०—करौना। [< *करमर्द]

करुवा—(सं०) वह बैल, जिसके पुट्ठे, गर्दन और पूँछ चमकदार हों (पट०-१)। [करु + वा (प्र०) < कार < *काल]

करेयवा सीम—(सं०) तरकारी के काम में आनेवाली मटर की छीमी की तरह फलनेवाली सेम (पट०-१)। [करेयवा + सीम, करेय + वा (प्र०), करिय + वा < कारिय + वा < कालिक; सीम < शिम्बि]

करेल—(सं०)-(दर०-१, पूर्णि०-१)। दे०—करैला।

करैल—(सं०)—(१) (उ० पू० मं०)। दे०—करैला [< *कारवेल्ल] (२) कुछ नीली-काली मिट्टी (प०)। [मिला०—कासार (= केवाल मिट्टी; कराल (=) कड़ा, ऊँचा)]

करैला—(सं०) लता में होनेवाली एक प्रकार की कड़वी तरकारी। इस लता की पत्तियां पांच

नुकीली फांकों में कटी होती हैं, इसमें लंबे-लंबे आकार के फल लगते हैं। छिलके पर लंबे-लंबे छोटे-बड़े दाने उभरे रहते हैं। यह दो प्रकार का होता है। एक बैसाखी, जो फाल्गुन में क्यारी में रोपा जाता है और जमीन पर फैलकर फलता है। इसका फल कुछ पीला होता है। दूसरा बरसाती, जो बरसात में रोपा जाता है और झाड़ पर चढ़ता है। सालों-भर फलता-फूलता है। कहीं-कहीं जंगली करेला भी मिलता है, जो छोटा तथा ज्यादा कड़वा होता है। पर्या०—करैलो (शाहा०, द० भाग०), करैल (उ०-पू० मं०, दर०-१, पूर्णि०-१)। करेल (दर०-१, पूर्णि०-१)। [<*कारवेल्ल, (संस्कृ०), कारइल्ल (प्रा०), करेला (हिं० पं०) करेलो (ने०), करला (बं०), कलरा (भो०), कारेली (गु०, मरा०) करेलो (सिं०), करिविल (सिहा०), करेल (कश्म०)]

करैली—(सं०)-(शाहा०, द० भाग०, पट०-४, मग०-५)। दे०–करैला। [<*कारवेल्ल]

करौंदा—(सं०) दे०—करौना।

करौना—(सं०) करौंदा, एक प्रकार का फल, जो छोटा, चिकना और स्वाद में खट्टा होता है। यह एक कँटीली झाडी में होता है (चंपा०-१, अन्य०)। पर्या०–कलौंदा, करौंदा-(पट०-४)। करुना—(दर०-१)। [करमर्द (संस्कृ०), करमद्द (प्रा०), करवँदा, करौंदा, करोंदा; करोना (हिं०) करमचा, करमिया (बं०), करवंद (मरा०), करमदा, करमदर्द (गु०), करिजिगे (क०), करवं दे, वाक्का (ते०), करवंदा (मरा०)]

कलंबक लेंबू (स०) एक प्रकार का नींबू जो कुछ लंबा होता है (पट०-१) [कलंबक+लेंबू < कलंब (=शाक नाल)+निंबु]

कल—(सं०)-(१) वह यंत्र, जिसमें ऊख पेरा जाता है। मिल। दे०—कोल्हू। (२) मशीन, (३) शांति, आराम। [कला (संस्कृ०) = अंग, पुरजा, विद्या, कला (पा०, प्रा०), कल (हिं०), कल् (ने०, काश्म०, बं०), कल (ओ०, पं०, ल०) कल्प (=स्वस्थ, कुशल)]

कलउ—(सं०) दोपहर का भोजन (चंपा०-१)। पर्या०-कलउआ (मग०-५, भाग०-१) [कल+उ< कलेउ< कलेवा< *कल्यवर्त]

कलउआ—(सं०) - (मग०-५, भाग०-१)। दे०—कलउ।

कलटरी—(सं०) भूमि पर निर्धारित राजकीय कर (पट०, गया, पट०-४, मग०-५) दे०—मालगुजारी। [कलटर+ई (प्र०) < *कॉलेक्टर (अं०)]

कलम—(सं०)—(१) रोपने के लिए प्रस्तुत धान के नये-नये बीज के पौधे (पट०, गया, शाहा०)। पर्या०—बेल (अन्यत्र)। (२) आम अथवा किसी दूसरे पौधे का दूसरे के साथ मिलाकर पैदा किया गया उत्कृष्ट पौधा। पर्या०–कलमी। (३) लेखनी। [< *कलम]

कलम, कलमी—(सं०) नील आदि की दूसरी या तीसरी फसल, जो दूसरे वर्ष में उत्पन्न होती है। [< *कलम]

कलमकाठी—(सं०) मोटे और लंबे अगहनी धान का एक किस्म। इसका चावल सफेद होता है। (मुं०-१, पट०-४, मग०-५)। पर्या०—सिरहंटी। (पट०-४)। [कलम+काठी]

कलमदान—(सं०) उजले रंग का एक उत्कृष्ट धान (पट०-१)। [कलम+दान< *कलम +धान्य]

कलमबाग—(सं०) कलमी आमों का बगीचा।

कलमी, कलम—(सं०)। दे०—कलम।

कलमी आम—(सं०) गुण और आकार के अनुसार आमों की एक मुख्य जाति, जिसमें मालदह, बंबइया, फजली आदि भेद होते हैं। यह आम के दो पौधों के योग से होता है। (दर०-१, पूर्णि-१, चंपा०, भाग०-१, पट०-४, मग०-५, अन्य०)। [कलमी+आम ; कलमी< कलम; आम< आम्र]

कलमी साग—(सं०) एक प्रकार का पत्तियों वाला साग, जिसके ऊपर का भाग तोड़कर भाजी बनाई जाती है और वह पौधा बढ़ता जाता है। [कलमी+साग]

कलस—(सं०)-(१) पेड़ की टहनी से निकला हुआ नया पल्लव (चंपा०-१) पर्या०—फुज्जी, कन्नी, कनसी (पट०-४, मग०-५)। [मिला०-कन्दल = नया अंकुर]। (२) पानी रखने अथवा निकालने के लिए पीतल, तांबा, मिट्टी आदि का बना बरतन। पर्या०–कलसा, कलसी। (३) यज्ञ, पूजा आदि पर प्रयुक्त कलश, जिसकी मंत्रों से प्रतिष्ठा करके उसी पर देवताओं की पूजा होती है। [कलस (संस्कृ०), कलस (पा०, प्रा०) कलस, कलसा (हिं०, भो०), कलह (अस०), कलहोटा ल०), कलसियो (गु०) कलसा (मरा०)]

कलसा—(सं०) दे०—कलस–२।

कलसी—(सं०) दे०—कलस – २।

कलाई—(सं०) एक प्रकार का दलहन, जो स्लेटी रंग का छोटा और बीच में उजली-सी पतली रेखा लिये होता है, इसकी पकी हुई दाल चिकनी होती है (पू० मं०)। दे०—उरिद। पर्या०—कलाय (दर०-१)। [< *कलाय (संस्कृ०) = मटर, कलाय बं०) = उड़द]

कलाएल—(क्रि०) फसल की बाल का दृढ़ होना (द०-पू०)। दे०—हवसाएल। पर्या०—कइलाएल (पट०-४, चंपा०, मग०-५)। [कल्प (सं कृ०), कड़ा (हिं०)]

कलेउ—(सं०) दे०—कलेवा। [< *कल्यवर्त्त]

कलेवा—(सं०) मध्याह्न का भोजन। पर्या०—कलेऊ, कलौ (मं०), खाय (पट०), खैया (गया), खाईक (द० मुं०), कलौआ (द० भाग०)। टि०—'कलउ', 'कलउआ', 'कलेऊ', 'कलौ', 'कलेवा' और 'कलौआ' शब्द 'कल्य' से संबद्ध हैं, जिसका अर्थ है—प्रातः कालीन प्रकाश, अरुण-प्रकाश अथवा प्रातः काल। [< *कल्यवर्त्त = प्रातःकालीन भोजन]

कलोर—(सं०) - (१) प्राप्त-वयस्का बाछी (प०, भाज०)। (२) पहले-पहल आसन्नप्रसवा गाय (शाहा०-१, प० चंपा०-१)। दे०—ओसर। [< *काल्या]

कलौंजी—(सं०) एक सफेद अगहनी धान, जिसका दाना मझोला और चावल लाल होता है सा०-१, मग०-५)। [मिला० कलन्वु = एक प्रकार का पौधा (मो० वि० डि०)]

कलौ—(सं०)—दे०—कलेवा। [< *कल्यवर्त्त]

कलौआ, कलौवा—(सं०)—द० भाग०, मुं०-१)। दे०—कलेवा। [< *कल्यवर्त]

कवछुआ सेम—(सं०)—(उ० बिहा०)। दे०—कवाछ।

कवाछ—(सं०)—(१) सेम की जाति की एक फली। पर्या०—केंवाछ, भूपसेम (गया), कवछुआ सेम (उ० बिहा०), कवाँछ (पट० ४)। (२) एक प्रकार का जंगली पौधा। इसमें फल लगता है। इस फल के रेशे के शरीर में स्पर्श करने से जोरों की खुजलाहट शुरू होती है तथा उस स्थान पर खुजलाकर उस उँगली से शरीर के दूसरे अंग को स्पर्श करने पर वहाँ भी खुजलाहट मालूम होने लगती है। [कपिकच्छू (संस्कृ०); कवाछ, कवाच, कौंच, कोंच, कौंछ, केवाछ, किवाछ, किमाच (हिं०), आलकुशी, आलाकुशी, शुयाशिवी (बं०), कुहिली, खाज कुहिरी, कुहिलिये बीज, कपास कुहिरी, काच कुहिली, कवच (मरा०), नसु कुगरी नसुकुगुरी (क०); चुलगुंडी पल्ली अड्डगु, दलगुंडी (ते०); कवचा, कौंचा, कठचो, कनुचु (गु०); पुनाइककाली; पनैकाइ (ता०); कौंच, कोनच (ने०); जुर्ना (पं०)]

कवाछु—(सं०)—(शाहा०-१)। दे०—कवाछ। [< *कपिकच्छू]

कवाछल—(क्रि०) तंग होना (मग० ५)।

कसइलिया—(सं०) कसैली की तरह छोटा-छोटा फलनेवाला आम (पट०-१, पट०-४, मग०-५)। [कसइली + आ (प्र०) < कसैली< कषायिल]

कसमिरा—(सं०) एक प्रकार का पौधा, जिससे रस्सी आदि बनाने के लिए रेशे-जैसी चीज निकाली जाती है (उ०-पू० मं०, मग०-५)। दे०—सन। [देशी, मिला० – काश्मीरक]

कसर—(सं०) तौलने के बाद पूरक रूप में अतिरिक्त (कमी की पूर्ति में) अंजलि या हाथ से दिया हुआ अनाज (प०, मं०-२)। दे०–पछुआ। [कसर (अ०) = टोटा, घाटा, हानि]

कसाई—(सं०) पशुओं का वध करनेवाला मनुष्य। टि०—किसान लोग काम में ढिलाई करनेवाले पशुओं को यों ही गाली देते हैं—'जाह कसैया खूँटा'—(तुम कसाई के खूँटे

पर जाओ, अर्थात् जाकर काटे जाओ)।
[कसाई, कस्साब (अ०); मिला०—√कष (हिंसार्थे)]

कसैया—(सं०) दे०—कसाई।

कसौंजी—(सं०)—(१) छोरों पर अरुणाई लिये ईषद् श्वेत-रक्त, एक मोटा अगहनी धान, जिसका चावल उजला और सुगंधित होता है। (२) चकवड़-जैसा पौधा, जिसकी पत्तियाँ ईषद् हरित-रक्त होती हैं। [मिला०—कसौंजी < कासमर्द (संस्कृ०)= चकवड़-जैसा एक प्रकार का पौधा, जिसकी पत्तियाँ ईषद् हरित-रक्त होती हैं। संभवतः यह धान भी ईषद् श्वेत-रक्त होने के कारण 'कसौंजा' कहलाता है।]

कसौन्ह—(सं०) एक प्रकार का लाल अगहनी धान (दर०, पूर्णि०-१)। दे०—कसौंजी। पर्या०—जड़हन (पट०-४)।

कस्तूरा—(सं०) एक प्रकार का पौधा। यह तीन-चार हाथ लंबा होता है तथा इसके फल काँटेदार होते हैं। जानवरों के 'खोरहा' रोग में इसका डंठल गले में बाँधा जाता है (पट०-१, मग०-५)। पर्या०—फरहद (पट०-४, मग०-५)। [देशी]

कहरनी—(सं०) एक प्रकार का साग (दर०, पूर्णि०-१, पट०-४)। [देशी]

कहार—(सं०) गाँवों में बसनेवाली एक जाति, जो खेती-बारी या नौकरी-चाकरी करती है। [कहार < काहार (देशी), कहार (मरा०, हिं०, पं०), काहार (बँ), काहाल (ओ०), कहास (सि०)]

कहेरिया—(सं०) वह बैल, जिसका रूप-रंग चीते की तरह हो (पट०-१)। पर्या०—बघछल्ला (मैं०)[कहेरि+या < केहरी < *केसरी]

काँकड़ि—(सं०) एक प्रसिद्ध लंबा फल, ककड़ी (दर०, पूर्णि०-१)। [*कर्कटी]

काँकरि—(सं०) दे०—ककड़ी। [*कर्कटी]

काँखी—(सं०) (१) तंबाकू या किसी पौधे के ऊपरी भाग को काट लेने के बाद उसमें से निकला हुआ अंकुर या नई पत्ती (द० मैं०, मग०-५, चंपा०, मैं०-२, पट०-४, भाग०-१)। दे०—दोंजी। (२) मकई से निकलनेवाले बाल का अंकुर (सा०-१, पट०-४, मग०-५, मैं०-२, चंपा०-१, भाग०-१)। [< *कणाद्व < *कणांकुर]

काँच—(वि०)-(दर०-१, पूर्णि०-१)। दे०—कच्चा।

काँजीहाउस—(सं०) वह घिरा स्थान या बाड़ा, जहाँ दूसरे की फसल आदि चरनेवाले मवेशी बाँधे जाते हैं, मवेशियों का जेल। दे०—कड़गड़ा। [काइन (= काउ) + हाउस (अं०)]

काँट—(सं०)— (१) एक प्रकार का कँटीला पौधा (चंपा०-१, मैं०-२)। (२) किसी पौधे या फल आदि का नोकीला कड़ा भाग, जो गड़ता है। पर्या०—कंटा, काँटा (पट०-४, मग०-५, मैं०-२)। [< *कंटक]

काँटा—(सं०)-(१) तौल करने का बड़ा तराजू। मिलों में ऊख तौलने का यंत्र (बिह०, री०, हरि०, पट०-४, मग०-५, मैं०-२)। पर्या०—राटल (री०), रातल (भोज०, मग०)। (२) एक कँटीला पौधा (पट०-४, मग०-५, मैं०-२, भाग०-१)। दे०—कंटा, काँट। [< *कंटक]

काँटाघर—(सं०) चीनी की मिल में वह घर, जिसमें ऊख तौलने का काँटा रहता है (बिह०, री०)। पर्या०—रातलघर (मैं०)। [काँटा + घर]

काँड़—(सं०)-(१) चारे के लिए काटे गये जनेर के डंठल की एक राशि (द०-पू० मं०)। दे०—गाँज। (२) खलिहान में राशिकृत फसल के बोझों का ढेर (चंपा०, पू०)। दे०—गाँज। (३) वह रस्सी, जिसमें दौनी के लिए बैल बाँधे जाते हैं (चंपा०, गया)। दे०—मझा। (४) मवेशी को दवा पिलाने का बाँस का चोंगा (मुं०-१)। [कांड, वंशकांड]। (५) चूहे का बिल (चंपा०-१, मग०-५, मैं०-२)। [काण्ड = बोझा, बंडल, पुंज, कांडिन् = = बिल (मो० वि० डि०)]

काँड़ल—(क्रि०)—(१) धान के कटे पौधों का पुंज बनाना (मुं०-१)। (२) काँड़ से दवा पिलाना (मुं०-१)। [*काण्ड = पुंज]

काँड़ल—(क्रि०) लात से रौंदना (चंपा०-१)। [< *कँडन < √कंडि]

काँड़ा—(सं०) मोट की गर्दन के चारों ओर लगी हुई लोहे की कड़ी (द०-प० मं०)। दे०—मेंड़ड़ा। [< *कटक]

काँड़ा, काँड़—(सं०)—(१)-(चंपा०, गया)। दे०—मंझा, काँड़ा। (२) मूँज का डंठल, जो घर छाने और टट्टी बाँधने के काम में आता है (चंपा०-१, पट०-४, मग०-५, मैं०-२)। (३) धान के पके हुए पौधों का पुंज या टाल (मुं०-१) (४) गोड़ाई। पैर का एक आभूषण (चंपा०-१, पट०-४, मग०-५)। [< *कांड, < *कटक]।

काँड़ी—(सं०)—(१) पशुओं को दवा आदि पिलाने के लिए बनी बाँस की नली (चंपा०, शाहा०, पट०-४, मग०-५, मैं०-२, भाग०-१)। पर्या०—ढरका (प० चंपा०, शाहा०)। [काँड़ + ई (अल्पा० स्त्री० प्र०)। [< *कांड, < *वंशकांड] (२) लकड़ी का वह गहरा बरतन, जिसमें ढेंकी के मूसल से धान कूटा जाता है (द०-प० शाहा०, आज०)। दे०—ओखरी। (३) चूहे के बिल का मुख्य द्वार के अतिरिक्त एक गुप्त द्वार, जिससे होकर, कभी मौका पड़ने पर, निकल भागे (चंपा०)। (४) हाथी के पैर का एक रोग। इसमें हाथी के पैर में छेद हो जाता है (चंपा०)। [काण्ड, मिला०—काण्डाल (= बेंत या सींक की डाली)]


काँड़ी

काँधी—(सं०) कोल्हू के बैल के कुबड़ (ककुद) पर का टाट का गद्दा (पट०-४)। [कन्धा; कन्ध; स्कन्ध]

काँनी—(सं०) दे०—कान्ही।

काँसी—(सं०) फसल को पूर्णतः हानि पहुँचानेवाली एक प्रकार की घास (प० मैं०, पट०, गया, द०-पू०, पट०-४, मग०-५)। दे०—करसन। [काँस + ई (स्वा० प्र०) < *कास]

काउन—(सं०)—दे० काऊन।

काउर—(सं०) धान की दौनी में पुआल निकाल लेने के बाद बचा हुआ उसका महीन अंश (चंपा०-१)। [देशी]

काऊन—(सं०) बाजड़े की जाति का, सूक्ष्म दानोंवाला एक अनाज (द० मुं०)। दे०—टँगुनी। पर्या०—काउन (दर०, पूर्णि०-१), कौवनी (दर०, पूर्णि०-१)। [कङ्गु]

काकुट—(सं०) चारा काटने का एक औजार (पट०-२, पट०-४, मग०-५)। [देशी]

कागजी—(सं०) एक प्रकार का नींबू, जिसका छिलका पतला होता है (दर०, पूर्णि०-१, चंपा०-१, पट०-४, मग०-५, मैं०-२)। पर्या०—कागजी-लेम्बो (पट०-१)। [कागज + ई (अ०)]

कागजी लेम्बो—(सं०) (पट०-१)। दे०—कागजी। [कागजी + लेम्बो]

काग-बदन—(सं०) वह बैल, जिसका मुँह काला और शरीर उजला हो (पट०-१, पट०-४) [काग + बदन < काक + वदन]

काछ—(सं०) दलदल जमीन (सा०, मग-५)। दे०—झील। पर्या०—कछुई माटी (पट-४, मग०-५) [< *कच्छ]

काछल—(क्रि०)-(१) पोस्ते की फली में से अफीम का उठाना या संग्रह करना (उ० प०, द०-प० मैं०)। दे०—उठायल। (२) किसी तरल पदार्थ को किसी पात्र से, हाथ से या किसी पतली वस्तु से निकालना। [कषण]

काछुल—(वि०) वह मवेशी, जो काम करते-करते रुक जाता है या बैठ जाता है। सुस्त होता है तथा काम से जी चुराता है (चंपा०-१)। पर्या०—कोढ़िया, कदराह (पट०-४, मग०-५)। [< *कच्छ]

काटल—(क्रि०)—(१) तंबाकू या किसी पौधे के ऊपर का पत्ता काटना। दे०—पत्तातूरल। (२) किसी वस्तु को किसी तेज हथियार से काटना। (३) फसल काटना। पर्या०—लौनी करल (द०-प० शाहा०); छोलल (क्रि०) = ऊख काटना (उ०-प०); गेंडा करल (प०, पट०, गया, चंपा०, द० मुं०); घूर काटल (द० भाग०); पतौर पारल—ऊख काटने की प्रक्रिया (द० भाग०); कटनी, कटिया, लौनी—फसल की कटाई। कटनी = फसल के कटने का समय। [काटना (हिं०) < √कृती (छेदने)]

काड़ा—(सं०) भैंस का नर-बच्चा (पट०-४, मग०-५, भाग०-१)। पर्या०—काड़ी (स्त्री०) (पट०-४, मग०-५, भाग०-१)। दे०—पाड़ा। [< *कटाह; "कटाहः कूर्मकर्परे।" जायमानविषाणाग्रमहिषीशावकेऽपि च।"—(मेदि०)]

काड़ी—(सं०) भैंस का मादा बच्चा। दे०—काड़ा। [काड़ा + ई (प्र०), काड़ा < *कटाह]

काढ़—(सं०)—(१) हरिस में पाओ बांधने के लिए हरिस के नीचे की ओर का काटा हुआ अंश। दे०—खेंड़ा। (२) दे०—काढ़ा। [काढ< *कर्ष< √कृष्]

काढ़ा—(सं०) (१) कतरी के अंत में एक पच्चड़ से बँधी हुई रस्सी, जो बैल के कुबड़ (ककुद) से होकर फिर कतरी के एक छेद से बाँधी जाती है। (२) दे०—खेंड़ा। (३) बँधे हुए पानी के निकास के लिए खोदी गई नाली। पर्या०—कनभो (मुं०-१)। [< *कर्ष, < *कर्ष< √कृष्]

कातर—(सं०) ऊख के कोल्हू का वह समतल तख्ता, जिसपर बैल हाँकनेवाला बैठता है। पहले चौड़ा तख्ता होता था, किन्तु आजकल बीम-जैसी गोल लम्बी लकड़ी लगी रहती है। दे०—कातरि। [का+तर< *काष्ठ+तल, कर्तृ = काटनेवाला (हि० श० सा०)]

कातर—(सं०)—(शाहा०, द०-पू० मुं०, द० भाग०, प्र.ज०)। दे०—कतरी। [का+तर< *काष्ठतल, कर्तृ = काटनेवाला (हि० श० सा०)]

कातरि—(सं०)-(१) ऊख के कोल्हू का वह समतल तख्ता, जिसपर बैल हाँकनेवाला बैठता है। आजकल बीम जैसी गोल लंबी लकड़ी लगी रहती है। पर्या०—कातर, कातरी। (२) (शाहा०, द०-पू०मुं०, द० भाग०)। दे०—कतरी। [का+तरि< *काष्ठतल]

कातिक—(सं०) कार्तिक, भारतीय वर्ष का आठवाँ और शरद्-ऋतु का अंतिम महीना (अक्टूबर के अंत के और नवम्बर के आदि के प्रायः १५ दिन)। इस मास की पूर्णिमा को प्रायः कृत्तिका नक्षत्र हुआ करता है, अतः कार्त्तिक नाम पड़ा। [*कार्त्तिक< कृत्तिका< कृत्ति< √कृती (छेदने)+अण् (प्र०)]

कादँ—(सं०)—(भोज०)। दे०—कादो।

कादो—(सं०)-(१) धान रोपने के लिए खेत को पानी से भरकर इस प्रकार जोतने की प्रक्रिया, जिससे घास-पात न रहने पावे, जमीन खूब गीली तथा मुलायम हो जाय एवं पौधे आसानी से रोपे जा सकें (उ०-प०, मुं०)। दे०—लेव। (२) वह कीचड़, जिसमें धान की फसल होती है। पर्या०—कदोई, कदई। (३) कीचड़ (चंपा०-१, पट०-४, मग० ५)। पर्या०—कादों, कानो (भोज०)। [< *कर्दम]

कादो करल—(मुहा०) धान की बोआई के लिए खेत को तैयार करना। पर्या०—कदुवा करल, लेव करल (सा०), मसाह करल (चंपा०)। [कादो+करल< कर्दमी+< √कृ]

कान—(सं०)—(शाहा०)। दे०-कान्ह। [< *काण्ड, < *कर्ण, < *स्कन्ध]

कान, काना—(सं०) ढेंकुल के स्तंभ के ऊपर की शाखा, जिसपर ढेंकुल लटकता है। पर्या०—काना, कानी, कन्ना, कन्नी, दुकानी, दोकानी (चंपा०, द०-पू०)। [< *काण्ड, < *कर्ण, < *स्कन्ध]

कानर—(सं०)-(१) वह पहला उठान या जलाशय, जहाँ करीन आदि से पहले पहल पानी गिराया जाता है (उ०-पू० मुं०)। (२) वह कच्चा कुआँ, जिसको बाँस की पट्टी या ताल के पत्तों से बने घेरे से बाँध दिया जाता है, जिससे कि मिट्टी नीचे गिरने न पावे। वह घेरा 'ढोल' कहलाता है (मग०-५)। (३) खेत में अथवा नदी के किनारे नदी के पानी से संबद्ध खोदा गया छोटा कुआँ (पट०-४)। [< *कन्दर(?) स्कन्ध]

काना—(सं०)-(१)—(पट०, मुं०, द० मुं०, चंपा०-१)। दे०—कनवा। [देश०] (२)-(मुं०, पट०, पू०)। दे०—कनवाँ। (३) कीड़ा लगा हुआ ऊख का पौधा (पट०)। दे०—सीना। (४) दे०-कान। (५) कनहा—(वि०) वह फल जो भीतर से सड़ा हो (मुं० १)। [< *काण, कर्ण, स्कन्ध]

कानी, कन्ना—(सं०)-(१) कुएँ के ऊपर लगे खंभे की एक शाखा (नोक), जिसपर घिरनी चलती है। (२) कोंपल, पेड़-पौधों की नई शाखा (मुं०-१, पट०-४, मग०-५) मुहा०—कानी निकलल या फूटल—नई कोंपल निकलना, नई शाखा निकलना। [< *काण्ड, < *स्कन्ध]

कानी, कन्नी—(सं०)—(पट०-४, मग०-५ मुं०-२)। दे०—कान। [< *काण्ड, < *स्कन्ध]

कानी हाउस—(सं०) दे०—काँजी हाउस, अड़गड़ा।

कानू—(सं०)—(१) कोल्हू के लिए ऊख के लंबे-लंबे टुकड़े काटनेवाला व्यक्ति (द० मुं० सा०)। टि०—ऊख को काटकर पेरने की प्रक्रिया पहले थी। लोहे के कोल्हू का प्रचलन होने पर आजकल तो समूचा ऊख कोल्हू में लगाया जाता है। पर्या०—पतबाह (चंपा०), गेंड़िकाटा (प०), अँगरवाह (प०), टोनकट्टा (कहीं-कहीं), टोनिकट्टा (द०-प० मुं०), मजूरा (उ०-प० मुं०), जन (उ०-पू० मुं०)। (२) एक विशेष जाति, जो भूँजा भूनने का व्यवसाय करती है। पर्या०—कनुइन, कनुनियाँ, कानुन (स्त्री०)। [< *कान्दविक< *कन्दु]

कानो—(सं०) कीड़ा लगा हुआ ऊख का पौधा (द० भाग०)। दे०—सीना।

कानो—(सं०)—(भोज०)। दे०—कादो। [काण, कर्दम]

कानो-किच्चड़—(सं०) किसी पोखरे के तल की पंकिल जमीन (प०)। दे०-तरी। [कानो+किच्चड़, < कादो+कीचड़ (हि०)< *कर्दम+कच्छ]

कान्ह—(सं०)—(१) ऊख के कोल्हू के पेट में रहनेवाले मोहन (जाठ) के मूँड़ के ऊपर का कटा हुआ भाग। पर्या०—कंधा (गं० उ०, पट०), कन्हिया (उ०-प० मुं०), पंजा (द०-पू० मुं०), कान या लोंगरा (शाहा०), मोहनथम्भा (गया), ढेंका (द० मुं०)। (२) कोल्हू के जाठ (मोहन) के ऊपर का कटा हुआ भाग। कन्धा। [< *काण्ड, < *स्कन्ध] टि०—आजकल ऊख पेरने के लिए लोहे के कोल्हू के प्रचलन के बाद तेल के कोल्हू की तरह उस कोल्हू में जाठ आदि नहीं होते हैं, बल्कि सभी पुरजे लोहे के होते हैं।

कान्ही—(सं०)-(१) ऊख के रोपने में प्रयुक्त दो हलों में से पिछले हल में चारों ओर से बँधा हुआ घास का बंडल, जो हल से किये गये कटाव (सिराउर) को विस्तृत करता है (प०)। पर्या०—काँनी, कान्हीं के हर। (२) पोखर या नदी का खड़ा किनारा (चंपा०-१)। [< *स्कन्ध, < *काण]

कान्ही के हर—(सं०)—(प०)। दे०—कान्ही। [कान्ही+के+हर]

काबिल लगान—(वि०) वह जमीन, जिसकी मालगुजारी लगती है, लगान लगने के योग्य। (सा०-१)। [काबिल+लगान]

काबिस—(सं०) लाल मिट्टी (द० प० शाहा०, प्राज०)। दे०—ललकी मिट्टी। पर्या०—गाबिस (चंपा०, मुं०-२)। [< *कपिश]

कामत—(सं०)—(१) घर से दूर की जमीन की देखभाल और व्यवस्था के लिए उसी स्थान पर बनाई गई छावनी, जहाँ किसान या उसका प्रतिनिधि, माल-मवेशी और खलिहान आदि होते हैं। एक तरह की जिरात या जागीर की जमीन (सा०-१)। [संभ०—< 'कमान'—(नेपा०), < कमाना (हि०) ?]

कामती—(सं०) खेत खलिहान में मजदूर से काम करानेवाला कमादार (द० मुं०)। [कमाना (हि०) < *कर्मन्]

कामदार—(सं०) मिल में नियुक्त वह कर्मचारी, जो मिल की ओर से गाँवों में घूम-घूमकर कृषकों को विशेष ऊख का प्रचार-प्रसार, उसके गुण, खेती का प्रकार, कोड़नी सिंचाई और खाद डालने आदि का ढंग सिखलाया करता है (रो०, मग -५)। [काम (हि०)+दार (फा० प्र०)]

कारपरदाज—(वि०)-(१) सरकारी मालगुजारी वसूल कर राजकोष में जमा करनेवाला। दे०—लमरदार। (२) अदालत में जाकर अपना या किसी दूसरे का मुकदमा देखनेवाला व्यक्ति (मग०-५, अन्यत्र भी)। [कार+परदाज (फा०); मिला०—कार< कार्य]

काराबोगहा—(सं०) छींटकर (बावग) बोया जानेवाला निकृष्ट प्रकार का काला धान (पट०)। दे०—ललगोंदिया। [कारा+बोगहा, कारा< काल; बोगहा (संभ०)< वावग]

कारी, करिया—(वि०)—(१) काली उड़द (शाहा०, द०-पू० मुं०)। दे०—डंगा। (वि०) काला. काले वर्ण का अनाज, पशु आदि। [कारी< काली< *काल]

कारीबाँक—(सं०)—(१) एक उत्कृष्ट कोटि का धान, जो काले रंग का होता है और जिससे विशेष प्रकार की सुगंध निकलती है (पट०-१, पट०-४;* मग०)। (२) रोपा जानेवाला

एक प्रकार का धान (द० मुं०)। [कारी+बाँक<कारी<काल; बांक<बंक<वक्र]

कारू—(सं०) एक प्रकार की घास (दर०, पूर्णि०-१, आज०)। [देशी]

काला—(सं०) काली उड़द (गया)। दे०—डंग। (वि०) काले वर्ण की वस्तु। [<*कालक]

कालाकंद—(सं०) एक प्रकार का धान (चंपा०-१)। पर्या०—कलाकंद (मग०-५)। [काला+कंद <*कलाकंद (?)]

कालागीर—(सं०) एक प्रकार का धान, जो फाल्गुन-चैत में बोया जाता है और अगहन में काटा जाता है (उ० पू० मैं०)। दे०—अकाल-वीर। [देशी (?), मिला०—कालगिरि]

कालापहाड़ आम—(सं०) एक प्रकार का आम। यह बड़ा और काला होता है (पट०-१, चंपा०)। [काला+पहाड़+आम]

काश्तकार—(सं०) दे०—असामी। [काश्त+कार (फा०); मिला०—कार (संस्कृ०) <√कृ]

काश्तकारी—(सं०) वह जमीन, जिसकी लगान जमींदार को देकर उसपर स्वत्व प्राप्त किया गया हो (सा०-१, पट०-४, मग०-५, मैं०-२, भाग०-१, चंपा०)। [काश्त+कार+ई (प्र०) (फा०)]

कास—(सं०)—(१)—(शाहा०, उ० बि०)। दे०—कनसन। (२) शरद् ऋतु में फूलने-वाली एक प्रकार की कुश की जाति की घास। [काश, कास]

कासचराई—(सं०) चरागाह के मालिक को दिया जानेवाला शुल्क (मैं०, पट०, पू०, मग०-५)। दे०—खरचरी। [कास+चराई]

कासनी—(सं०) एक प्रकार का पोधा, जिसका उपयोग औषधों में होता है। [कासनी (फा०)]

काहचराई—(सं०)-(मैं०, पट०, पू०)। दे०—खरचरी। [काह (फा०)+चराई (हि०) < चराना; काह<कास (संस्कृ०)]

काहू—(सं०) एक प्रकार का पौधा, जिसका बीज औषधों में प्रयुक्त होता है (पट०, गया, मग०-५)। [फा०]

किआली—(सं०)—(१) गाड़ीवानों के द्वारा प्रति लदनी जमींदारों को दिया जानेवाला यातायात-शुल्क (उ०-पू० मैं०, चंपा०)। (२) अन्न-विक्रेता की तौल पर निर्धारित कर। पर्या०—केयाली, वरदाना (पट०)। टि०—कभी-कभी, गाड़ीवान गाड़ी लेकर जहाँ-जहाँ रात बिताते थे, वहाँ-वहाँ भी यह शुल्क लिया जाता था। [(देशी); मिला०-किराट = वनिया (मो० वि० डि०)]

किचराइल—(क्रि०)—(१) आकाश में यत्र-तत्र मेघ का नजर आना (चंपा०-१, पट०-४)। (२) आँख से कीचड़ निकलना (चंपा०-१)। [किचर+आइल (प्र०) <कीचड़ (हि०)]

किछार—(सं०) नदी या पोखरे का किनारा (चंपा०-१, पट०-४, मग०-५)। [किछार<कछार <*कच्छ]

कित्ता—(सं०)—(१) खेती की हुई भूमि का एक बड़ा भाग (पट०, पट०-४, मग०-५, मैं०-२, भाग०-१)। दे०—खंध। (२) भू-स्वामी का गाँव में बिखरा हुआ खेतों का प्रत्येक टुकड़ा। दे०—तखता। [कत (अ०)]

किनल—(क्रि०) खरीदना। दे०—कीनल। [क्रयण<√क्री (=क्रीणाति), किनाति (पा०), किणइ (प्रा०), किनना (हि०), किन्नु (नें०), किना (बं०), किनिवा (ओ०), कनुन (कश्म०), किनेल (रोमा०)]

किनावल—(क्रि०) किनल क्रिया का प्रेरणार्थक। खरीदवाना।

किनार—(सं०) नदी आदि का किनारा।

कियारा—(सं०) ऊख के खेत में बनी हुई कियारी (पू० मैं०)। दे०—हातावाला। [<*केदार]

कियारी—(सं०) (१) सींचने या बोने आदि की सुविधा के लिए खेतों में बने हुए जमीन के छोटे-छोटे टुकड़े। पर्या०—घड़ारी (चंपा०), गँड़ारी (पट०, द०-पू०), गेँड़ारी (गया)। (२) खेत पटाने के लिए खेत में बनी हुई नाली (बिहा०, आज०)। पर्या०—केआरी (द० भाग०)। [<*केदार]


कियारी

कियाल—(सं०) अनाज की तौल-जोख करने-वाला (मुं०-१)। [मिला०—किराट (रा० त०) =बनिया। मिला०-काकिनी—"काकिनी पणपादेऽपि मानपादे वराटके"—(मेदि०)]

कियाली—(सं०)—(१) गाड़ीवानों द्वारा प्रति लदनी जमींदारों को दिया जानेवाला यातायात-शुल्क (उ०-पू० मैं०)। (२) अनाज आदि तौलने का काम या उसकी मजदूरी (द० मुं०-१)। (३) अन्न-विक्रेता की तौल पर निर्धारित कर। पर्या०—केयाली, वरदाना (पट०)। टि०—कभी-कभी गाड़ीवान गाड़ी लेकर जहाँ रात बिताते थे, वहाँ भी यह शुल्क लिया जाता था। [(देशी०), मिला०—किराट (रा० त०) =बनिया, काकिनी—"काकिनी पणपादेऽपि मानपादे वराटके"—(मेदि०)]

किराइल—(वि०) कीड़ा लगा हुआ (सा०-१)। पर्या०—खराब, पिलुआइल, घुनाइल। [किर+आइल (प्र०) <*कीट]

किराइल—(क्रि०)—(१) कीड़ा लगना (चंपा०-१)। [किरा+इल (प्र०) <कीट]

किराना—(सं०) पसरहट्ट की वस्तुएँ, फुटकर विक्रय-पदार्थ (चंपा०-१, पट०-४, मग०-५)। [∠*क्रीर्ण]

किराया—(सं०)—(१) जमींदार की ओर से अन्नविक्रेता की नाप पर निर्धारित कर (गया)। दे०—कौड़ी। (२) किसी वस्तु या मकान आदि का भाड़ा। [अ०]

किरौना—(सं०) एक उड़नेवाला दुर्गन्धयुक्त कीड़ा, जो फूल होने के पहले ही ज्वार आदि पर प्रहार करता है (द० प० शाहा०)। दे०—गाँधी या गंधी। [किर+औना (प्र०, देशी) <*कीट]

किरौयाँ—(सं०) एक प्रकार का अन्न (दर०, पूर्णि०-१)। [देशी]

किर्री—(सं०) मकई, मटर आदि का अधफुटा चबेना। पर्या०—बजड़ी (मुं०-१, मग०-५, भाग०-१), दुर्री, ठोर्री (पट०-४, मग०-५, चंपा०, मैं०-२)। [(देशी), मिला०—खिल (संस्कृ०)]

किल्ला—(सं०)—(१) (द०-पू० मैं०)। दे०—अखौता। (२) पानी पटाने के काम में आने-वाले लाठे के पिछले भाग के अंत में लगी कील, जिसके सहारे मिट्टी आदि का भार बाँधा जाता है (पट०, द०-पू. पट०-४, मग०-५)। (३) मवेशियों को बाँधने के लिए लकड़ी या बाँस का बना छोटा स्तंभ (खूँटा), जो जमीन में गड़ा रहता है। दे०—खूँटा। (४) जाँता के दोनों पाटों के बीच के छेद में लगा खूँटा। (५) कुम्हारों के चाक की धुरी (प०, पट०-४, चंपा०, मग०-५)। दे०—कीला। [∠*कील, ∠*कीलक (संस्कृ०), कील (पा०, प्रा०), कील, किल्ली (हि०), किलो (नें०), कील (बं०), कीला (ओ०, कीलिवा (ओ० क्रि०) = कील ठोंकना; कीरु, कीरे, कीरी (सिं०), कील्ला, कील्ली (पं०), किल्ल, किल्ली (ल०), कीली (गु०), किल्ली, कील (मरा०), क्युलु (काश्म०), किलो (रोमा०)]

किल्ला

किल्ली—(सं०)-(१) लकड़ी की कील या खूँटी, जिससे मोट रस्सी में बाँधा जाता है। पर्या०—गुल्ली। [कील, कीलक] (२) कूँड़ में आर-पार लगी हुई फट्ठी, जिसमें रस्सी बाँधी जाती है। पर्या०—गुल्ली, रनकिल्ली, पुल्ली (द० भाग०)। (३) एक पच्चड़, जो अपनी जगह पर 'कड़हड़ी' को कसे रहता है। दे०—फरकिल्ला। [कील, कीलक, खील]

किसन अरपन—(सं०) कृष्ण की पूजा के निमित्त अर्पित कर-मुक्त भूमि। दे०—संकल्प। [किसन+अरपन<*कृष्णार्पण]

किसमिस—(सं०) एक प्रकार का सूखा और मीठा मेवा, जो अंगूर को सुखाकर बनाया जाता है। यह कश्मीर, बलूचिस्तान, पाकिस्तान के पश्चिमी सीमांत प्रदेश और अफगानिस्तान के इलाके में होता है। [किशमिश (फा०)]

किसमिसिया—(सं०) वह बैल, जिसका रंग किशमिश की तरह हो (पट० १)। [किसमिस+इया (प्र०)<किशमिश]

किसान—(सं०) कृषि-कार्य करनेवाला, खेती-बारी करनेवाला। [कृषाण, कृशानु (सायण); किसान (हि०, पं०), किसान (मरा०), किसान (नें०), मिला०—कस (सिंहा०)<कर्षक]

किसानी—(सं०) किसान का काम।

किसुनपख—(सं०) चांद्रमास के पंद्रह दिनों का एककालिक परिमाण, जिसमें चंद्रमा की कला घटती रहती है, कृष्णपक्ष। दे०—पख। [किसुन+पख, पक्ख <*कृष्ण-पक्ष]

किसुनपच्छ—(सं०) दे०—किसुनपख।

किसुनभोग—(सं०) एक प्रकार का आम, जो बड़ा, कुछ गोलाकार और गुद्देदार होता है (पट०-१, चंपा०-१, पट०-४, मग०-५, मुं०-२, भाग०-१)। [किसुन+भोग<*कृष्ण भोग]

किसोरी—(सं०) एक जंगली फल, जिसकी तरकारी होती है (पट०-१)। पर्या०—केसौरी (मग०-५)। [देशी, मिला०—किशोर (?)]

किस्त—(सं०) निश्चित मुनाफे के साथ निश्चित समय पर दिये जानेवाले कर्ज का कुछ निश्चित अंश। पर्या०—किस्तबंदी। [क़िस्त-(अ०)]

किस्तबंदी—(सं०)-दे०—किस्त। [किस्त+बंदी <किस्त (अ०)+बंदी (फा०); मिला०—बंद <बंध (संस्कृ०)]

कींच—(सं०)-(१) किसी पोखरे के तल की गीली जमीन (शाहा०)। दे०—तरी। (२) जल के नीचे की अथवा जल सूख जाने पर की गीली मिट्टी। (३) गीली मिट्टी, कादो, पंक। [कींच <कीच,<कीचड़ (हि०)<*कच्छ]

कीनल—(क्रि०) खरीदना (सा०-१, चंपा०-१, द० मुं०-१, पट०-४, मग०-१, मुं०-२, भाग०-१)। दे०—किनल। (वि०) खरीदा हुआ। [क्रयण <√क्री]

कीरी—(सं०) कृमि का एक भेद (चंपा०-१, पट०-४, मग०-५)। पर्या०—कीरो (द० भाग०)। [<*कीट <*किरी (संस्कृ०), कीट, कीटक (पा०), कीड, कीडअ (प्रा०), कीड़ा, कीड़ी (हि०, पं०, ल०), कोड़ो, कोड़ी (गु०), कीड़ा, किरा (बं०), कीड़ (मरा०), किरो (नें०, कुमा०), कीरो (सिं०), किरी (रोमा०)]

कीरो—(सं०)—(द० भाग०)। दे०—कीरी। [<*कीट, <*किरि]

कील—(सं०) धुरी के अंत में पहिये के बाद लगी हुई कील, जो पहिया को गिरने से बचाती है (शाहा०)। दे०—धुरकिल्ली। [<*कील, <*कीलक]

कीला—(सं०) चाक की धुरी। पर्या०—किल्ला (प०, दर०-४, मग०-५), खूँटी या खुट्टा (पू०), सिल्ला (द० भाग०)। [<*कील, <*कीलक]

कुँआ—(सं०) जल की प्राप्ति के लिए खोदा हुआ गोलाकार गहरा गड्ढा, जिसमें जल रहता है (चंपा०-१)। [कूप]

कुँजड़ा—(सं०) तरकारी बेचनेवाले मुसलमानों की एक जाति (पट-४, मग०-५, मुं०-२, चंपा०, भाग०-१)। पर्या०-कुजड़ा (दर०-१, पूर्णि०-१)। [कुँज+ड़ा (प्र०) <*कुञ्ज=निकुञ्ज, <*कुञ्ज <*कुञ्चिका=गुंजा, सोया-जाति का शाक (मो० वि० डि०)। काची (मरा०), काछियो (गु०); <कच्छ; मिला०-कुंज (फा०)]



कुँजड़ा

कुंड—(सं०) ऊख पेरने के कोल्हू का वह खोखला भाग, जिसमें ऊख पेरा जाता है (पू०)। दे०—खान। [कुण्ड]

कुँड़मुंदन—(सं०) बावग के अंतिम दिन का एक उत्सव, जिसमें किसान खेतों में से थोड़ा-सा बचाकर बीज लाकर एक कूँडे में डाल देता है, तत्पश्चात् अनेक प्रकार का भोजन तैयार कराता है और सभी लोगों के साथ मिलकर खाता-पीता है। पर्या०—कुँड़मूनन, हर-सोधन (चंपा०)। [कुँड़+मुंदन<कुंड +मुद्रण]

कुँड़मूनन—(सं०)-दे०—कुँड़मुंदन। [कुँड़ +मूनन∠कुंड+मुद्रण]

कुंडा—(सं०)—(१) वह बरतन, जिसमें ऊख का रस चूता है (शाहा०, प०-मुं०, पट०, पट०-४)। दे०—छोरा। (२) चावल की महीन भूसी। [कुण्ड]

कुँड़ा—(सं०) चावल की महीन भूसी। [कुण्ड]

कुँड़िआ चास (१) (सं०)—कुएँ से पटाई जाने-वाली भूमि (द० भाग०) पर्या०—मोटवाही (प०)। [कुँड़िया+चास; कुँड़िया<*कुंड; चास (देशी)]

कुँड़ियाठी—(सं०) (गं० उ०)। दे०—कनेठी। [कुँड़िया+ठी, आठी (प्र०); यथा-भुजनाठी= भूँजने की सींकी का बंडल अथवा लुकाठी। अथवा ठी, आठी< *आवेष्ट. ग्रंथि]

कुँड़ी—(सं०)—दे० कूँड़।

कुंडी—(सं०) (१)—ढेंकुल (लाठा) में लगा हुआ, पानी निकालने के लिए मिट्टी या लोहे का पात्र। दे०—कूँड़। (२) हेंगा खींचने के लिए रस्सी की जगह पर काम में लाई जानेवाली बाँस की लग्गी (द० मुं०)। पर्या०—बँसजोती (द० भाग०), अरौआ। (३) किवाड़ के दोनों पट्टों को बंद करने के लिए सिकड़ी लगाने के निमित्त चौकठ में जड़ी कील। [(देशी) मिला०—कुंडी (हि०), <*कुण्ड]

कुंद—(सं०) चंपा की जाति का एक फूल, कुमुद (दर०-१, मग०-५)। [<*कंद]

कुंदरी—(सं०) तरकारी के काम में आनेवाली एक फली (मुं०-१, पट०-१, पट०-४ मग०-५, मुं०-२, चंपा०, भाग०-१)। [कुन्दुरु]

कुआँ—(सं०) गहरा खोदा हुआ गोलाकार (कच्चा या पक्का) गढ़ा, जिससे पानी निकाला जाता है। (बिहा०, आज०)। दे०—कुँआ। [कूप]

कुआर—(सं०) आश्विन, भारतीय वर्ष का सातवाँ तथा शरद् ऋतु का पहला महीना। (अधिकतर सितम्बर के अंत और अक्टूबर के आदि के प्रायः १५ दिन)। दे०—आसिन। [कुमार (?)]

कुआरी—(सं०) आश्विन में काटा जानेवाला एक धान। पर्या०—असनी (पट -४, मग०-५)। [कुआर+ई (प्र०)<कुमार (?)]

कुइयाँ—(सं०) दे०—कच्चा। [कु+इयाँ (अल्पा० स्त्री०) <कुआँ+इयाँ< *कूप]।

कुकरौंधा—(सं०)—(१) एक पशु-खाद्य घास। इसका दवा में भी प्रयोग होता है (पट०-४, मग०-५, मुं०-२)। [कुकुर+औंधा< *कुक्कुरद्रु]

कुकाठ—(सं०) लकड़ी का वह कुंदा, जिसपर ऊख काटा जाता है (पट०)। दे०—निसुहा। पर्या०—कुकाठी (पट०-४)। [कु+काठ <काष्ठ]

कुकाठी—(सं०)—(पट०-४)। दे०—कुकाठ। [कुकाठ+ई (प्र०)-(देशी) वा<कुकाष्ठ (?)]

कुकुढी—(सं०) कपास में लगनेवाला एक प्रकार का कीड़ा (सा०, मुं०)। [(देशी), मिला०—कुरूरु=एक प्रकार का कीड़ा (मो० वि० डि०)]

कुकुरौना—(सं०) एक प्रकार की घास (चंपा० १)। दे०—कुकरौंधा [कुकुरौना< कुकुरौंधा< *कुक्कुरद्रु]

कुकुसा—(सं०) एक पशु-खाद्य घास (द०-प० शाहा०)। [(देशी), कु+कुसा<कुश (?)]

कुकुही—(सं०) हेमंतऋतु के अनाज को नष्ट करने-वाला एक कीड़ा (उ०-प०)। [<*कुक्कुभी]

कुचा—(सं०) कच्चे आम को कुँच कर बनाया हुआ अँचार या खटाई (पट-०१, पट०-४, मग०-५, चंपा०, द० भाग०)। [कूचल (बिहा०), कूचना (हि०) <√कुट्ट (?)]

कुटकटना—(सं०) लकड़ी का कुंदा, जिसपर गँड़ासी से चारा काटा जाता है (मग०-५)। दे०—ठेहा। [कुट+ कटना <कुट< कुट्टी; कटना< काटल (बिहा०) <काटना (हि०)]

कुटका—(सं०)—(१) शारदीय फसल (मकई आदि) का डंठल (गं० उ०)। दे०—डांठ। (२) विभिन्न जड़ी-बूटियाँ, जिनसे प्रसूता के लिए पौष्टिक औषधि बनाई जाती हैं। (दर०)। [कुटक= डंठल, काण्ड—(मो० वि० डि०)]

कुटकी—(सं०) अन्न के पौधे की डांठ का छोटा-छोटा टुकड़ा (चंपा०-१, मुं०-२)। [कुटक+ई (अल्पा० स्त्री० प्र०) <कुटक]

कुटकुर—(सं०) सूखी हुई जमीन (शाहा०-१)। [देशी]

कुटरी—(सं०)—(द० भाग०)। दे०—कुट्टी। [√कुट्ट वा<*कृत्त<√कृती (छेदने)]

कुटिया—(सं०)-(१) घास, फसल की डंठल आदि का कटा हुआ पशुओं का महीन खाद्य (द० भाग०)। दे०—कुट्टी। [कुट्टी<कुट्टित< √कुट्ट, कुट, वा< *कृत्त< √कृती (छेदने)] (२) खर-पात की बनी झोपड़ी, साधुओं का मठ। [कुट+इया (प्र०) <कुटी]

कुटियावल—(क्रि०) घास-पात काटकर कुट्टी

बनाना (मुं०-१, भाग०-१)। [कुटिया+आवल <कुट्टी < √ कुट्ट, वा< *कृत्त < √ कृती (छेदने)]

कुट्टी—(सं०) घास या फसल की डंठल आदि का काटा हुआ पशुओं का महीन खाद्य । पर्या०—कुटिया, कुटरी (द० भाग०), कट्टा (पट०), लेदी (चंपा०) । [< √कुट्ट वा< *कृत्त< √कृती (छेदने)]

कुठाँव—(सं०) दौनी करने के बाद ओसाने के लिए रखे हुए भूसा और अनाज मिले हुए अन्न की राशि (पट०, उ०-प० बिहा०) । दे०—सिल्ली । [*देशी, मिला०—कूट = अन्न की राशि*]

कुडँड़िया—* (सं०) ऊख या तेल के कोल्हू में लगे जाठ के ऊपर घूमनेवाले टेढ़े भाग और कतरी से लगा हुआ बाँस का टुकड़ा । दे०—खेरचाँड़ी । [<*कुंड, < *कुंडल (संस्कृ०), कुंडी (हिं०)]

कुड़—(सं०) एक प्रकार का धान (चंपा०-१) । [(देशी), मिला०—कुड़ (हिं०) < कूट = *अन्न की राशि*, कुट = औषधि]

कुड़दहिना—(सं०)—(१) हेंगा में बाईं ओर में बहनेवाला बैल । दे०—पंचौट । [कुड़ + दहिना; कुड़ (प्रा०), कुट (संस्कृ०) = हाथी वगैरह के बाँधने की रस्सी । कुटक, कूट (संस्कृ०), हल, बिना हरीस का हल। दहिना < दक्षिण] (२) मेंह के पास घूमनेवाला समूह का सबसे छोटा और दुर्बल बैल (गया) । दे०—मेंहियाँ बैल । पर्या०—मेंहा (चंपा०) । [कुड़ + दहिना, मिला०—कुंडल = रस्सी का बना गोल घेरा; कुंड (प्रा०), कुट (संस्कृ०) = हाथी वगैरह के बाँधने की रस्सी (पा० स० म०); दहिना ∠ दक्षिण]

कुड़हरि—(सं०) कुल्हाड़ी (दर०, पूर्णि०—१) । पर्या०–टेङारी (मं०-२, चंपा, पट०-४), टेंगारी। टंङुली (मग०–५, चंपा०) । [<*कुठार]

कुड़ि—(सं०) लकड़ी का बना पानी पटाने का एक साधन (दर०–१) । [कुंड]

कुड़ी—(सं०) दे०—कुड्डी ।

कुड्डी—(सं०) अन्न आदि की रखी हुई छोटी-छोटी राशि या ढेर । पर्या०-कुद्दी (पट०-४), कुड़ी (चंपा०, मं०-२, पट०-४) । [< *कूट (संस्कृ०), कुड़ (हिं०)]

कुत—(सं०) कूतने की प्रक्रिया ।

कुतल—(क्रि०)—(१) खेत की फसल के परिमाण करना और मूल्य का निर्णय करना, कूतना (दर०-१) । पर्या०—कन करना । (२) किसी वस्तु का मूल्यांकन करना। [मिला०–√कुत = फैलना (मो० वि० डि०), कुत्त (प्रा०) = किराया । कूतना (हिं०), कूत (कुमा०) या कुत् (ने०) = जमीन को लगाना । कुत (ओ०) = किराये पर देना]

कुतुरूम—(सं०) सन की जाति का एक पौधा, जिसकी छाल के रेशे से बोरा आदि बनाने के लिए सुतली बनाई जाती है । इसके फूल कुसुम की तरह होते हैं । दे०—पटुआ । [(देशी), मिला०—कुन्दर = एक प्रकार की घास; कुन्दरिका = एक पौधा (मो० वि० डि०)]

कुदरम—(सं०) एक छोटा-सा पौधा, जिसके फल की चटनी होती है (पट०-१) । [देशी]

कुदरुम—(सं०)—(द० भाग०) दे०—कुतुरुम, पटुआ । [(देशी), मिला०—कुन्दर = एक प्रकार की घास, कुन्दरिका = एक पौधा (मो० वि० डि०), कुदरूम, (संता०)]

कुदार—(सं०) फावड़ा, कुदाल, मिट्टी खोदने का एक हथियार (मं०, आज०) । दे०—कुदारी, फौरा। [< *कुद्दाल, < *कुद्दार, < *कुद्दालक, * < कुदाल < कु + √दल + अ (< घञ्)]

कुदारी—(सं०)—(१) जमीन कोड़ने के लिए लोहे का बना चौड़ा और तेज धार का एक औजार, जिसमें लकड़ी या बाँस की बेंट लगी रहती है । पर्या०—कोदारि या कोदारी, कोदार (चंपा०), कुदाली (गं० द०), कुदाल और कुदार, ठेंठी कोदार (द० भाग०, चंपा०)



कुदारी

[< *कुद्दाल, < *कुद्दार, < *कुद्दालक; कुदाल (संस्कृ०), कुद्दालको, कोदालो (पा०), कुद्दाल, कोद्दालिया (प्रा०), कुदाल (हिं०),

कोदाल (बं०, असo), कोदाल (ओ०), कोदारि (सि०), कोदालो (गु०), कुदाल, कुदाला (पं०), कुदल (मरा०), कोड़ालि (ब्रा०) < कुठार (?), कुड़ि (संता०)] (२) सन के रेशों में बचा रह गया छोटा-छोटा डंठल (उ०-पू० मै०) । दे०—गुदरी । [देशी]

कुदाल, कुदार—(सं०) दे०—कुदारी । [< *कुदाल, < *कुद्दालक]

कुदाली—(सं०)—(गं०-द०) । दे०—कुदारी ।

कुदुरूम—(सं०) —(शाहा०-१) । दे०—कुदरुम । [देशी]

कुद्दी—(सं०) अन्न का छोटा ढेर (द० मुं०, पट०-४, मग०-५)।—लगावल (मुहा०) = छोटा-छोटा हिस्सा लगाना, भिन्न-भिन्न व्यक्तियों में किसी चीज को बाँटना । [मिला०—कूट = राशि, कुद्य = कुड्य = दीवाल]

कुनरी—(सं०) एक प्रकार का पौधा, जिसका फल व्यंजन में प्रयुक्त होता है । [< *कुन्दुरु]

कुब्बी—(सं०) (१)—(द० भाग०) । दे०—अब्बी । (२) निष्फल बीज (द० भाग०) मिला०—सुग्गी । [कु + ब्बी < कुबीज]

कुमुदनी—(सं०) एक प्रसिद्ध जलीय फूल, कुमुद (दर०-१, पट०-४, मग०-५)। [कुमुद, कुमुदिनी]

कुमुदसार—(सं०) महीन धान का एक भेद (मुं०-१) । [< *कुमुदशालि]

कुम्हड़—(सं०) कोंहड़े की जाति का एक श्वेताभ फल, जिसका उपयोग मिठाई, मुरब्बा आदि के बनाने में होता है (प०) । दे०—भतुआ । पर्या०–सजकुम्हड़ (मं०-२), सीसकोहँड़ा (चंपा०, भाग-१) । [< *कुष्मांड]

कुम्हिलाइल—(क्रि०) किसी फल-फूल का धूप में पड़ने या पेड़ से टूटने के बाद कुछ-कुछ सूखने लगना (चंपा०-१) । [कुम्हिल + आइल (प्र०) < कुम्हिल, कुम्हलाना (हिं०) < कुम्हलान (हिं० श० सा०), < *कुम्मिल = एक प्रकार का विषकीट; मिला०-कूष्मांड = बच्चों का एक रोग, जो कूष्मांड प्रेतों के कारण होता है और जिसमें बच्चे सूख जाते हैं । कुम्लाउनु (ने०), कुम्मण (देशी०), कुमावण (ल०), कूमाइजाणु, कूमातिजाणु (सि०), कोमणे (मरा०)]

कुम्हेस—(सं०) –(द०-पू० मं०) । दे०—कूहा । [मिला०—कुहेला, कैहेडिका, कुहेडा]

कुरकुट—(सं०) पुआल का भूसा (चंपा०-१) । [< *कुकूल]

कुरखेत—(सं०) (१) जोता हुआ वह खेत, जिसमें कुछ दिनों से हल नहीं चलाया गया हो (चंपा०)। (२) खेतीबारी । [कुर + खेत < *कृष्टक्षेत्र < *कृष्य क्षेत्र < * कृत क्षेत्र]

कुरताली—(सं०)—(१) किसान और दूसरे छोटे किसान के बीच बटाई पर की गई खेती की फसल का निश्चित परिमाण में विभाजन (द० भाग०, मुं०-१) । [कुरत + आली < कृत + अर्ध < *कृतार्ध अथवा * कृताधिक या कृष्टार्ध, कृष्टाधिक] (२) फसल के आधे-आधे या ९/७ के बँटवारे की शर्त पर जमीन जोतना । अधबँटैये पर जमीन को उपजाने के लिए लेना (मुं०-१) ।

कुरताली करल—(मुहा०) कुरताली की शर्त पर दूसरे किसान का खेत लेकर खेती करना ।

कुरथी—(सं०) एक प्रकार का दलहन, जो थोड़ा लाल होता है और बड़ा कड़ा होता है । [< *कुलत्थ, < *कुलत्थिका (संस्कृ०), कुलत्थ कुलत्था (पा०, प्रा०), कुरथी, कुलथी (हिं०), कुर्थि (ने०), कुलत्था (बं०) = जंगली कुर्थी । कुल्थ (पं०), कुल्थी (पं०, सि०)]

कुरथौली—(सं०) साधारण काश्तकारों के नीचे एक छोटा रैयत । दे०—सिकमी । [दे०—कुरताली]

कुरदन—(सं०)—(१) (पट०)। दे०—ओखरी । (२) मिट्टी का बना ओखर (पट०-४, मग०-५) । [(देशी), मिला०—कुण्ड, कुंडकंठ = घड़ा—जैसा पात्र । कुटंक = कोटर (पा० स० म०), कूट = पात्र, छिपी वस्तु

कुराव—(सं०) वह परती जमीन, जो पहली बार जोती जाती है (द०-पू०) । दे०—खील ।

[(देशी०), मिला०-कुराय (हिं०), कुरा (प्रा०) =अकर्म, भूमिविशेष (पा० स० म०), मिला०—कुराँउ (संता०) = वह परती जमीन, जिसमें जंगल काटकर विना जोते बीज बोया जाता है]

कुर्की—(सं०) कर्जदार या अपराधी की जायदाद की, ऋण या जुरमाने की वसूली के लिए, सरकार द्वारा की जानेवाली जब्ती (सा०-१, चंपा०-१, पट०-४, मग०-५, भाग०-१)। [कुर्क (अ०)]

कुलहर—(सं०)—(१) अगली वर्षा में बोने के लिए माघ महीने में की जानेवाली जमीन की जोत (द०-प० शाहा०) । दे०—माघड़ जोतल । (२) वह जमीन, जो एक बरसात से दूसरी बरसात तक केवल जोती ही जाती है तथा दूसरी बरसात में उसमें धान का बीज बोया जाता है (द०-प०)। दे०—दोतरा चौमास । [देशी]

कुलिचा—(सं०) वह बैल, जिसका एक पैर दूसरे पैर से टकराता है (पट०-१) । [देशी]

कुल्हाड़ी—(सं०)—(बिह०) । दे०—कुल्हारी ।

कुल्हारी—(सं०) लकड़ी फाड़ने तथा पेड़ काटने के काम में आनेवाला बसुला से कुछ लंबा एक प्रकार का हथियार । दे०—टंगा । पर्या०—कुल्हाड़ी (बिह०) । [कुल्हारा+ई (अल्पा० प्र०), कुल्हारा< *कुठारक (संस्कृ०), कुढार (प्रा०), कुल्हाड़ा (हिं०), लहान कुल्हाड (मरा०), कूल्हाड़ी (गुज०)]

कुस—(सं०) एक प्रकार की पवित्र घास (बिहा०, प्राज०) । [कुश (संस्कृ०), कुस (पा०, प्रा०) कुस, कुसा (हिं०), कसा (बं०) कुंस (संता०)]

कुसबटना—(सं०) रोपे जानेवाले धान में लगनेवाला एक प्रकार का कीड़ा (उ०-प०)। पर्या०—कुसियाना (मं०) । [देशी, < कुश-वर्तन (?)]

कुसही—(सं०) छोटे दानोंवाला काला मटर (पट०, गया, द०-पू०, पट०-४, मग०-५) । दे०—बजरी । पर्या०—जेसबरिया (पट०-४)। [देशी (?), मिला०—कोश, कौशिक= गोल वस्तु]

कुसही केराव—(सं०) एक साथ उत्पन्न जौ और केराव का मिश्रण (पट०, द०-पू०, पट०-१)। दे०—जौ केराई । [कुसही+केराव, कुसही < *कोश, < *कौशिक (संस्कृ०), कोसिय (प्रा०), केराव< *कलाय]

कुसाध—(सं०) वह बैल या भैंस, जिसका मुंह चौड़ा हो (पट०-१) । [देशी]

कुसियाना—(सं०)—(मं०) । दे०—कुसबटना । [देशी]

कुसिया मटर—(सं०) छोटे दाने का मटर, केराव (मुं०-१, मग०-५) । [कुसिया+मटर< कुसिया<कुशिक<कोशिक; मटर<मठ< मट्ठ (देशी) < *मृष्ट (?)]

कुसियार—(सं०) दंडाकार एक प्रसिद्ध पौधा, जिसका रस मीठा होता है और जिससे गुड़, चीनी आदि बनाई जाती है, ईख (उ०-पू० मं०, मं०-२) । दे०—ऊख । [< *कोशकार]

कुसिहार—(सं०) एक प्रकार का ऊख, जो छोटा और कड़ा होता है । [∠ *कोशकार]

कुसुम—(सं०) बर्रे (कुसुंभ) का पीला फूल, जिससे रंग बनाये जाते हैं (गं० उ०, मं०-२, मग०-५, चंपा०, पट०-४) । पर्या०—बर्रे (पट०-४), कोसुम (गं० उ०) फूल (मं०) । टि०—कुसुम से निम्नलिखित रंग बनाये जाते हैं— १. असमानी = हलका नीला रंग ; २. कागी = तेज बैंगनी रंग; ३. काला = काला रंग; ४. काहि सबुजा = गाढ़ा हरा रंग; ५. केसरिया = हलका लाल-पीला रंग; ६. गुलाब, गुलाबी = गुलाबी रंग; ७. चंपई = नारंगी रंग; ८. नारंजी = नारंगी—पीला रंग; ९. पैंठानी = नील के साथ मिला हुआ रंग; १०. फलसाही = बेर के रंग का रंग; ११. बादामी, बेदामी = बादामी रंग; १२. बैंगनी = बैंगनी रंग; १३. मासी = नितांत गाढ़ा हरा रंग; १४. लाल = लाल रंग; १५. लीला = गाढ़ा नीला रंग; १६. सबुजा = हरा रंग; १७. सुरमई = सुरमा-जैसा काला रंग; १८. सुरख = गाढ़ा

लाल रंग । १९—सोनहुला = सुनहला पीला रंग । यद्यपि पूर्वोक्त रंग केवल कुसुम से नहीं बनते हैं, किंतु इसका आधार अवश्य रहता है । गाढ़े रंग के बनाने में नील का सम्मिश्रण रहता है । कुसुम के विषय में एक पहेली नीचे दी जाती है— "बाप रहल पेटे, पूत गेल बरियात" । (जब कि बाप (कुसुम का बीज) पेट (बीज-कोष) में रह रहा था, उसी समय पूत (कुसुम फूल,) कपड़ों के रंग के रूप में, बारात चला गया [कुसुम, कुसुम्भ (संस्कृ०), कुसुंभ (पा०, प्रा०), कुसुम, (असं०), कुसुंभ, कुसुम, कुसुंब (हिं०), कुसुंभ, कसुंभा (पं०), कुसुंबो (सिं०), कुसुंबो (गु०), कुसुंब, कुसुंबा (मरा०)]

कुहरा—(सं०) ओस, कुहेसा (चंपा०-१)। पर्या०—कुहा (पट०-४) । [कुहेडा या कुहेला]

कुहस्सा—(सं०) सबेरे का कुहरा (नीहार)—(द० भाग०) । दे०—कूहा । [कुहेला, कुहेडा, मिला०—कुहाशय वा कुहेशय< कुह (कुहर)+आशय; शय]

कुहा—(सं०)—(पट०-४) । दे०—कुहरा ।

कुहेस—(सं०)—(प०, उ०-पू०, मं०, द०-पू० मं०, मं०-२) । दे०—कूहा । [कुहेला, कुहेडा, मिला०—कुहाशय, कुहेशय< कुहा + आशय, शय]

कुहेसा—(सं०)-(प०, पट०-४) । दे०—कूहा ।

कूँचा—(सं०)-(१) खलिहान में अन्न बुहारने के लिए व्यवहृत ताड़ या खजूर के डंठल की जड़ का कूंचकर बनाई गई झाड़ू या कूँची । दे०—सिरहथ । (२) नारियल की सींक, खजूर के डंठल और पत्तियों एवं ताड़ की पत्तियों की सींकों आदि से बनी झाड़ू । (३) दे०—कुच्चा । [कूर्च, कूर्चक (संस्कृ०), कुच्च (प्रा०), कूचा (हिं०), कूचों (ने०), कुची, कूची (बं०), कुच्च (पं०), कुचिए (ल०), कुचो, कूची (सिं०), कुचो, कुचड़ो (गु०), कूंचा (मरा०), कोस्सा (सिहा०), कुच (रोमा०) = दाढ़ी]

कूँची—(सं०) छोटा कूंचा (द०-प० शाहा०) । दे०—सिरहथ और कूंचा । [कूँचा+ई (अल्पा० स्त्री० प्र०)]

कूँड़—(सं०)—(१) भोजन और अन्न रखने का मिट्टी का बड़ा बर्तन (प०, पट०) । (२) कुएँ से पानी निकालने के लिए लोहे का बना गोल बर्त्तन । दे०—डोल । (३)*ऊख पेरने के कोल्हू का वह खोखला भाग, जिसमें ऊख पेरा जाता है (पू०) । दे०—खान । टि०—पहले कोल्हू लकड़ी या पत्थर का होता था, किंतु आजकल तो लोहे का होता है । इसलिए. वैसा खोखला भाग नहीं होता है । (४) ढेंकुल में लगा हुआ पानी निकालने के लिए मिट्टी या लोहे का पात्र (बिहा०, प्राज०)। पर्या०-कूँड़ी, कुंडी । [कुंड, कुंडक, कुंडो, कुंडिका (संस्कृ०) कुंडिका, कुंड पा०, प्रा०) कुंडोक, (बर०) कोंडु (कश्म०) = हंडा, कुंड़ी (बं०), कुंडी (ओ०), कुंडी (हिं०), कुन्नी (पं०, ल०), कुंडो (ने०), कुंड़ी (गु०, मरा०), कंडिया, कुरो, कुन्यू (सिहा०)]



कूँड़

कूँड़ा—(सं०) (१) अन्न रखने के काम में आने-वाला एक प्रकार का मिट्टी का बर्तन (गं०उ०)। पर्या०—कूड़ी (द० भाग०) । (२) दही मथने का मिट्टी का बर्तन, जो हाँड़ी में मिट्टी लगाकर बनाया जाता है (चंपा०) । [कुंड, कुंडक] ।

कूँड़ी—(सं०)—(१) उबाले हुए रस को रखने का बर्तन (द० भाग०) । दे०—मटुकी । (२)—(द० भा०) । दे०—कूंड़ा । [कूँड़+ई (अल्पा० स्त्री० प्र०) < *कुंड] (३) ढेर—(चंपा०-१) । [कूट (संस्कृ०), कूड (प्रा०)] (४) दे०—कूंड़ । [< कुंड]

कूआँ—(सं०)भगर्भस्थ जल निकालने के लिए खोदा, गया बहुत गहरा और साधारणतः गोल कच्चा गढ़ा, जो ईंट-पत्थर के बिना ही बनाया जाता है। [कूप, (संस्कृ०), कूप(पा०), कुवा, कुआ(प्रा०), कूँआ, (हिं०), कूआ (बं०) कूआ (ओ०), कूआ, खूह (पं०), कुवा (ने०), कुवो (गु०), कुवा (मरा०), आइ (दर०) । पं० खूह, (पं० कं०) खुह (कश्म०), खूहा (प० पहा०), खूँहु (सिं०) शब्दों का मूल संभवतः वसेव, वसुयु (रोमा०) है, जिसका अर्थ है—छेद, गड्ढा । इसी प्रकार खोह (हिं०, पं०, बिहा०), खो (गु०) भी है ।

किन्तु वस्तुतः पा० काकूंपो=कूआँ, मस्तूल, कूवो (गु०), कुंव (सि०), खूहा (ने०) की व्युत्पत्ति में समानता है (नेपा०)]

कूचल—(क्रि०) थूरना, पीसना, पीटना (मुं०-१, पट-४, मग०-५, चंपा०), । [कुच+ल (प्र०), मिला०—√कुच्, √कुंच् (संस्कृ०), कुंचि (प्रा०)=टेढ़ा कूचना (हि०), कुचान (बं०), कुचेइबा (ओ०), कूचिनु (ने०)]

कूचा—(सं०)—(गया, द० मुं०) । दे०—कूंचा और सिरहथ । [< कूच्चक (संस्कृ०), कुच्च (प्रा०)]

कूट—(सं०)—(१) पुआल का छोटा टुकड़ा, जो भूसा के समान होता है (चंपा०-१) । (२) मोटी लुगदी से बना कागज का एक मोटा भेद (बिह०) । [कूट=पुंज; कुटिक, कुटित= दबा हुआ, मुड़ा हुआ ।]

कूटी—(सं०)—(शाहा०) । दे०—कूट ।

कूटल—(क्रि०) किसी चीज को ढेंकी या ओखल में कूटना (चंपा०-१, पट०-४, मग०-५, भाग०-१) । (त्रि०) कूटा हुआ (चंपा०-१) । [√कुट्ट् (संस्कृ०), कुट्ट (पा०, प्रा०), कूटना (हि०), कुटनु (ने०), कुटिबा (अस०), कुटा (बँ०), कुटिबा (ओ०), कुट्टणा (पं०), कुट्टण (ल०), कुटणु (सि०), कुटणों (मरा०), कुटवुँ (गु०), कुरेल (रोमा०), कुड (वर०), कोटनवा (सिहा०) । जूल ब्लाक और किटेल के मत से इस धातु का मूल द्राविड है । मिला०—कुडो (कन्न०)=ठोकर देना । कुट्टु (त०, कन्न०), कोट्टु (त०, ते०—नेपा०)]

कूड़ा—(सं०) खाद, बुहारन (पू०, सा०, चंपा०) । दे०—खादर । [कूट (संस्कृ०), कूड (प्रा०)]

कूड़ा-कुरकुट—(सं०)—(पू०, सा०, चंपा०) । दे०—कूड़ा और खादर । [कूड़ा+कुरकुट <कूट+कुरकुट (दे० - कुर्कुट=मुर्गा)]

कूढ़ा—(सं०)—(१) छोटी मड़ई (पट०, गया) । दे०—गोहिया । (२) खेत या खलिहान में खड़ी की गई ओरड़ी (गया) । दे०—मड़ई । [कुट, कुटक, कुटज]

कूत—(सं०) दे०—कन । [कूतना (हिं०), मिला०—√कूत्=फैलना-फैलाना (मो० वि०, डि०) दे०—कतल]

कूप—(सं०) दे०—कूआँ । [कूप]

कूर—(सं०)—(१) सूखी घास, बुहारन, गोबर आदि का ढेर (उ०-पू० मं०, शाहा०) । [कूट] (२) नदी का किनारा (चंपा०-१) । पर्या०—कोर (मं०-२) । [कूल]

कूरी—(सं०) चीजों की छोटी-छोटी ढेरी (मं०-२, मुं०-१) । दे०—कुद्दी । [कूर+ई (अल्पा० स्त्री० प्र०)< *कूट]

कूरो—(सं०) जमीन, खेत आदि की बीस कट्ठे की एक नाप (पू० मं०) । दे०—बिगहा । [देशी]

कूहा—(सं०) सबेरे का कुहरा । पर्या०—कुहेस, कुहेसा (प०), कुहस्सा (द० भाग०), कुहेस (उ०-पू० मं०, द०-पू० मं०), कुम्हेस । [कुहेला, कुहेडा, मिला०—कुहाशय, कुहेशय < कुह (=कुहर) + आशय, शय, कोहड़, कोहरा (हिं०), कोहारा (बं०), कोवा-मोवा (अस०), कुहुड़ी (ओ०), कुहुर (पं०), कोहीर (ल०), कोहड़ें (मरा०), कोइरो (ने०)]

केँउआँ—(सं०) तंबाकू के पत्ते में बिल बनाकर रहनेवाल एका कीड़ा विशेष (गं० उ०, मं०-२) । दे०—लरका । [देशी] ।

कँकरोट—(सं०)—(१) दे०—कँकरोटिया । [<कर्करास्थि (२) (गया) । दे०—गँगट । केंकट+ओट] (?)

केंकरोल—(सं०) केकड़े के द्वारा ऊपर फेंकी हुई मिट्टी या वैसी मिट्टीवाली जमीन (गं०उ०) । केंकुरल—दे०—केकुरल ।

केँड़ी—(सं०)—(१) हाथ की सफाई के कारण कम तौलना (चंपा०-१) । (२) पेट की त्रिवलि (चंपा०-१) । (देशी), मिला०—[कूट=छल, कितव]

केँपी—(सं०) कीचड़, कादो (मुं०-१) । [केंपी < कंप< पंक—वर्ण—विपर्यय]

केँवाछ—(सं०) दे०—कवाछ । [कपिकच्छू]

केआरी—(सं०)-(द० भाग०) । दे०—कियारी । [केदार]

केआल—(सं०) अन्न तौलनेवाला पुरुष (पट०, द०-पू०) । दे०—हटवा । [(देशी) (?), मिला०—किराट=वनिया (रा० त०), काकिनी (णी)=एक माप, क्रयण]

केआली—(सं०)—(१) अन्न तौलनेवाले पुरुष का शुल्क (प्रति मन सेर-भर)—(द०-पू०) । दे०—हटवाई । (२)-(उ० पू० मं०) । दे०—किआली । [केआल+ई (दे०—किआली, केआली)]

केओट (सं०) मल्लाहों की एक शाखा (गं० उ०) ।

केओटीन—(सं) (१) एक प्रकार की घास (दर०-१) । (२) मठों में नाचनेवाली देवदासी (चंपा०)। ( ) केवट (जाति-विशेष) की स्त्री । [मिला०— कैवर्त, कैवर्ति मुस्तक=एक घास (मो० वि० डि०)]

केकुरल—(क्रि०)-(१)जाड़ा आदि के कारण मवेशी या किसी व्यक्ति का सिकुड़ जाना (चंपा०-१) । (२) पाला और एक रोग-विशेष के कारण पौधों का सिकुड़ना ।

(वि०)सिकुड़ा हुआ। पर्या०—घेंकुरल, केंकुरल । [केकुर+ल (क्रि० प्र०)< केकुरा< *कर्कटक]

केड़वारी—(सं०) फलों का नया बागीचा (शाहा०) । दे०—गछुली । [केड़+वारि, केड़<केतकी, कदली अथवा केदार+वाटिका>वारि]

केतकारि (सं०) आश्विन, कार्त्तिक और अगहन का महीना (दर०-१) । [(देशी), मिला०—कार्त्तिकादि (?)]

केतकी—(सं०)—(१) एक प्रकार का धान (दर०-१)। (२) केवड़ा का फूल । [केतकी]

केतरपार—(सं०) ऊख की खड़ी फसल को काटनेवाला (पट०, गया) । दे०—अँगेड़ीहा । [केतर+पार< केतारी+पार< कान्तार+पार । पार=अंत, पारयति=समाप्त करता है, पार (=उत्-पाट)]

केनार—(सं०) एक प्रकार का ऊख, जो पतला और लंबा हुआ करता है तथा कार्त्तिक में पोख्ता होता है (गया, द०-पू०, मग०-५) । पर्या०—केनारा (पट०), केवाली (सा०), केवाही (शाहा०), रौंदा (द०मुं०)। [कान्तार]

केनारा—(सं०)—(पट०) । दे०—केतार ।

केनारी—(सं०)—(मं०, पट०, गया, द०-पू० बिहा०, पट०-४ मग०-५, भाग०-१) । दे०—ऊख । [केतार+ई < कान्तार] ।



केतारी

केन डेहरी—(सं०) धनरोपनी के अंत में खेत के एक कोने में विशेष रीति के साथ एक मुट्ठी मोरी (धान्य-बीज) के रोपने की एक रीति, पर्या०—पचाटी (पट०-४, मग०-५), गव लगावल (चंपा०) । [देशी, केन+डेहरी <कोण+देहली]

केनगाड—(सं०) चीनी-मिल की ओर से ट्रक पर लादकर लाये जानेवाले ऊख पर बैठा हुआ वह कर्मचारी, जो रास्ते में उस ऊख की रखवाली करता है, ताकि कोई उसमें से ऊख ले न ले । [केन+गाड< केन+गार्ड (अं०)]

केना—(सं०)—(१) अनाज के खेत में होनेवाला एक पशु-खाद्य घास (प०, गया, पट०-४, मग०-५, मं-२) । दे०—कनवा । [देशी, मिला०—कण]

केना—(सं०) (प०-मं०, प०) । दे०—कनवाँ । [देशी, मिला०—कण] ।

केनौला—(सं०) एक झाड़, जिसके फल की चटनी बनती है । पर्या०—करौंदा (मुं०-१, मग०-५) । [कुन्दुरु]

केमाम—(सं०) शुद्ध (ताजा) अफीम (कफा) के रस को उबालकर गाढ़ा करके बनाया गया पदार्थ (गया) । दे०—मदक । [किमाम <किवाम (अं०)]

केरवा—(सं०) गुण के अनुसार आम का एक भेद (दर०-१, पट०-४, गया०-५) । [केरा+वा < केला< कदली]

केरवी—(सं०) गुण के अनुसार आम का एक भेद (दर०-१) । [केरवी<केला< कदली]

केरा—(सं०)-(१) लोहार, बढ़ई, नाई और धोबी को किसान की ओर से मिलनेवाली धान्य की एक छोटी राशि [जितनी दोनों भुजाओं (पांजा) के बीच में आती है] । दे०—खरवन । [(देशी), मिला०—कर+(माल) यथा-अंकमाल > अकवार अथवा कोल, क्रोड (=पांजा)]

केरा—(सं०) केला, एक प्रसिद्ध फल । (बिहा०, आज०)। [कदली] (संस्कृ०), कयली, कयलि (प्रा०), केरो, केरा (ने०), केलो (कुमा०), कला (बं०, अस०), केला (हिं०, पं०), केल्हो=केला, केविरो=पौधा (सि०), केल (गु०)=केले का पौधा, केलु (गु०)= केला, केल, केली, कलं (मरा०), कमेल, केहेल (सि०)]

इन सभी पर्यायों का (संस्कृ०, पा०) के 'कदली' और (प्रा०) के 'कयली', 'कवली' शब्द से स्पष्ट संबंध नहीं दीखता है। केवल हिं०, बँ०, अस०, पं०, मरा० और संभवतः कुमा० के पर्यायों का ही संबंध इनसे मिलता-सा है, किन्तु गु० के पर्याय का कोई संबंध नहीं है। बँ० को छोड़कर ऊपर के पर्याय और गु० के पर्याय प्रा० के केली, केलो से संबद्ध हैं और ये दोनों संस्कृत के कदली से व्युत्पन्न नहीं हैं। जे० राइलस्की (J. Przyluski—MSL XXII, P.206) के मतानुसार 'कदली' शब्द आग्नेय-एशियाटिक से उधार लिया हुआ है, जिसमें 'ली' के पहले पूर्वसर्ग (prefixes) 'क' और 'त' लगते हैं। इनमें 'ली' प्रत्यय प्रतीत होता है। क्या प्रा० का 'केली' आग्नेय-एशियाटिक 'कलि' से व्युत्पन्न हो सकता है? डब्लू० गाइगर (इटि० सिंह० पृ०–२७) के अनुसार 'केसेल'–(सिंह०) का 'स' सादृश्यार्थक है, किंतु यह मत उचित नहीं दीखता। यह शब्द वस्तुतः किसी दूसरे मूल शब्द का व्युत्पन्न रूप हो सकता है —नेपा०।]

केराओ—(सं०) मटर। [कलाय]

केरावल—(०) दे०—किराना।

केराव—(सं०) छोटे दानों का मटर (बिहा०, प्राज०)। दे०—मटर। [कलाय (संस्कृ०), कलाय (प्रा०), कलाइ (बँ०, प्रस०)]

केराव

केरावल—(क्रि०)—खड़ी फसलवाले खेत से घास-पात निराना, निकौनी करना (मुं०-१, मग०-५)। [केरा+ आवल (प्र०) < *किर (यथा–किरति) < √कृ (विक्षेपे)]

केरौनी—(सं०) (१) छिछली कोड़ाई; खुरपी या कुदाल आदि से की जानेवाली हल्की कोड़ाई (चंपा०, मं०)। दे०—खुरपियाना। पर्या०—किरौनी (मग०-५)। (२) छिछली कोड़ाई करके अनाज के खेत की घास आदि की सफाई (गं० उ०, द० भाग०, द० मुं०)। दे०—सोहनी। [केर+ औनी < *किरण < √कृ (विक्षेपे)]

केलासार—(सं०) अच्छी किस्म का एक मोटा अगहनी धान (मुं०-१)। [केला+सार < *कदली+शालि]

केलौनी–(सं०)–(१)–(द० भाग०)। दे०–केरौनी और खुरपियाना। (२)–(द० भाग०, द० मुं०)। दे०—केरौनी और सोहनी। [केलौनी < केरौनी < केराना < *किरण < √कृ (विक्षेपे)]

केवई—(सं०) एक प्रकार की मछली (चंपा०-१, सा०-१)। पर्या०—कवइ (चंपा०, मं०-२)। [*✓कविक, *✓कविका]

केवलहा—(सं०) छोटे दानोंवाला लाल गेहूँ (गया)। दे०—ललका। [देशी, संभ०—केवल+हा (प्र०) < केवाल (बिहा०)=काली चिकनी मिट्टी]

केवाल—(सं०) काफी मजबूत काली जमीन, जिसमें ८५ प्रतिशत मिट्टी का अंश रहता है। पर्या०—करार (द०-पू०)। [केवाल, कासार] कहा०—'असल के बेटी अउ केवाल के खेती'=असल माँ-बाप की बेटी और केवाल जमीन की खेती अवश्य फलदायक होती है (पट०-४)।

केवाला—(सं०)–(१) कर्ज के भुगतान में या नकद रुपया लेकर जमीन बेचने की प्रक्रिया। (चंपा०-१, पट०-४, मग०-५, मं०-२, भाग०-१)। केवाला देअल (मुहा०)=कवाला देना। केवाला लिखल (मुहा०)=किसी के नाम से अपनी सम्पत्ति लिख देना। केवाला लिखावल (मुहा०)=किसी से केवाला लिखाना। कबाला-(अ०)] (२) वह दस्तावेज, जिसके द्वारा सम्पत्ति दूसरे के अधिकार में दी जाती है।

केवाली—(सं०)—(सा०)। दे०—केतार। [केवाल+ई < केवाल (मिट्टी)]

केवाही—(सं०)–(शाहा०)। दे०—केतार। [मिला०—केवाली]

केसर—(सं०) कश्मीर की घाटियों में होनेवाले एक प्रसिद्ध फूल का रेशा, जो पीलापन लिये, लाल रंग का, सुगंधित एवं बहुमूल्य होता है और भोजन की वस्तुओं या पूजा-सामग्री के लिए व्यवहृत होता है। [केसर]

केसरिया—(सं०)—दे०—कुसुम। [केसर+ इया (प्र०) < *केसर]

केसी—(सं०) भुट्टे के ऊपर के केशों का गुच्छा। दे०—भूआ। [< केशिक]

केसौर—(सं०)—(१) लम्बे दानोंवाले धान का एक उत्तम प्रकार (मुं०-१, मं०-२)। (२) शकरकंद की जाति का एक मीठा कंद, जो कच्चा खाया जाता है। (३) चौर में होनेवाला एक छोटा कंद, जो मोथे की तरह होता है और कच्चा ही खाया जाता है।



केसौर

[के+सौर < केतकी+शालि वा केसर+शालि]

केहुनी—(सं०)-(१) दोनों भुजाओं के अंदर भरकर आनेवाली फसल का परिमाण (पू० मं०)। दे०—पाँजा। (२) कोहनी, हाथ और बाँह के बीच की संधि। [< कफोणि = केहुनी]

कैंत—(सं०) छोटे बेल-जैसा एक प्रकार का खट्टा फल (शाहा०-१, पट०-४)। [कपित्थ (संस्कृ०), कइत्थ (प्रा०)]

कैत—(सं०) एक प्रकार का साँप-जैसा श्वेत धारीवाला लंबा फल, जिसकी तरकारी बनती है (सा०)। दे०—चिचिरा। [संभ०—< *श्वेता < श्वेतराजि (संस्कृ०), कैता भिंगा (संता०)]



कैता—(सं०)—(पू०मं०, मुं०-१)। दे०—कैत और चिचिरा।

कैता

कैदक—(सं०) जमींदारों और किसानों के बीच का एक प्रकार का हिसाब, जो कागज की एक चिट पर लिखकर बंडल में रख लिया जाता है। यह बही में नहीं लिखा जाता है। दे०—तबलक [देशी,—संभ० < कायदा < कायदः (अ०)]

कैरियार—(सं०)—(शाहा०)। दे०—कोरार। [कैरि+यार < केदार+वाट, कदली+वाट, कन्दली+वाट]

कैरी—(सं०) कटहल के कोये का ऊपरी भाग, जिसमें कोया छिपा रहता है (पट०-१)। पर्या०—भोथी (सं०प०) [देशी. संभ०– < *कवरी]

कैल—(वि०) पीताभ-धूसर पशु (दर०-१, पूर्णि०-१, मं०-२)। पर्या०—कैला कइल (चंपा)। [कपिल (संस्कृ०), कयिल (प्रा०)]

कैला—(वि०)—दे०—कैल।

कैलाएल—(क्रि०)—फसल की बाल को दृढ़ (अन्न के रूप में) होने की अवस्था को प्राप्त करना। (वि०) पकती हुई फसल। दे०—हबसाएल। [कैला+एल (क्रि० प्र०) < *कपिल]

कैला गैल—(वि०)—(पट०, पट०-४, मग०-५)। दे०–कैलाएल और हबसाएल। [कैला+गेल < कपिल; गेल < गएल < गयल < √गम्]।

कैलिया—(सं०) दे०–कोइली। [संभ० < कपिल]

कोंकड़चल—(सं०)(१) केंकड़े का बिल (चंपा०-१) (२) केकड़े के बिल के ऊपर की मिट्टी। [कोंकड़+उल < *कर्कट+कुल]

कोंकड़ा—(सं०) केंकड़ा, एक जलीय जन्तु, जिसके आठ पैर और दो पंजे होते हैं। यह आगे-पीछे समान गति से चल सकता है। यह धान के खेत से लेकर समुद्र तक में पाया जाता है। [< कर्कटक]

कोंकड़ियाइल—(क्रि०) रोग या पाले से किसी पौधे के पत्ते का सिकुड़ना या संकुचित हो जाना (चंपा०-१, मग०-५ मं०-२)। पर्या०—केंकुरियाएल (पट०-४)। [कोंकड़िया+ आइल < *कोंकड़ा < *कर्कटक]

कोंच—(सं०) महुआ के फूल का छत्ता (पट०-४, मग०-५, चंपा०-१)। दे०—छत्ता। [< कूर्च, कुञ्च, गुच्छ]

कोंढ़िला—(सं०)–(१) एक पशुखाद्य घास (चंपा०, उ० मं०)। (२) चौर में होनेवाला एक जलीय पौधा, जिसके डंठल से विवाह का मौर बनाया जाता है। [(देशी), मिला०—कुष्ठ (संस्कृ०), कूठ (हिं०)]

कोंपड़—(सं०)–(१) पशुओं का एक ऐब, जिसमें सींग की जड़ में पर्त्त उखड़ती है। दे०—गाड़ा। (२) बाँस की जड़ से निकला हुआ नया कोमल अंकुर (चंपा०-१, मं०-२)। [कोंपड़ < कोंपल < कोमल—(हिं० श० सा०), < कुड्मल (संस्कृ०) < कुंपल (प्रा०), कोंपाल (हिं०) कोंपलो (गु०), कोंपिला (ने०), कोम्भ या कोम्ब (मरा०)]

कोंपल—(सं०) बाँस की जड़ का नया अंकुर(सा०-१,

मग०-५, पट०-४) । [कोंपल< कोमल—(हिं० श० सा०), < कुड्मल (संस्कृ०)]

कोंहड़ा—(सं०)कद्दू की जाति का एक गोल फल, जो रंग में हरा या पीला होता है तथा जिसकी तरकारी मीठी होती है। पर्या०—कोम्हड़ा (उ० मैं०), कदीमा (पू० मैं०, मैं०-२) । [<कूष्माण्डक, (संस्कृ०), कुम्भाण्ड (प्रा०), कुभिण्डो (ने०); कुमड़ा (बं०) कुम्हड़ा (हिं०), कोमड़ (सिंह०),(ड़< ण्ड) । कूहण्ड कोहण्ड, (प्रा०), कोहली (देशी)-मिला०—कुम्भफला (संस्कृ०), कोंहड़ा. कोंहर (हिं०), कोहलु (गु०), कोवहाला (मरा०), कोहोलें, कोहालें, कोहलें (मरा०)]

कोंहरबट्टी—(सं०) कुम्हार द्वारा काम में लाई जानेवाली मिट्टी (सा०-१) । [कोंहर+बट्टी <कुम्हार(हिं०) + मिट्टी< *कुम्भकार+मृत्ति]

कोआ—(सं०) (१) कटहल के फल का बीज-कोष, जिसे लोग खाते हैं (चंपा०-१, पट०-१, पट०-४, मग-०५)। (२) रेशम के कीड़े का घर (चंपा०-१) (३) आँख का डेला (ढेला)—(चंपा०-१)। (४) ताड़ के फल के बीज-कोष से निकलनेवाला एक श्वेत खाद्य। [कोशक< बीजकोशक (संस्कृ०), कोसा, कोया (हिं०)]

कोइन-(सं०)-(१) महुए की गिरी (बीज), जिससे तेल निकाला जाता है (गं० उ०, द०, चंपा०-,१ पट०-४, मग०-५) । (२) महुए का फल। पर्या०—गहुआ (मैं०-२), कोइनी (द०-पू० मैं०, आज०), कोइन्दा (द०-प० शाहा), कोयन (मुं०-१), कोंयँड़ (शं० प०) कोइना (आज०) । [को+इन < *कोशिन्]



कोइन

कोइनी—(सं०)—(द०-पू० मैं०, आज०) । दे०—कोइन । [को+इनी< *कोशिन्]

कोइन्दा—(सं०)—(द०-प० शाहा०) । दे०—कोइन । [को+इंदा< कोआ+इन्< कोशिन्]

कोइया—(सं०) अनाज के भंडार को भीषण हानि पहुँचानेवाला एक प्रकार का पतला, काला कीड़ा। [देशी]

कोइरी—(सं०) हिंदुओं की एक जाति, जो साग-पात की खेती करके अपनी जीविका चलाती है। पर्या०— कोयरि (दर०-१) । [कोइर+ई, कोयर (हिं०)= साग पात; < कोंपल < *कुड्मल]

कोइल—(सं०)—(१) आम के बीज का गूदा या गिरी, जिसकी रोटी भी कहीं-कहीं पकाई जाती है। (मुं०-१) । [देशी]
(२) अनाज की वह बाल, जिसमें पाला या मारा रोग लग गया हो (पट०, गया)। दे०—मराएल । [कपिल] (२) एक पक्षीविशेष, जिसका रंग काला होता है तथा बोली बड़ी मीठी होती है। पर्या०-कोयल (चंपा०) । [कोकिल]

कोइलखो—(सं०) धान की फसल को हानि पहुँचानेवाली काँटेदार एक घास। पर्या०—गोखुला (प० मैं०, चंपा०, पट०, गया, द० मुं०, पट०-४, मग०-५, मैं०-२), गोरखुल (च०), बाँसी (सामा०)। [(देशी), संभ०—कोकिलाक्ष]

कोइलपत—(सं०) चोट लगने के कारण दाग लगा हुआ आम (पट०-१, पट०-४, मग०-५, मैं०-२, चंपा०-१) । [कोइल+पत< कोकिल+पद (=चिह्न)—(?)]

कोइला—(सं०)-(१) फसल के पुष्ट होने की अवस्था। (२) लकड़ी अथवा पत्थर का कोयला, जो जलाने के काम आता है। [कोइल+आ< * कोकिलक, कपिलक]

कोइलाइल—(क्रि०) किसी अन्न या फल का पुष्ट होना (शाहा०-१) । [कोइल+आइल (प्र०) < कोइल, कइल< कपिल]

कोइला माता—(सं०) कुएँ को सुरक्षित रखने-वाली कल्पित देवी। [कोइला+माता। संभ०—<कमला माता, कोकिला (देवी)—(मो० वि० डि०)]

कोइली—(सं०) चावल में लगनेवाला विभिन्न प्रकार का कीड़ा। पर्या०—कोढ़िया, कैलिया। [(देशी) संभ०—< कपिल]

कोकटि—(सं०) एक प्रकार की लाल कपास, जो भादों में पकती है। इसकी खेती तिरहुत में होती है तथा इसके सूत बड़े महीन और सुन्दर होते हैं। पर्या०—भदैया। [देशी]

कोकड़ा—(सं०)—(शाहा०) । दे०—कोंकड़ा। [कोकड़ा< कोंकड़ा< *कर्कटक]

कोचला—(सं०) लता में होनेवाला एक प्रकार का कड़वा फल। इसका फल हरा होता है, किंतु पकने पर लाल हो जाता है। पर्या०—तिलकोच (भाग०-१)।

कोचला के साग—(सं०) एक प्रकार का साग। [कोचला के+साग]

कोचिआइल—(क्रि०)-(१) महुए के पेड़ में फूल के गुच्छों का होना (चंपा०-१, पट०-४, मग०-५) ।

कोचिआवल—(क्रि०) साड़ी या धोती को चुनना (चंपा०-१, पट०-४, मग०-५, मैं०-२) । [कोचि+आवल (प्र०)< कोचि< *कुञ्च, कुञ्ची< √कुच्]

कोठला—(सं०) दे०—कोठिला, कोठी।

कोठिया ईंटा—(सं०) कुएँ आदि की गोल परिधि बनाने के लिए अर्धवृत्ताकार ईंट (द०-पू० मैं०) । दे०—बको। [कोठिया+ईंटा < कोष्ठ+इष्टक]

कोठियारी—(सं०) गाँव में रहनेवाले शिल्पियों और दुकानदारों आदि से जमींदार के द्वारा भूमि-कर के रूप में लिया जानेवाला शुल्क (चंपा०, मैं०) । दे०—मोतरफा। [कोठिया <कोठी< (संभ०) *कोष्ठ]

कोठियौ—(सं०) वर्षा से बचाने के लिए बाल-सहित कटी हुई फसल का लगाया हुआ ढेर (सा०) पर्या०—पूँज, पुँजौर (उ०-प०, पट०, गया, द०-पू०) । [कोठियौ < कोठिया < कोठी < कोष्ठक]

कोठिला—(सं०)-(१) बाँस की फट्ठी आदि से बने गोल ढाँचे (कोठी) से सुरक्षित कुआँ (प०) । पर्या०—गड़ौआँ (पट०) । [कोठि+ला (प्र०)< कोठी< कोष्ठ] (२) दे०—कोठी। [कोठि+ला (अल्पा० प्र०)< *कोष्ठ]

कोठिली—(सं०)—दे०-कोठी। [कोठी+ली (अल्पा० प्र०) < *कोष्ठ]

कोठी—(सं०)-(१) कुएँ की दीवार को गिरने से बचाने के लिए कभी-कभी प्रयुक्त बाँस की फट्ठियों या वृक्ष की टहनियों से बनाया गया गोल ढाँचा (उ०-प०, आज०) । पर्या०—ढोल (उ०-प०, मग०-५), चाँड़ (उ०-प०, पट०, शाहा०), दोल (द०-पू०), बिंडी (कहीं-कहीं द०) । (२) मिट्टी या ईंट का बना हुआ एक प्रकार का गोल या चौकोर घेरा, जिसमें अन्न रखा जाता है। (बिहा०, आज०)। पर्या०—कोठिला, कोठिली। (३) अन्न, भूसा आदि के रखने के लिए खुली हवा में पुआल, फट्ठी, या खड़ का बना हुआ एक प्रकार का घेरा। दे०—बखार। (४) बाँस के पौधों का एक समूह (चंपा०, आज०,) । [कोठ+ई(प्र०) <*कोष्ठ]

कोड़ देल—(मुहा०)— खुरपी आदि से गहरी कोड़ाई करके घास आदि निकालना (उ०-प०, उ०-प० मैं०, मैं०-२) । दे०—भर खुरपी सोहल। [कोड़+देल < कोड़ल (बिहा०) कोड़ना (हिं०) < √कुट् (छेदने), अथवा √कुड् (वैकल्ये) । (संभ०) < कु+दार< √दृ (अवदारणे) से नामधातु प्रत्यय के साथ व्युत्पन्न होकर बना हो।]

कोड़न—(सं०)-(१)—(द० भाग०, मैं०-२) । दे०—कोड़नी। (२) एक फूट ऊँचे जनेरे, बाजरे, टँगुनी आदि की जोत या कुदाल आदि से की गई कोड़नी (गया, चंपा०, मैं० २) । दे०—बिदाह।

कोड़नी—(सं०)-(१) कोड़ाई, कोड़ने की प्रक्रिया। दे०—कोड़ल। (२) अनाज के खेत की छिछली कोड़ाई करके की गई घास आदि की सफाई। (३) मकई आदि के पौधों के उग आने पर, जड़ के आसपास की मिट्टी को धीरे-धीरे कुदाल से कोड़ कर हलकी कर देने की प्रक्रिया (मुं०-१, मैं०-२)। पर्या०—तमनी (चंपा०, मैं०), निकौनी (पट०, गया, द०-मुं०), छेजनी (द०-प० शाह०), कोड़न, खड़ (द० भाग०) । (४) एक फूट ऊँचे जनेरे, बाजड़े, टँगुनी आदि की कुदाल से की गई कोड़ाई।

कोड़ल—(क्रि०) कोड़ना, खोदना (दर०-१, पट०-४, मग०-५, मैं०-२) पर्या०—पारल, तामल (चंपा०, मैं०), छेजल (द०-प० शाहा०),

[कोड़ल (प्र०), कोड़ना (हि०), मिला०—√कुट् (छेदने); √कुड् (वैकल्ये)। (संभ०)–कु+दार<√दृ (प्रवदारणे) से ना० धा० प्र० लगाकर बना हो)]

कोड़ल—(वि०) कुदाल से खोदी हुई जमीन (चंपा०-१)। [कोड़+ल (वि० प्र०)]

कोड़ा—(सं०)–(१) ऊख की दूसरी सिंचाई (पट०) पर्या०—दोसर पटावन (अन्यत्र), दोसरो पटावन (द० भाग०)। कोड़नी (पट०-४, मंग०-५)। [देशी, (संभ०)<कोड़ल (बिहा०), कोड़ना (हि०)] (२) (चंपा०-१) दे०—कोरा। [कवर=बालों का गुच्छा]। (३) आग तापने के लिए बने घूर का ढेर (चंपा०-१)। पर्या०—घूर (मैं०-२, चंपा०), घुरौरा (पट०-४, मग०-५)।

कोड़ार—(सं०)-(१) वह खेत, जिसमें साग-भाजी बोई जाती है (चंपा०-शाहा०-१)। दे०—कोरार। (२) वह खेत, जो बार-बार कुदाल से कोड़ा जाता है (शाहा०-१)। (३) गांव के पास की उपजाऊ भूमि। (४) वह जमीन, जिसमें फुलवारी में लगाये जानेवाले पौधे पैदा होते हैं (पट०, प०)। पर्या०- कोरियार (पट०, गया), कोरौंट (द० मैं०), कैरियार (शाहा०), बारी (मैं०), लतिहानी (द० मुं०)। [कोड़ा+आर; कोड़ा<कोण अथवा कोड़ल (बिहा०), आर (हि०) अथवा<केदार वा कालमृद्, गौरमृद् अथवा (संभ०)<कडार (=पीला) ?]

कोड़ी—(सं०) दे०—कोरी।

कोढ़-(सं०)–(१) सामा (श्यामाक) के चावल को दूध में पकाकर बनाया गया एक प्रकार का भोज्य पदार्थ (दर०-१)। पर्या०—कोंढ़ा (मं०-२)। (२) एक प्रकार का भीषण चर्मरोग। [मिला०-कुष्ठ]

कोढ़ा—(सं०)—(१) मकई की बड़ी बाल (मुं०-१)। (२) सोने-चांदी के आभूषण को गूंथने के लिए उसके ऊपर बना हुआ छेद (मुं०-१, पट०-४, मग०-५, मं०-२)। [मिला०—कुंडल]

कोढ़ि—(सं०)–(१) हल या गाड़ी में चलनेवाला मोटा और आलसी बैल, जो कार्य करते समय अधिकतर बैठ जाया करता है। पर्या०–परुआ। लोको०—'कोढ़ि बरद के फेफरि बहुत'=कोढ़िया बैल ज्यादा हांफता और उच्छ्वास लेता है। (२) कोढ़-रोग-ग्रस्त [कोढ़ि<कोढ़ी<कुष्ठिन्]

कोढ़िआइल—(वि०) वह पौधा, जिसमें कली आ गई हो (चंपा०-१)। (क्रि०)—किसी पौधे में कली लगना (चंपा०-१, मग०-५, पट०-४)। [मिला०—कुष्ठ=डाली आदि का अग्र भाग। कोरक< (वि०)–कोरकित, कुड्मल]

कोढ़िया—(सं०) दे०—कोइली। [मिला०—कोल=एक प्रकार का घुण। कुष्ठ=एक प्रकार का रंग]

कोढ़िला—(सं०) धान के खेत में उगनेवाली एक घास (उ० मैं०, दर०-१)। इस घास के डंठल से विवाह के लिए मौर और इसी प्रकार की दूसरी चीजें बनाई जाती हैं। दे०—लेंड़ई। [(संभ०)–<*कुष्ठ, कुष्ठल अथवा कूट]

कोढ़ी—(सं०)–(१) ताल का वह पेड़, जिससे रस निकाला जाता है (उ०-पू० मैं०, मैं०-२)। पर्या०–बहिरा (द०-पू० मैं०), बाँझी सिसवा (द०-प० मैं०), अनाहु (द०-प० मैं०)। (२) वह हलकी जमीन, जो अपनी उर्वराशक्ति खो चुकी हो। दे०—ऊस। (३) (गं० उ०) दे०—परुआ, कोढ़ि। (४) कली। [कोढ़ी (हि०) ...कुष्ठिन् (ला० प्रयो०)]

कोतनयना—(सं०) वह बैल, जिसकी आँखें लाल और भीतर कोटर में धंसी हुई हों (पट०-१)। [कोत+नयन+आ (प्र०), कोत<कोट<कोटर+नयन]

कोदई—(सं०) (शाहा० चंपा०)। दे०–कोदो। [कोदो+ई (अल्पा० स्त्री० प्र०)<कोद्रव]

कोदवा धान—(सं०) कोदो की तरह होनेवाला एक छोटा धान (पट०-१, मग०-५, पट०-४)। [कोदवा+धान<कोद्रवक+धान्य]।

कोदार—(सं०)-(१) फावड़ा, कुदाल। मिट्टी खोदने का लोहे का बना एक औजार (द० भाग०, चंपा०, द०मुं०)। दे०–फौरा। [कुदार, कुदाल, कुद्दाल] (२) (चंपा०) दे०—कुदारी।

कोदारि—(सं०)—(मैं०-४) दे०—कुदारी।

कोदारी—(सं०)–दे०—कुदारी।

कोदो—(सं०)—(१) सामा की जाति का एक

कदन्न इस अन्न की विशेषता यह है कि भूसी-सहित रखने पर यह पचासों वर्ष तक सुरक्षित रहता है। पर्या०—कोदई=छोटा कोदो (शाहा०)। (२) एक प्रकार की भदई फसल (पट०-४)। [कोद्रव (संस्कृ०), कोद्दव, कुद्दव (प्रा०), कोदो (हि०, कुमा०, बं०), कोदो, कोदा, कोद्रा (पं०), कोड़ोरी (सि०), कोद्रो (गु०), कोद्रु (मरा०), कोदुरु (कश्म०)]

कोन –(सं०)–(द० मुं०, भाज०)। दे०–कोनिया जोत। [कोण (ला०) (?)]

कोनसिया—(सं०)–(१) (चंपा०, द०-प० मैं०)। दे०–कोनिया जोत। [कोन+सिया<*कोणशः<*कोणसीत्य (<सीता=जोत की रेखा)] (२)—दे०—कोनिया घर।

कोनसी—(सं०)–(द० मुं०)। दे०—कोनिया जोत। [दे०—कोनसिया]

कोनाकोनी—(सं०)—(प०)। दे०—कोनिया जोत। [कोना+कोनी (संभ०) <*कोण-कोण, (यथा–कर्णाकर्णि, मुष्टी-मुष्टि आदि)]

कोनासी—(सं०)—(शाहा०)। दे०–कोला। [कोना+सी (प्र०) अथवा (संभ०) कोणसीत्य]

कोनाह—(वि०) दे०–कोनाहा। [कोना+ह (प्र०) <कोना<*कोण]

कोनाहा—(वि०) वह वस्तु, जिसमें कोना निकला हो, कोना बना हुआ (मुं०-१, पट०-४, मग०-५ मं०-२, चंपा०, भाग०-१)। पर्या०–कोनाह। [कोना+हा (प्र०) <कोण]

कोनिया—(सं०) बांस की फट्ठी की सीकों का बना फटकने का साधन जिसके तीन ओर गोल मेंड़ बनी होती है। (उ० पू० मैं०, दर०-१)। दे०–मड़रा। (वि०)—कोनेवाला, कोने की ओर (मुं० १)। [कोन+इया (प्र०) <कोण, कोणिक]

कोनिया घर—(सं०) वह घर, जो किसी कोने में स्थित हो। [कोन+इया (प्र०)+घर<कोण, <*कोणिक घर<गृह]

कोनिया जोत—(सं०) एक कोने से दूसरे कोने तक की जुताई की रीति। पर्या०- कोन, कोनसी (द० मुं०), कोनसिया (चंपा०, द०-पु० मैं०), कोनी (गया), कोना कोनी (प०)। [कोनिया+जोत कोनिया<*कोण, जोत<जोतल (बिहा०) जोतना (हि०)<योजन∠ √युज् (योगे)]

कोनी—(सं०)—(गया)। दे०—कोनिया जोत। [कोन+ई (प्र०) <कोण, कोणिक]

कोपड़—(सं०)-(चंपा)। दे०—कोंपड़। [कोमल (?), कुड्मल]

कोबी—(सं०)-(१) एक प्रकार की तरकारी का छोटा पौधा, जिसके बीच में बड़ा पसरा हुआ फूल होता है। (२) औषध के लिए प्रयुक्त एक वनस्पति-विशेष। [कोबी<गो<गोजिह्वा (संस्कृ०) कोबी, गोभी (हिं०), दाड़िशाक, दाड़शाक गोजिया (बं०), पाथरी, भुइपथरी (मरा०) भोपाथरी, भुइपात्रा, जिमी (गु०), येदुनालुक चेट्टु, भरिलिक चेट्टु, (ते०) घाउन (कों०), यलुना गले (क०) कलम रूमी (फा०, भारोप०–कैबेज अं०), पुर्त०–कोउवे।]

कोम्हड़—(सं०)—(उ० मैं०)। दे०—कोहड़ा। [कुष्मांड]

कोयन—(सं०)—(द० मुं०)। दे०—कोइन।

कोयरि—(सं०)—(दर०-१)। दे०—कोइरी।

कोयला—(सं०) चूल्हे या इंजन में जलाया जानेवाला लकड़ी का बनाया या खान से निकला इंधन-विशेष। [कोकिलक (संस्कृ०), कोल (अं०)]

कोयला फर्नेस—(सं०) कोयले से जलाया जानेवाला बड़ा चूल्हा, जो बड़ी-बड़ी मिलों और फैक्टरियों में रहता है। ऐसे चूल्हों का उपयोग वाष्प-शक्ति तैयार करने के निमित्त बड़े-बड़े पीपों को गर्म करने के लिए होता है (बिह०)। [कोयला+फर्नेस<कोयला (हि०)+फर्नेस (अं०), कोयला <कोकिलक]

कोरंजा—(सं०)-(१) वह मजदूर, जिसे मजदूरी में प्रधानतः नकद रुपये ही दिये जाते हैं (द० पू०)। (२) भोज-भंडारे में दही-चूड़ा-पूड़ी आदि का पक्का भोजन। इसके विपरीत कच्चे भोजन को 'भतवान' कहते हैं। [(देशी), मिला०—कोरंजा<कौर+अनाज=वह अन्न जो मजदूरी में दिया जाय (हि० श० सा०)]

कोरई—(सं०)-(१)-(शाहा०)। दे०—कोरो। (२) (चंपा)—दे०—कोरो-३

कोरट—(सं०) वह स्टेट, जिसकी देखभाल का

कार्य सरकार की ओर से होता है (सा०-१, पट०-४, चंपा०, मग०-५)। [कोर्ट, कोर्ट आफ वाड्र्स (अं०)]

कोरवास—(सं०) पान की पंक्तियों के आधार-स्तम्भ के बीच का अवकाश (उ०-पू० मं०) [कोर+वास, मिला०—कोर (हि०)=पंक्ति, श्रेणी, करता। कोर=पोर, अंगों की संधि]।

कोराँट—(सं०)-(१)-(द० मं०)। दे०—कोरार [(देशी) (संभ०) केदार+मृद्, अथवा काल+मृद, गौर+मृद]। (२) काँटे आदि के गड़ जाने से पैर के तलवे में हो गया घट्ठा। पर्या०—कोराँटी।

कोराँटी—(सं०)—दे०—कोराँट (२)।

कोरा—(सं०) घोड़ा हाँकने का चाबुक। पर्या०—कोड़ा, चाबुक। [कवर (संस्कृ०)=बालों का गुच्छा]।

कोराइ—(सं०)-(१) अनाज के कूटने-पीसने के बाद चालकर निकाला गया निष्फल मोटा अंश (पट०, मं० प०)। विशेषकर दलहन दलने के बाद निकली ऊपर की भूसी (पट०)। दे०—चोकर। (२) चावल या चिउरा कूटने पर उससे निकली वह महीन भूसी, जिसमें अन्न के ऊपर का महीन अंश मिला रहता है (चंपा०-१)। [(देशी)-मिला०-कडंगर, कंड्य < √कड् (भेदने), कोंडा (मरा०)]

कोराई—(सं०) दे०—कोराय।

कोराना—(सं०) वेतन के बदले नौकर को दिया जानेवाला अनाज (प० मुं०)। दे०—मनी। [कोर+आना—कोरा + अनाज (हि० श० सा०)]

कोराबाल—(सं०) काफी बालू जमा हो जाने के कारण बेकार जमीन (सा०)। पर्या०—बलान (उ० प० मं०)। [कोरा+बाल < कोरा+बालू < कोरा < केवल]

कोराय—(सं०) दलहन का छिलका (भूसी), जो पशुओं का पुष्ट भोजन है (मुं०-१)। पर्या०—कोराई (पट०, चंपा०, मग०-५, भोज०)। [(देशी) मिला०—कडंगर, कंड्य < √कड् (भेदने)]

कोरार—(सं०)-(१) दे०—कोड़ार; गोएँड़, डीह। [कोर+आर, कोर < कोण; आर (हि०) अथवा केदार (संस्कृ०), वा काल+मृद्, गौर+मृद् > गोरट, गोराँट]

कोरियार—(स०)-(पट०, गया)। दे०—कोड़ार। [मिला०—वैदार्य अथवा कदारिक]

कोरी, कोड़ी—(सं०) पान की २० पत्तियों अथवा किसी भी दूसरी वस्तु की एक राशि। बीस का समूह (गं० द०, पट०-४, मग०-५, चंपा०, मं०-२)। पान के पत्तों के कुछ परिमाण निम्नलिखित हैं—चौठैया—पान की पचास पत्तियों की एक राशि (गं० द०)। आधा ढोली—पान की १०० पत्तियों की एक राशि। एक ढोली—पान की २०० पत्तियों की एक राशि।

गं० उ० और शाहा० में निम्नांकित परिमाण हैं—

७ ढोली = १ कनवां।
१४ ढोली = १ अधवा।
२८ ढोली = १ पौआ या पावा।
४ पौआ = १ लेसो।
१०८ढोली = १ लेसो (गं० द०)।

[(देशी), मिला० कपर्दिन् (संस्कृ०), स्कोर (अं०)]

कोरीकरल—(मुहा०) पशुओं द्वारा खाई वस्तु का पुनः चबाना, रोमन्थ (पागुर) करना (पट०, गया)। दे०—पगुरी करल। [कोरी+करल; कोरी < कवल (< कवली + √कृ)]

कोरो-(सं०)-(१) पान की पंक्तियों का प्रधान अवलंब (मं०, चंपा०, मग०-५)। पर्या०—कोरई (शाहा०), इकरी (द०, पू०, सा०)। (२) पान के बाग में ऊपर दिये गये छप्पर का आधार-स्तम्भ। पर्या०—खंभा (पट०, गया), खाम्हा। (द० मुं०)। (३) घर में लगे छप्पर का आधार-स्तम्भ। यह लकड़ी या बाँस का होता है तथा कड़ी के रूप में काम में आता है (बिहा०, भाग०)। [देशी, मिला०—कुड्य, कुट्य]

कोलटारा—(सं०) कोयला टालने या उसकाने की लोहे की छड़, जिसका एक छोर टेढ़ा और दूसरा छोर हाथ में पकड़ने लायक बना होता है। (बिह०)। दे०—अँकुड़ा। पर्या०—आँकुड़ा (हरि०)। [कोल (अं०) वा कोयला (हि०)+टारा (< टारना-हि०)]

कोलवाँसी—(सं०) (१) आम का दागदार टिकोला (चंपा०-१)। (२) आम के टिकोले की कोमल गुठली (चंपा०-१, पट०-४, मग०-५)

(३) वह आम, जो चोट खाकर काला पड़ गया हो (शाहा०-१)। [कोल+वाँसी < *कुल्माष, < *कल्माष]

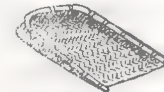
कोलवा—(बि०) कोने वाला, तंग जगह में पड़नेवाला (मुं०-१) पर्या०—कोलक घर=कोनिया घर (मुं०-१), कोला (मग०-५) [कोल+वा (प्र०) < कोण]

कोलवाइ—(सं०) जमीन का छोटा टुकड़ा, जो घर के पास हो (उ०-प०)। दे०—कोला। [कोल+वाइ (प्र०) < कोण]

कोलसार-(सं०)-(१) दे०—गुड़ौर। (२) (पट०, गया, पू०)। दे०—कोल्हुआर। [कोल+सार; कोल < कोल्हू < कूलहंडक (=तोड़नेवाला, आवर्त्त की तरह घूमनेवाला)+सार < शाला]

कोलसार, कोल्हसार—(सं०) वह स्थान, जहाँ ऊख पेरकर गुड़ बनाने के लिए कोल्हू बैठाया जाता है (मुं०-१, पट०-४, मग-५)। [कोल+सार < कोल्हू+सार < शाला; कोल्हू-मिला०-कूलहंडक =तोड़नेवाला, आवर्त्त की तरह घूमनेवाला]

कोलसुप—(सं०)-(१) अनेक प्रकार के अन्नों को फटकने, पँचने और चालने के लिए प्रयुक्त एक साधन, जो बाँस की कमाचियों या मूँज की सींकों का बना होता है। दे०—सूप। (२) अनाज फटकने के लिए प्रयुक्त एक साधन। पर्या०—डगरा (उ०-प० मं०, चंपा०), सूप। [कोल+सुप, कोल (देशी) वा कोल < क्रोड; सुप < शूर्प]


कोलसुप

कोलहकढ़—(सं०) ऊख के कोल्हू को ठीक (दुरुस्त) रखने के लिए किसान की ओर से बढ़ई को मिलनेवाला पुरस्कार (पट०)। दे०—पचरावन। [कोलह+कढ़ < कोल्हू+कढ़ < काढ़ल (बिहा०) < कर्ष < √कृष्]

कोलह पचरानी—(सं०)-(द० भाग०)। दे०—कोलह कढ़ और पचरावन। [कोलह+पचरानी, कोलह < कोल्हू, पचरानी < पच्चर (बिहा०), (हि०) < पच्चनिका (संस्कृ०)=हल का एक भाग, टुकड़ा]

कोलासी—(सं०) दे०—कोलबाँसी।

कोला—(सं०)-(१) जमीन का वह छोटा अंश, जो घर के पास हो तथा शाक-भाजी उत्पन्न करने के लिए प्रयुक्त होता हो (शाहा०, द०-पू०, पट०-४, मग०-५)। पर्या०—कोली, कोलवाइ (उ०-प०), बारी (चंपा०, मं०), खंड, खँड़ (सा०, पट०) (वस्तुतः इसका अर्थ है ध्वस्त घर), घेवारी (गया), गल्ली (बंक० नाम द० भाग०), कोनासी (बंक० शाहा०)। (२) दे०—कोलवा। (३) चारों ओर डरेर (मेड़) से घेरकर बनाया गया खेत (चंपा०-१)। [कोल=गली, तंग रास्ता, तंग जमीन का एक टुकड़ा]

कोलिऐती असामी—(सं०) साधारण काश्तकारों के स्तर से नीचे का एक छोटा रैयत (पू० मं०)। दे०—सिकमी। [कोलिएती+असामी]

कोलिया—(सं०) चारों ओर मेंड़ से घिरा हुआ खेत का छोटा टुकड़ा (शाहा०-१, चंपा०, मं०-२)। [कोल]

कोली—(सं०)-(उ०-प०)। दे०—कोला।

कोल्ह—(सं०) ऊख या तेल पेरने का यंत्र (बिहा०, भाग०)। पर्या०—कोल्हू, कल। दे०—कोल्हू। [< कूलहंडक]

कोल्हकर—(सं०)-(द० मुं०)। दे०—कोलहकढ़ और पचरावन। [कोल्ह+कर < कोल्हू+कर]

कोल्हुआड़—(सं०) वह स्थान, जहाँ कोल्हू गाड़ा जाता है (चंपा०-१, पट०-४, मग०-५, भाग०-१)। [कोल्हु+आड़ < कोल्हू+वाट < कूलहंडक + वाट]

कोल्हुआर—(सं०)-(१) ऊख पेरने तथा गुड़ बनाने का स्थान। पर्या०—गोलौर (द०-प० शाहा०), कोलसार (पट०, गया, पू०), कोल्हुआड़ (चंपा०-१)। (२) दे०—गुड़ौर। [कोल्हु+आर < कोल्हू + आड़ < कूलहंडक + वाट]

कोल्हू—(सं०)-(१) ऊख परने की कल, जो आजकल लोहे की बनी होती है और इसमें तीन बेलन लगे रहते हैं। पहले यह लकड़ी अथवा पत्थर का, आजकल के तेल के कोल्हू की तरह, बना होता था और इसमें ऊख काटकर दिया जाता था।


कोल्हू

ऊपर लोहे का मोहन लगा रहता था, जिससे ऊख का टुकड़ा पेराता था। (२) तेल पेरने की, लकड़ी की बनी कल। मिला०-कूलहंडक (संस्कृ०), कोल्हुओ (देशी), कोल्हू (हि०), कोल (नें०)]


कोल्हू

कोसिला—(सं०) पारिवारिक संपत्ति के अतिरिक्त जमा की जानेवाली व्यक्तिगत संपत्ति (चंपा०-१, पट०-४, मग०-५)। [(संभ०)< कुसूल कोश]

कोस—(सं०) ३५२० गज या दो मील की दूरी की एक नाप। (जगह के अनुसार इसकी दूरी में अंतर होता है।) [क्रोश]

कोसल—(सं०) गुप्त धन। पर्या०—पौगली, कुत्थी, धरोहर (मु०-१, मैं०-२, मग०-१)। [कोसल< कुसूल, कोश]

कोसा—(सं०)-(१) भुट्टे के ऊपर की पत्तियाँ (द०-प० मैं०, चपा०, मैं०-२)। दे०—खोइया। (२) आम के फल में होनेवाली गुठली (चंपा० १)। (३) आम के बीज का गूदा (गिरी), जिसकी रोटी भी पकाई जाती है (मुं०-१)। [कोश (संस्कृ०), कोस (पा०, प्रा०) कोसा (हि०)। कोसो (नें०) = बीजकोश, कोसा, कोसी (बं०) अनाज की वाली या भुट्टे आदि के ऊपर रेशे का गुच्छा]

कोसो—(सं०) एक साथ उत्पन्न जौ और मटर का मिश्रण (द० भाग०)। दे०—जौ-केराई। [(देशी), कोशिका]

कोसुम—(सं०)—(गं०-द०)। दे०—कुसुम। [कुसुम्भ]

कोहँड़ा—(सं०)—(शाहा०-१, चंपा०)। दे०—कुम्हड़ा। [कुष्माण्ड]

कोहा—(सं०)-(१) अन्न रखने का मिट्टी का बर्तन। पर्या०—कटिया (उ०-पू०, द०-प० मैं०), करवा (चपा०)। (२) दही मथने का मिट्टी का बर्तन, जिसकी पेंदी में बाहर से अतिरिक्त मिट्टी लगा दी जाती है। (३) कटोरे के आकार का मिट्टी का एक पात्र (चंपा०, भाग०) [कोश = पात्र—"कोशोऽस्त्री कुड्मले पात्रे दिव्ये खड्गपिधानके"—(मेदि०), कोहा (अस०) = तबे का जलपात्र। कोस (गु०) = चमड़े का बना बाल्टी-जैसा पात्र]

कौंकरी—(सं०) चठैल या खेखसा-नामक फल, जिसकी तरकारी बनती है (मुं०-१)। दे०—चठैल। [कर्कटा]

कौंरी—(सं०) सामा के चावल की खीर (पट०-१) [(देशी), मिला०—कौनी< कंगु]

कौआ-झपान—(सं०) (द०-प० शाहा०)। दे०—कौवा लुकान। [कौआ + झपान (देशी); कौआ < काक, काकोल। झपान (देशी)]

कौआभोग—(सं०) गुण के अनुसार आम का एक भेद (दर०-१)। [कौआ + भोग; कौआ < काक, < काकोल]

कौआरा—(सं०) एक पशु-खाद्य घास (पू० मैं०) [(देशी), मिला०—कावार = एक जलीय घास (मो० वि० डि०)]

कौआलुकान—(सं०) लगभग छह इंच का ऊँचा नया पौधा, जिसमें कौआ छिप सकता हो (गया, सा०, शाहा०)। पर्या०—कौआ-झपान (द० पू०), कौवा-लुकान (चंपा०-१), कौवा-झपान। [कौआ + लुकान (देशी)। कौआ< काक < काकोल। लुकान लुकावल (बिहा०), लुकावा (हि०)< √लुप् < नि + √ली]

कौआ हाँकल—(क्रि०) खेत से कौओं को हटाना (हाँकना)- सर्वत्र)। दे०—हाँकी। [कौआ + हाँकल। कौआ< काक, < काकोल। हाँकल (अनुकरणात्मक शब्दपरक), वा< आ + √हे]

कौकड़ी—(सं०) एक प्रकार की बरसाती लता का फल, जिसकी रसदार या सूखी स्वादिष्ठ तरकारी बनती है (द० भाग०)। दे०—चठैल। [कर्कटी]

कौड़—(सं०)-(प०)। दे०—घूर। [कूट, कौट]

कौड़ी—(सं०)-(१) जमींदार की ओर से अन्न-विक्रेता की नाप पर निर्धारित कर (उ० प०)। पर्या०—मलिकाई चुटकी (द०-पू० मैं०), बयाई (शाहा०), किराया (गया), माँगनी, किआली, केआली (उ०-पू० मैं०), बरदाना (पट०)। (२) समुद्र में उत्पन्न होनेवाला शंख की जाति का एक कीट, जिसका अस्थिकोश भारत में पैसे से कम मूल्य के सिक्के के रूप में व्यवहृत

होता था। इससे बैलों का भूषण बनाया जाता है और बच्चे इससे खेलते हैं। [कौड़ी< *कपर्द (संस्कृ०), कवड्ड (प्रा०), कौड़ी (हि०), कौड़ी (बं०, ओ०, कुमा०), कौड़, कौड़ा (पं०), कौड़ी (ल० प०), कोड्ड, (सि०), कोड़ो, कोड़ू, कोड़ी (गु०), कवड़ा, कवड़ी (मरा०)]

कौनी—(सं०) बाजरे की जाति का सूक्ष्म दानों का एक अनाज (मैं०-२, पट०-४, मग०-५, भाग०-१, चंपा०-१, दर०-१, मुं०-१)। [कङ्गु (संस्कृ०), कुंगुनी, कांकुनी, कौनी, टँगुनी (हि०), काँगुनी, कानी धान (बं०), काँग (मरा०), काँग (गु०), नवणे (कन्न०), प्रेकण पुचेट्टु (तेलु०), गल अरजुन (फा०), दुखुन (अ०)।]

कौर—(सं०)-(१) भूमि को खोद कर बनाया गया छोटा गड्ढा, जिसमें लकड़ी, घास, सूखा गोबर आदि जलाकर जाड़े की रात में ग्रामीण लोग तापते हैं (प०)। दे०—घूर। (२) पीसने के समय जाँता में एक बार दिया जानेवाला अन्न-परिमाण। दे०—झींक। (३) खाने के समय मुँह में एक बार आनेवाला भोजन का परिमाण। [कुंड]

कौराकाढ़ल—(मुहा०) श्राद्धकर्म में भोजन के पहले कौए आदि तिर्यग्योनि के निमित्त उड़द की दाल और भात के कौर का निकाला जाना।

कौर जाएल—(मुहा०) बीज का मर जाना या नहीं उगना (उ०-पू० मैं०)। दे०—बिजमार। [कौर + जाएल, कौर (देशी०), कौरना (हि०) = थोड़ा भूनना, सेंकना। मिला०-√कुडि (दाहे) = जलाना]

कौरीकरल—(मुहा०) पशुओं द्वारा खाई हुई वस्तु का पुनः चबाना, रोमन्थ (पागुर) करना (पट०, गया, चंपा०)। दे०—पगुरी करल। [कौरी + करल। कौर< कवर< कवल (कवली + √कृ)]

कौवा—(सं०)-(१) एक प्रसिद्ध काला पक्षी, काक; (२) एक प्रकार की मछली, जो अंगुली के समान गोल और लंबी होती है एवं जिसका मुँह कौवे की चोंच के समान होता है (चंपा०)। पर्या०—कौवा ठोठी। [कौवा < √*काकोल]

कौवा-झपान (सं०) दे०—कौआ-झपान।

कौवा-ठोठी—(सं०)-(१) (मैं०-२)। दे०—कौवा-(२)। (२) एक लता, जिसके फूल सफेद और नीले रंग के तथा कौवे की चोंच की तरह लंबे होते हैं। [<*काकतुण्डी]

कौवा लुकान—(सं०)-(चंपा०-१)। दे०—कौआलुकान।

कौवा हाँकल—(मुहा०) दे०—कौआ हाँकल।

क्रित्तिका—(सं०) तीसरा नक्षत्र, कृत्तिका। छह तारों का यह नक्षत्र होता है। [कृत्तिका< कृत्ति < √कृत्]

क्वाड—(सं०) चीनी-मिल में ऊख के रस को गाढ़ा करनेवाला एक चौकोर यंत्र (बिह०)। [क्वाड< क्वाड वा क्वाड्रट (अं०) = वर्गाकार]

क्वाड-मैन—(सं०) चीनी-मिल में क्वाड पर काम करनेवाला कर्मचारी (बिह०)। [क्वाड + मैन (अं०)]

क्वार—(सं०) आश्विन मास, कुआर। दे०—आसिन, कुआर। [क्वार< कुआर< कुमार(?)]

ख

खँखड़—(सं०) कुआँ बनाने के लिए खोदा गया गड्ढा (शाहा०-१)। दे०—खाँखड़। [देशी]

खँखड़ा—(सं०)—(१) अन्न का वह ढाँचा, जिसमें केवल भूसा ही हो, अन्न का अंश न हो (चंपा०-१)। पर्या०—खँखरी (शाहा०)। (२) एक पौधा-विशेष, जिसके डंठल से मौर बनता है। कभी-कभी औरतें अपने कान के छेद को बढ़ाने के लिए भी इसका उपयोग करती हैं। [(देशी), मिला०—कंकाल = हड्डियों का ढाँचा-मात्र; खंकर, खंक्खर (संस्कृ०) = छिद्रवाला, खक्खट = कठोर, घना]

खँखड़ी—(सं०)-(१) अन्न के पौधों में लगनेवाला एक रोग, जिससे बाल में दाना नहीं होता। (२) वह अन्न कोश जिसके अन्दर अन्न उत्पन्न ही न हुआ हो। खँखड़ा का स्त्रीलिंग। [(देशी), मिला०—कंकाल (संस्कृ०) =

हड्डियों का ढाँचा। खंक्रर, खंक्खर (संस्कृ०)= छिद्रवाला, खक्खट (संस्कृ०)= कठोर, घना (मो० वि० डि०), खंक्र= कंक= छूछा, खाली (हिं० श० सा०), कंक्रट (संस्कृ०)= कवच, ऊपरी आवरण]

खँखरी—(सं०) (शाहा०) दे०—खँखड़ा।

खँगड़ीवा—(सं०) छोटी पत्तीवाला एक प्रकार का तंबाकू (पू० बिहा०)। दे०—पनउठिया। [(देशी), मिला०—खंगी< खंगना(<√क्षि-क्षये)= छीजना, घटना; खंगी+ड़ीवा (< पंडोर ?)]

खँगरा— (सं०)-(१) ताड़ (ताल) का नया पेड़ (पट०-४, मग०-५, चंपा०)। (२) ताड़ का डंठल-सहित पत्ता (चंपा०, पट०-४, मग०-५)। पर्या०—खगरा, खगरी (पट-४, मग०-५, मैं०-२, चंपा०)। [(देशी), मिला०—खग्गड = एक प्रकार की बेंत]

खँचड़ा—(सं०)—(१) पंकिल, दलदली जमीन या धारा के साथ बहकर जमी हुई मिट्टी (द०-प० शाहा०)। दे०—भास। (२) बदमाश, वर्ण-संकर। [खँच+ड़ा (प्र०)< कच्छ,< ख़च्चर]

खँजड़ाह्—(सं०) वह अन्न, जिसमें कई अन्नों की मिलावट हो (चंपा०-१)। पर्या०—सतंजा (पट०-४, मैं०-२, मग०-५, चंपा०)। [खँज+ड़ाह, मिला०—खंजकारि= खेसारी; मिला०—√खज् (मन्थे), √षच् (समवाये= मिलना)]

खँड़—(सं०)-(१) (सा०, पट०, पट०-४, मग०-५)। दे०—कोला। [खंड] (२) (द० भाग०)। दे०—कोड़ल, कोड़नी। [खँड़< √खडि]

खँड़चर-(सं०)-(द० शाहा०)। दे०—खेरचाँड़ी। [खँड+चर; खँड़< खंड। चर< चाँड़ी= (बिहा०)= अवलंब, स्तम्भ]

खँड़मोड़ा—(सं०) हत्थे (लकड़ी का फावड़ा-जैसा बना औजार) से पानी छिड़ककर खेत को सींचनेवाला पुरुष (पट०, गया)। दे०—हथ-वाहा। [खँड़+ मोड़ा< खंड (= जमीन का टुकड़ा, क्यारी)+ मोड़ा< मोड़ल (बिहा०), मोड़ना (हिं०)]

खँड़वाह्—(सं०)—(पट०)। दे०—खँड़मोड़ा और हथवाहा। [खँड़+ वाह< खंड (= जमीन का टुकड़ा, क्यारी)+ वाह (प्र०) या वाह < √वह्]

खँड़वाहा—(सं०) सींचने के समय खेत में पानी को इधर-उधर बिखेरनेवाला मनुष्य (पट०)। दे०—पनमोरा। [खँड़+ वाहा< खंडवाह]

खँड़सारी—(सं०) खाँड़ (चीनी) तैयार करने का स्थान (गं० द०, पट०-४, मग०-५)। दे०—चीनी के कारखाना। [खँड़+ सारी< खंड+ शाला; खाँड़ (हिं०)]

खँड़हुल—(सं०)-(१) खड़ का जंगल (चंपा०, मैं०-२)। दे०—खढ़ौर। (२) दे०—खँड़हू (पट०-४, मग०-५)

खँड़हू—(सं०) पानी के वेग से बाँध का फटना या कट जाना (गया)। पर्या०—खधिया (मैं०-२), खँड़हुल (पट०-४, मग०-५) [खँड +हू< खंड]

खँडा—(सं०)-(१) गृहस्थी के काम में आनेवाला लकड़ी आदि काटने का एक औजार (मुं०-१)। (२) घर या खेती की सामग्री (पट०-४)। [<*खंड, खड्ग]

खँड़आर—(सं०)-(१) (गया)। दे०—खँड़वाहा और पनमोरा। (२) बाँध के पास टूटकर बना गड्ढा (मग०-५)। [खँड़ + आर< खंड]

खँड़ौरा—(सं०)-(द०-प० शाहा०)। दे०—खुद्दी। [खँड़+ औरा। खँड़< खंड; औरा< चौरा चाउर< चावल (हिं०) < तंडुल (संस्कृ०)। मिला०—खँड़ौरा (हिं०)= मिसरी का लड्डू, ओला; खँड़ौरी (हिं०)= चावल का टुकड़ा। खड़ेउलि (ने०), खुद्दी< खंड—(नेपा०)]

खंढा—(सं०) परती जमीन, जहाँ तरकारी वगैरह बोई जाती है (पट०-२)। [(देशी) मिला०—खंघा (मग०)= गढ़ा]

खंतर—(वि०) खोदनेवाला (मुं०-१)। [खनित्र (संस्कृ०), खणते, खंते (मरा०)< खनित्रक (बला०)]

खंता—(सं०)-(१) पानी के भीतर का बना हुआ गड्ढा (मुं०-१)। (२) नदी-नाले के पास खोदा हुआ गड्ढा। (३) भट्ठी में जलती हुई आग को उसकाने के लिए प्रयुक्त लोहे की छड़। (४) खोदने के लिए लोहे का बना एक लंबा औजार। (५) (द० भाग०) दे०—खई। (६) काटी हुई भूमि और कुएँ की गहराई की नाप के लिए प्रयुक्त एक हाथ का परिमाण (द०-प० शाहा०, द०-प० मैं०)। दे०—खनित, तरहा। [खात, खनित्रक< √खन्]

खंती—(सं०) जमीन खोदने के लिए लोहे का बना एक औजार (मुं०-१, पट०-४, मग०-५, मैं०-२)। [खनित्र, खनित्रिका (संस्कृ०), खनित्ती (प्रा०), खनित्त (प्रा०), खंती (हिं०), खन्ति (ने०), खंति (अस०), खंता (बँ०), खणती, खणता (ओ०), खणतें (मरा०)]



खंती

खंध—(सं०) खेती की हुई भूमि का एक बड़ा भाग। (खंध के खेतों की खाता-संख्या एक होती है, किन्तु प्लाट-सं० अलग-अलग होती है पट०-४, मग०-५)। पर्या०—खंधा, किता, किता (पट०, गया)। [खंध< स्कंध= समूह (खेतों का समूह)]

खंधा—(सं०)—(पट०, गया, पट०-४, मग०-५) दे०—खंध। [खंध< स्कन्ध= समूह (खेतों का समूह)]

खंधौट—(सं०) खेती की हुई भूमि के एक बड़े भाग का उपभाग, जो और भी कई टुकड़ों में बँटा रहता है। दे०—खंध। [खँध+ औट; खंध< स्कन्ध= समूह (खेत-समूह), औट< अवट, आवर्त्त]

खंभा—(सं०)-(१) कुएँ की जगत पर गाड़ा हुआ दो नोकोंवाला खंभा, जिसपर घिरनी नाचती है (पट०, चंपा०, द०-पू०, पट०-४, मग०-५, मैं०-२)। दे०—धुरही। (२) दो कानियोंवाला ऊँचा लंबा स्तम्भ, जिसपर लाठा लटकता रहता है। पर्या०—धुरैया (पट०, शाहा०), धुरई (प०)। (३) ढेंकी का वह स्तम्भ, जिसपर ढेंकी टिकी रहती है (द०-प० शाहा०)। दे०—जंघा। (४) (पट०, गया)। दे०—कोरो। (५) किसी वस्तु के अवलंबन के लिए जमीन में गाड़ा हुआ स्तम्भ। पर्या०—खम्हा, खम्हिआ (बिहा०, आज०)। [स्कम्भ (संस्कृ०), खंभा (हिं०), खम्बा (ने०)]

खंभार—(सं०) दे०—खम्हार।

खई—(सं०)-(१) गड्ढे का किनारा, मेड़। पर्या०—खाई, खत्ता, खावाँ, खंता (द० भाग०), डोभरा= छोटे गड्ढे की मेड़ (गया)। (२) गहरा खेत (चंपा०, मैं०-२)। [खई< खेय (= परिखा)]

खउरा—(सं०) दे०—खौरा।

खउवा—(सं०)-(१) ताड़ की छाल (पट०-१)। (२) ताड़ के पत्ते के काटने पर बचा हुआ सूखकर गिर जानेवाला पत्ते का मूल भाग (पट०-४, मग०-५)। [< खोलक]

खखड़ी—(सं०)—(मुं०-१, मैं०-२)। दे०—खंखड़ी।

खखरा—(सं०)-(१) अनाज के ऊपर का छिलका। धान या किसी भी अनाज का बिना दाने का निष्फल छिलका (द० भाग०, द० मुं०, मग०-५)। दे०—भूसा। (२) खलिहान में पड़ा हुआ निष्फल अनाज (प०, उ०, मग०-५, पट०-४, मग०-१)। दे०—पटपर। [मिला०—खँखड़ा]

खखसो—(सं०)-चठैल नाम की एक तरकारी। यह महीन काँटेदार तथा गोल आकार की होती है। पर्या०—खेखसा (मुं०-१, पट०-१, पट०-४)। [देशी]

खखोड़नी—(सं०)—(दर०-१)। दे०—खखोरनी।

खखोरन—(सं०)-(१) अफीम के बरतन से खुरचकर निकाली गई अफीम (गया, द०-प० शाहा०, मुं०-१)। (२) खुरचकर निकाली गई वस्तु। दे०—खुरचन। [अनु०]

खखोरनी—(सं०) वर्षा या सिंचाई के बाद धूप लगने से खेत की मिट्टी कड़ी हो जाने पर उसे मुलायम करने के लिए, लोहे के काँटों का बना हुआ हल (मैं०, चंपा०-१, मैं०-२)। दे०—कंटा। पर्या०—खखोड़नी (दर०-१)। [अनु०, वा (देशी), खखोरल (बिहा०), मिला०—अनु०—खटखटायते (संस्कृ०), खडहड (प्रा०), खर्खराना, खटखटाना (हिं०),

खरखरान (बं०), खरखर (श्रो०), खड़खड़नु (गु०), खड़खड़ने (मरा०), खर्खराउनु (नें०)]

खखोरी—(सं०)-(चंपा०-१, मैं०-२)। दे०—खखोरन, खुरचनी।

खगड़ा—(सं०) एक पशु-खाद्य घास (शाहा०)। [(देशी), मिला०—खग्गड=एक प्रकार की घास, सरपत (मो० वि० डि०)]

खगरा—(सं०) दे०—खँगरा।

खगरी—(सं०) दे०—खँगरा।

खचोला—(सं०) भूसा रखने के लिए बाँस या रहेठे की बनाई गई एक प्रकार की छोटी टोकरी (शाहा०-१, पट०-४, मग०-५)। [(देशी) मिला०—√खच्=बाँधना]

खजड़ाह—(सं०) कई प्रकार का मिला हुआ अनाज (चंपा०-१)। [मिला०—खँजड़ाह]

खजाना—(सं०)-(१)—(गं० द०)। दे०—कानर, थेवका। (२) धान की उपजवाली ऊँची समतल भूमि के चारों ओर का वह लंबा बाँध, जो पानी को रोक रखता है (द०, उ०-प०, पट०-४, मग०-५)। दे०—डँड़ेड़ी। (३) गाँव के पास का वह जलाशय, जो चारों ओर बाँध से घिरा हुआ होता है तथा जिसका पानी आसपास की जमीन की सतह से ऊँचा होता है। इसका उपयोग खेतों की सिंचाई में किया जाता है (पट०, गया, द० मुं०, पट०-४, मग०-५)। (४) लालटेन का निचला भाग, जिसमें तेल रहता है। (५) कोष, भांडार। (६) भूमि पर निर्धारित राजकीय कर (उ०-पू० मैं०, दर०, चंपा-१)। दे०—मालगुजारी। (७) *नील के कारखाने में पानी इकट्ठा करने की बावली। [खजानह (भ०); खजिना (मरा०)]

खजुरबन्ना—(सं०) खजूर के पेड़ों से भरी हुई जगह (पट०-१, पट०-४, मग०-५, मैं०-२)। [खजुर+बन्ना<*खर्जूर वन]

खजुरिया—(सं०) वह बीजू आम, जो खजूर की तरह लंबा होता है (पट०-१)। [खजुर+इया (प्र०) < खजूर<*खर्जूरक]

खजूर—(सं०) (१) ताड़ की जाति का एक वृक्ष, जो सीधा और लम्बा होता है तथा जिसके फल छोटे, पीले और एक साथ गुच्छे में लटके रहते हैं। पकने पर फल खाया जाता है। इसके वृक्ष से नीरा (ताड़ी) भी निकलता है। इस पेड़ में फलनेवाला फल (चंपा०-१, पट०-४, मग०-५, मैं०-२, भाग०-१, दर०-१, सा०-१, पट-१)। [खर्जूर (संस्कृ०), खज्जूरी (पा०), खज्जूर (प्रा०), खजूर, खिजूर (हिं०, पं०, ल०) खेजूर गाछ, खाजूर (बं०), खजूर, शिन्दी, शिन्धी (मरा०), खजुरी (गु०), खाजूर (अस०), खजुरी (श्रो०), खजर (कश्म०), इच्चुली, इंचुल, करि इंचुल (कन्न०), इएटाचेट्टु, खजुर पंडु (ते०), कट्टुरू (सिंह०), तमर रूतव, खुरमाय हिंदी (फा०), खुरमातर, रतब हिंदी (अ०)]

खटल—(क्रि०) खटना, परिश्रम करना (चंपा०-१)। [(देशी), संभ०—<√घट् (चेष्टायाम्)]

खटाई—(सं०)-(१) चना की पत्तियों पर पड़ा हुआ क्षारांश। दे०—नोनी। (२) आम की सुखाई हुई खटाई। (३) खट्टापन (बिहा०, आज०)। [(देशी), मिला०—खट्टु]

खटावल—(क्रि०) खटल क्रि० का प्रे०। खटाना, पूरी मेहनत कराना।

खड़—(सं०) दे०—खढ़।

खड़कट्टा—(सं०) (चंपा०, द० भाग०)। दे०—खँड़मोड़ा और हथवाहा। [खड़+कट्टा; खड़<खंड; कट्टा<काटल (बिहा०), काटना (हिं०) < √कृन्त्]

खड़चर—(सं०)-(पट०, गया)। दे०—खेरचाँड़ी। [मिला०—खँड़चर]

खड़तरोई—(सं०) एक प्रकार की तरोई, जो तरकारी के काम में आती है। इसका छिलका मोटा और धारीदार होता है (शाहा०-१) [खड़+तरोई (देशी)]

खड़बिड़ाह—(वि०) ऊँची-नीची (असमतल) जमीन (पट०-४, मग०-५, शाहा०-१)। [खड़+बिड़+आह (प्र०); संभ०—<खड़<खड्ड<*खात, गर्त; बिड़<विट (विट्‌ोऽद्रौ…मेदि०)। खड़बड़ (ने०), खड़बड़ी (सि०), खरवर (हिं०)-(नेपा०)]

खड़मास—(सं०) पूस या चैत का महीना, जिसमें विवाहादि शुभ कार्य वर्जित होते हैं (मुं०-१)। पर्या०—खट्‌मास, खरमास (चंपा०, मैं०-२)। [खड़+मास<खर+मास]

खड़हा—(सं०)-(१)(द०-पू० मैं०)। दे०—खेढ़ा। (२) एक जंगली जानवर, जो बिल्ली की तरह और तेज दौड़नेवाला एवं उजला या चितकबरा होता है—खरहा। [खड़+हा<खंड, खात]

खड़ही—(सं०) एक प्रकार की घास, जिससे घर छाया जाता है (दर०-१, मैं०-२)। [(देशी), मिला०—खर, खड़]

खड़ा—(सं०)—(१) बिना हेंगा दिये जुता हुआ खेत। (२) फसल का खेत में लगा रहना। (वि०) (३) खड़ा हुआ। [देशी]

खड़ा टाल—(सं०)-(१) अनाज निकालने के पहले मकई, रहर, आदि का, कटी फसल को सुखाने के लिए उसके ऊपरले भाग को ऊपर करके रखा हुआ, ढेर (गं०-उ०)। (२) टाल की सूखी जमीन, जिसमें वर्षा के अभाव से नमी न हो (मग०-५) [खड़ा+टाल, मिला०—अट्टाल=ऊँचा भवन]

खड़ारा—(सं०) दे०—खड़ार।

खड़ुआ—(सं०) धान का खड़ा पुआल (मुं०-१); कतरा। [खड़ा+उआ]

खड़ुका—(सं०) अफीम या किसी फसल के खेत में उगनेवाली एक घास (उ०-पू० मैं०, शाहा०)। आजकल यहाँ अफीम की खेती नहीं होती है। पर्या०—खरथुआ (पट०, गया), बथुआ, मोचहि (सामा०)। [देशी]

खड़ो, खोंड़—(सं०) पानी बहने के लिए मेंड़ काटकर बनाई गई नाली (मुं०-१)। [देशी, मिला०—खंड]।

खड्ढा—(सं०)—(१) हेंगा या चौकी के निचले भाग में ढेलों को चूर्ण करने के लिए बनाया गया गड्ढा (कहीं-कहीं)। दे०—घघरी। (२) गड्ढा। [< *खात, < *ऋर्ध]

खड्ही—(सं०)—(द०-प० शाहा०)। दे०—खाँड़ी।

खढ़—(सं०) खर, घास। एक विशेष घास, जिससे छप्पर छाया जाता है (भाग०-१, चंपा०)। पर्या०—खर, खड़ [खढ़<खर, कट]

खढ़ार, खढ़ारा—(सं०) धान के खेत की पहली जुताई (मुं०-१)। [देशी, मिला०—खड़ा]

खढ़िआवल—(क्रि०) खेत को जोतकर बिना हेंगा दिये छोड़ देना (चंपा०-१)। [< खड़ा, < खंड]

खढ़ौर—(सं०) वह जमीन, जहाँ छप्पर छाने के काम में आनेवाली घास पैदा होती है। पर्या०—खढ़ौल, खरहुर (गं० द०, चंपा०)। [खढ़+और< *खर+अवट, कट+अवट]

खढ़ौल—(सं०) दे०—खढ़ौर। [खढ़+औल< खट, कट+अवट]

खतहवा झिंगनी—(सं०) एक प्रकार की तरकारी। बड़ी आकृति की झिंगनी (पट०-१)। [खतहवा+झिंगनी (देशी)]

खतियान—(सं०) वह सरकारी रजिस्टर, जिसमें जमीन का पूरा ब्योरा लिखा रहता है (शाहा०-१, पट०-४, मग०-५, मैं०-२, चंपा०, भाग०-१)। [संभ०—खत, खाता< क्षत्रम् (संस्कृ०), खत्तम् (पा०, प्रा०), खाते (मरा०), खातू (गु०, नेपा०)]

खतिऔनी—(सं०) वह वही, जिसमें मालगुजारी का आय-व्यय या हिसाब-किताब अलग-अलग लिखा जाता है (शाहा०-१, पट०-४, मग०-५, चंपा०, मैं०-२)। [देशी, संभ०—<खत (फा०)]

खत्रा—(सं०) (१) दे०—खई। (२) (गं०-द०)। दे०—खाद। [देशी, मिला०—खात]

खदगोर—(सं०) (शाहा०)। दे०—खदोड़ खेत। [खद्+गोर, खद<खाद<खाद्य; गोर<गोबर (?)<गोमल (?); मिला०—गो+मल]

खद्हा—(सं०)—(१) हेंगा या चौकी के निचले भाग में ढेलों को चूर्ण करने के लिए बनाया गया लंबा गड्ढा। (द० मुं०)। दे०—घघरी। (२) गड्हा। [खद<हा (प्र०)<खात]

खदियाओल—(क्रि०) सिंचाई किये बिना ही ऊख बोने पर उसके बीज पर सड़ी पत्ती, घास आदि की खाद देना (द०-प० मं०)। पर्या०—गोआ पटारल (मुहा०) (उ०-प० मं०)। [खदिया+आओल (क्रि० प्र०)< *खाद्य]

खदैया—(सं०) खाद रखने की छोटी गड्ही (मुं०-१)। [खद+ऐया (प्र०) < खाद< *खाद्य]

खदोड़—(सं०) (गं० उ०)। दे०—खादर। [खद+ओड़ (प्र०)< *खाद्य]

खदोड़ खेत (सं०) वह खेत, जिसमें बहुत ज्यादा

खाद पड़ी हो। पर्या०—गोबराएल, भरल (द०-पू० मं०), खदौर (गं० द०), खद्गौर, खरित (शाहा०), पटाएल (गं० उ०)। [खदौड़+खेत < खद + औड़ < खाद्यावट; खेत < क्षेत्र]

खदौर—(सं०) (गं० द०)। दे०—खदौड़ खेत। [खद+और < खाद्य+अवट]

खद्धी—(सं०) खाद। दे०—खादर।

खधरल—(क्रि०)—(१) पानी की धारा या उसकी लहरों के धक्के से किनारे की मिट्टी का कटना (शाह०-१)। (२) घाव के पास के मांस का गिरना (चंपा०-१)। (३) किसी मादा मवेशी (गाय-भंस) की जननेन्द्रिय से सफेद रंग की लस दार चीज का निकलना (चंपा०-१)। (वि०) पानी की धारा या लहरों द्वारा काटी हुई जमीन (चंपा०, पट०-४, मग०-५. मं०-२, भाग०-१)। [खधर+ल (प्र०) < खाद्य* < खात]

खधुक—(सं०) कर्ज लेनेवाला (शाहा०-१)। [देशी. मिला०—खाद्य या खाद]

खधुली—(सं०)-(चंपा)। दे०—खोड़ली।

खधेल—(सं०) पशुओं के खाने के बाद बची हुई व्यर्थ की (अखाद्य) घास, भूसा आदि (शाहा०)। पर्या०—सीठी, उपछन (मग०-५. चंपा०, पट०-३)। दे०—ऌथेर। [खध+एल (प्र०—कुत्सार्थक) < खाद्य]

खधोरल—(क्रि०)। दे०—खधरल।

खन—(सं०) नये कोल्हू को बनाने के लिए बड़ई को दी जानेवाली मजदूरी (उ०-पू० मं०)। [देशी]

खनजीर—(सं०) ईंट या पत्थर का बना कुएं का गोल घेरा। [देशी]

खनल—(क्रि०) खनना, कोडना। [√खन (संस्कृ०, प्रा०), √खण (प्रा०), खनना (हिं०), खनुन (कश्म०), खणणो (कुमा०), खन्नु (नें०), खनिबा (असo), खणवुँ (गु०), खणणे (मरा०), कनिनु (सिंह०)]

खनसारी—(सं०) एक आदमी द्वारा व्यवहृत मछली पकड़ने का वह जाल, जिसमें तीन लकड़ियाँ लगी रहती हैं (उ०-पू० मं०)। दे०—बिसारी। [देशी]

खनावल—(क्रि०) खनल क्रि० का प्रे०। खनवाना, खोदवाना।

खनित—(सं०) काटी हुई भूमि और कुएँ की गहराई की नाप के लिए प्रयुक्त एक हाथ की लकड़ी (द०-प०)। दे०—तरहा। [खनित्र = खंती < √खन्]

खनिता—(सं०) वह जमीन, जो सड़क के किनारे सड़क को भरने के लिए खोदी जाती है (शाहा०-१) [खनित]

खपचल—(क्रि०) किसी नुकीली वस्तु से दूसरी वस्तु पर आघात करना, खपचाना। [(वि०) खपची हुई वस्तु। [क्षपित्र, क्षपित < √क्षप]

खपचार जाल—(सं०) मछली पकड़ने का एक प्रकार का जाल, जिसे दो आदमी दोनों तरफ से पकड़कर अपनी-अपनी ओर खीचे रहते हैं। इसमें नीचे लोहे की गुड़िया लगी रहती है (सा०-१)। [खपचार + जाल < खपचार (देशी)]

खपड़ा, खपरा—(सं०)—(१) कुआँ के बनाने या दीवाल के बांधने में प्रयुक्त भट्ठी में पका मिट्टी का गोल पट्टा। पर्या०—नाद (उ०-प०), मोखड़ा (द०-प० शाहा०), गिरद्दा (पट०), गँडुआ (पट०, द० मुं०), पाट (द०भाग०) (२) छप्पर छाने के लिए मिट्टी का बना और आग में पकाया हुआ लंबा, गोल अथवा चौड़ा एक प्रसिद्ध साधन। घर छाने का खपड़ा दो प्रकार का होता है—नरिया, जो नाली-जैसा होता है और ऊपर से रखा जाता है, दूसरा थपुआ, जो चौड़ा होता है और जिसके किनारे खड़े होते हैं। यह नीचे बिछाया जाता है। आजकल नये ढंग का खपड़ा होता है, जिसे 'टाइल' कहते हैं। [< *खर्पर < *कर्पर (संस्कृ०), खप्पर (प्रा०), खपड़ा (हिं०, नें०,) खप्पड़ (कुमा०) = खोपड़ी। खापरी, खपड़ (गु०), खापड़ी (असo), खपड़ा (बं, ओ०), खपला (मरा०) = टुकड़ा खापर (मरा०)]

खपड़ा, खपरा

खपड़ोइया—(सं०)—(१) चावल में लगनेवाला एक प्रकार का छोटा उजला कीड़ा (चंपा०)।

पर्या०—गड़रा (गया, सा०, मं०, चंपा०. पट०-४, मग०-५)। (२) बेल, नारियल आदि का ऊपरला मोटा छिलका। (३) कछुए के शरीर के ऊपर का भाग। [मिला०—खर्पर]

खपरा—(सं०) दे०—खपड़ा। [खर्पर, कर्पर]

खपरा छाअल—(मुहा०) खपड़े से घर का छाना। [खपरा+छाअल; खर्पर+छादन]

खपरा फेरल—(मुहा०) खपड़ा फेरना या खपड़े की छावनी की मरम्मत करना।

खपड़ा बदलल—(मुहा०) दे०—खपरा फेरल।

खपावल—(क्रि०) खपाना, समाप्त करना, आँख बचाकर किसी का माल उड़ाना। [< क्षप्]

खपिआर—(सं०) पानी में फेंककर मछली मारने का एक प्रकार का जाल। [क्षपित्र (?)]

खभड़ल—(वि०) खोदने या खिसकने के कारण बना गड्ढा। पर्या०—खभरल।

खभरल—(वि०) दे० खभड़ल।

खभार—(सं०)—(१) ईंट आदि से बांधने के पहले खोदा गया कुएँ का बड़ा गोल ढांचा (गया)। दे०—दवड़। (२) गड्ढा। (३) सूअरों के रहने की जगह। पर्या०—खोभार (चंपा०)। [मिला०—स्कम्भ, कपाट (संस्कृ०), खपाच (हिं०)]

खभारल—(क्रि०)—(१) जमीन को हलके-हलके कोड़कर मिट्टी को ऊपर-नीचे करना (शाहा०-१)। (२) नदी की लहरों से जमीन का धीरे-धीरे कटना। [खभरना (हिं०)]

खमहरुआ—(सं०) एक लता, जिसके कंद और फल दोनों की तरकारी बनती है (मुं०-१)। दे०—खम्हरुआ। [देशी, मिला०—क्षमारुह (?)]

खम्हल—(क्रि०)—(१) पशुओं का दुर्बल होना (पट०-४)। (२) दे०—खाभल—३।

खम्हरुआ—(सं०) एक प्रकार का कंद, जिसकी तरकारी बनती है (पू०, मं०-२)। दे०—लतार। [(देशी), मिला०—क्षमारुह (?), वाराही कंद (संस्कृ०), बाराह कंद, गेंठी (हिं०), चामार आलु, चामालु, चुवड़ि आलु (बं०), डुक्कर कंद, वाराही कंद (मरा०), सुअरिआ, सालिवणा वेल्य (गु०)]

खम्हा—(सं०)—(उ०-प०, द० मुं, पट०, चंपा०, द०-पू०, पट०-४, मग०-५, मं०-२, भाग०-१, आज०)। दे०—खंभा और धुरही [< *स्कम्भ]

खम्हार—(सं०)—(द०-पू० मं०)। दे०—गांज। [खम्हा + र (प्र०) < *स्कम्भ]

खम्हार, खँभार—(सं०)—(१) फसल तैयार करने की जगह, खलिहान (मुं०-१, दर०-१)। दे०—खरिहान। (२) (द०-पू० मं०)। दे०—गांज। [खम्हा+र (प्र०) < *स्कम्भ]

खम्हिआ—(सं०)—(चंपा०, आज०)। दे०—खंभा।

खयरा—(सं०) वह बैल, जिसका रंग खैर की तरह थोड़ा लाल हो। (पट०-१)। पर्या०—खैरा। [खयर + आ (प्र०), खैर < *खदिरक (संस्कृ०), खइर (प्रा०), खइर (कश्म०) खैरो (नें०), खैरा (हिं०, पं०), खेरो (गु०), खैरा (मरा०)]

खरहरा—(सं०)—(१) खलिहान के अन्न को बुहारने की झाड़ू (द० भाग०)। दे०—सिरहथ। (२) बथान आदि बुहारने के लिए रहेठे आदि की बनी झाड़ू। [खर+हरा < खर, खड = घास, तृण, अथवा < खल = खलिहान, हरा < √हृ]

खर—(सं)—(१) खढ़; एक प्रकार की विशेष घास, जो घर छाने के काम में आती है (चंपा०-१)। पर्या०—खड़, खढ़, खरह (चंपा०)। (२) एक प्रकार की घास। [(देशी), मिला०—कट, कुट = घास, तृण; खड, खट (संस्कृ०), खडो (प्रा०), खर (हिं०, पं०), खर (नें०), खड (गु०, मरा०), खोरु (कश्म०), खड़ा (ओ०), खड्डु (सिं०) = खल्ली (नेपा०)]

खरई—(सं०)—(१) एक प्रकार की घास। (२) रब्बी या चैती फसल का, वि[illegible]रहर का, अनाज निकालने के बाद बचा हुआ डंठल (पट०, मग०-५)। दे०—ररेठा। (३) पान की लता के ऊपर की घनी झाड़ी। पर्या०—खरचा (द०-प० शाहा०), कचुआ (द० मुं०)। [(देशी) मिला०—कट, कुट, खड, खट]

खरकल—(क्रि०)—(१) बाढ़ के पानी का हट

जाना, खत्म होना (मुं०-१)। (२) छिन्न-भिन्न होना (मुं०-१), खिसकना (चंपा०)। (३) चुपके भाग खड़ा होना (मुं०-१)। [खरक+ल (प्र०) < *खरक< √खर। मिला०—खर्कनु (ने०) = इकट्ठा होना। खड़कनुँ (गु०) = व्यवस्था करना, गाँजना]

खरकावल—(क्रि०) खरकल क्रिया का प्रेरणार्थक; खरकाना।

खरकोटी—(सं०) खरिका रखने के लिए दीवार में बना छिद्र (गया, द०-प० बिहा०)। [खरक+ओटी < खरिका+ओटी, संभ०—< *खडक+अवट]

खरचराई—(सं०)-(गं० उ०, गया)। दे०—खर-चरी। [खर+चर+आई (प्र०)। खर (देशी) अथवा < कट+चराई < √चर]

खरचरी—(सं०) चरागाह के मालिक को दिया जानेवाला शुल्क (गं० उ०)। पर्या०—खरच-राई (गं० उ०, गया), बरदिया (शाहा०), कास चराई (मुं०, पट०, पू०), कास चराई (मुं०, पट०, पू०), देना (मुं०, पट०, पू०), भैंसोंधा (मुं०, पट०, पू०), बरदाना (मुं०, पट०, पू०), दैना (द०-पू०)। यह शुल्क कहीं-कहीं केवल भैंसों के चराने के लिए ही लिया जाता है, अतएव 'भैंसोंधा' कहा जाता है। [खर+चर+ई (प्र०), मिला०—खरचराई]

खरचल—(क्रि०)-(१) पात्र आदि में लगी किसी वस्तु को दूसरी वस्तु से खरोचना। (२) व्यय करना।

खरचा—(सं०)-(१) (द०-प० शाहा०)। दे०—खरई। [देशी, मिला०—खरई] (२) खेती आदि का व्यय। [खर्च (फा०)] (३) सीपी या लोहे का बना खुरचने का छोटा साधन (द० भाग०)। [< खरचल (बिहा०)]

खरचारु—(सं०)-(द० भाग०)। दे०—खेर-चांड़ी। [खर+चारु, खर < खंड, चारु < चौंड़ी (बिहा०)]

खरचालों—(सं०)-(पट०, गया)। दे०—खेर-चांड़ी। [खर+चालों। मिला०—खरचारू]

खरथुआ—(सं०)-(पट०, गया, मग०-५)। दे०—खड़ुका। [खर+थुआ। < खर, थुअ-ना (देशी)]

खरबटाइ—(सं०) खेत में ही, कटे हुए अनाज के बोझों को बाँटने की प्रक्रिया (चंपा, द०-पू० मुं०)। दे०—बोझ बटाई। [खर+बट+आइ (प्र०), खर < कट, < खड, < खट+बटाइ < बटाई < बंटन]

खरबिरवा—(सं०) वह औषध, जो वनस्पति से प्राप्त होता है (चंपा०-१)। [खर+बिरवा। खर < कट, खट, खड, बिरवा < बीज < वीर्य]

खरबूजा—(सं०) तरबूज की तरह का एक फल, जिसमें पानी नहीं होता तथा स्वाद में सक्षार मिठास होती है। पर्या०—ज्ञालमी (प० मुं०, पट, प०), फूँट (द०-पू०)। [(देशी), खर+बूजा, बूजा < बीज (?)। खर्बूज (संस्कृ०—मा० प्र० नि०), खरबुजा, खरमुज (बं०), खर्बुज, खरबूज (मरा०), तेलिया, शक्करटेटी, तलिया भीमड़ा (गु०), खरबूज (ते०), सड़जसौते, षड्भुजा (क०), खर्बूज (फा०) खरपुजह (अ०)]

खरवन—(सं०) फसल काटने के समय लोहार, बढ़ई, नाई और धोबी को किसान की ओर से मिलनेवाला एक पाँजा धान या कोई दूसरी फसल (उ०-प० शाहा०)। पर्या०—केरा, पुरी, पालपसेरी (प० मुं०)। [खर+वन; खर < *कट, अथवा < काटल (बिहा०), काटना (हिं०) < √कृत। वन < √वन् (याचने) (?), अथवा खर+वन; खर (= डंठल-सहित फसल) का मिलनेवाला बन (मजदूरी)]

खरवाँस—(सं०) चैत और पौष का महीना, जो हिन्दू-रीति के अनुसार अशुभ माना जाता है और जिसमें शादी-ब्याह आदि शुभ कार्य नहीं होते। (शाहा०-१, चंपा०)। [खर+वाँस < *खर+मास]

खरवा—(सं०) वह जमीन, जिसमें चूना और गंधक का अंश अधिक मात्रा में हो (द०-भाग०)। दे०—खारो। [खर+वा (प्र०, अस्त्यर्थक) < क्षार]

खरवाह—(सं०) समय के पहले सूखी जमीन में धान की बोआई। दे०—खरहर बावग। [खर+वाह। < खर, < कट वा < खड़ा (हिं०). वाह (प्र०) अथवा < √वह (?)]

खरवाहा—(सं०)-(१) सिंचाई करनेवाला पुरुष (द०-प० मुं०)। दे०—पनछन्ना। (२) सींचने के समय खेत में पानी को इधर-उधर बिखेरनेवाला मनुष्य (सा०)। दे०—पनमोरा। [खर + वाहा। खर < खंड अथवा कर्ष। वाहा (प्र०) वा < √वह]

खरवे, खरवेह—(सं०) सूखी जमीन में समय के पहले की जानेवाली धान की बोआई (गया)। दे०—खरहर बावग। [खर+वे। खर < *कट, < *कर्ष अथवा खड़ा (हिं०)। वे < वाप (= वपन) (?) < √वप]।

खरवेह—(सं०) सूखी जमीन में समय के पहले की जानेवाली धान की बोआई (गया)। दे०—खरहर बावग। [खर+वेह, मिला०—खरवे]

खरसान—(सं०) तम्बाकू का टूटा असार डंठल और पत्ता (द०-पू० मुं०)। दे०—झाला। [देशी, वा खर+सान। खर < कट (= घास) +सान < समान (सन—बिहा० = सामान, यथा—ऐसन, बैसन, तैसन आदि)। मिला०—खर-सन (संता०) = बिना तैयार किया हुआ तम्बाकू

खरहर बावग—(सं०) सूखी जमीन में समय के पहले की जानेवाली धान की बोआई। पर्या०—धुरिया बावग (गं०उ०), ठर्रा (शाहा०, पट०), खरवाह, खरवेह, खरवे (गया), बीघा (पट०), धुरधुस्सा (द० मुं०), खरहरिया बावग (मुं०-२, पट०-४, मग०-५)। [खर+हर+बावग। खर < कट, कर्ष अथवा खड़ा (सूखी भूमि के लिए प्रयुक्त) +हर < √हृ अथवा खर (< खड़ा) + हर < हल। बावग < वाप (+क) < √वप्]

खरहरल—(क्रि०) खरहरे से जमीन को झाड़ना। (वि०) खरहरे से झाड़ी गई जमीन आदि।

खरहरा—(सं०) खलिहान में अन्न बुहारने अथवा बथान बुहारने के लिए प्रयुक्त झाड़ू (चंपा०)। दे०—सिरहथ। [खर+हरा। खर < कट अथवा खल (= खलिहान) हरा < √हृ वा झाड़ा < झाड़ल (बिहा०) < उद्+ < हृ। खराट (मरा०) < क्षर+यष्टि (संस्कृ०)—(म० व्यु०)]

खरहरिया बावग—(सं०)—(मुं०-२, पट०-४, मग०-५)। दे०—खरहरा बावग।

खरहरा—(सं०)—(द० भाग०)। दे०—खरहरा।

खरहा—(सं०)। दे०—खड़हा।

खरही—(सं०)—(१) पान की लता के आधार स्तम्भ, जो प्रत्येक कोरो के बीच में छै-छै पड़ते हैं। [(देशी)—संभ० < खर वा खंड] (२) बड़ा खढ़ (चंपा०-१)। [खर+ही (प्र०) < खर, मिला०—कट। खरही (हिं०) = घास या अन्न का ढेर]

खरहुल—(सं०)—(गं० द०)। दे०—खढ़ोर। [खर+हुल (प्र०) अथवा < भू]

खरिकौता—(सं०) खरिका (दंतखोदनी) रखने के लिए दीवार में बना छिद्र या ताखा (उ०-पू० मुं०)। पर्या०—मुक्का (पट०-४), खरकोटी, भुड़की (गया, द०-प० बिहा०)। [खरिका+औता। खरिका < खर (हिं०)+इका (अल्पा० प्र०), औता < अवट (संस्कृ०) = खात, छिद्र]

खरित—(सं०)—(शाहा०)। खदोड़ खेत। [देशी]

खरिदगी—(सं०)—(१) खरीद कर अधिकृत की गई करमुक्त भूमि। पर्या०—इनाम, इनामात, खैरात (शाहा०), खुसबकत (द० भाग०) = प्रसन्नता या सौहार्द के कारण मिली हुई अधिकृत करमुक्त भूमि। (२) खरीद कर जमीन पर अधिकार करनेवाला, न कि मौरूसी हकवाला (शाहा०)। (वस्तुतः शब्दार्थ—खरीद की हुई है) दे०—गैरमौरूसी। [खरिद+गी (प्र०) < खरीद (फा०), मिला०—क्रीत, क्रीति < √क्री]

खरिदार—(वि०) खरीदी हुई सम्पत्ति का धन-स्वामी। पर्या०—बैदार। [खरिद+दार (प्र०) < खरीद (फा०)]

खरिहान—(सं०) फसल की दौनी के लिए बनी हुई जगह (बिहा०, आज०) पर्या० — खरिहानी (पट०, दर०-१)। [खरि+हान < *खलधान, < * खलाधान, < * खले+धानी—(नेपा०)]


खलिहान

खलिहान (हिं०), खलियान्, खलिहान्, खलो

जाना, खत्म होना (मुं०-१)। (२) छिन्न-भिन्न होना (मुं०-१), खिसकना (चंपा०)। (३) चुपके भाग खड़ा होना (मुं०-१)। [खरक+ल (प्र०) <*द्धरक< √द्धर। मिला०—खर्कनु (ने०)=इकट्ठा होना। खड़कवुँ (गु०)= व्यवस्था करना, गाँजना]

खरकावल—(क्रि०) खरकल क्रिया का प्रेरणार्थक; खरकाना।

खरकोटी—(सं०) खरिका रखने के लिए दीवार में बना छिद्र (गया, द०-प० बिहा०)। [खरक+ओटी< खरिका+ओटी, संभ०—<*खडक+अवट]

खरचराई—(सं०)-(गं० उ०, गया)। दे०—खरचरी। [खर+चर+आई (प्र०)। खर (देशी) अथवा< कट+चराई< √चर]

खरचरी—(सं०) चरागाह के मालिक को दिया जानेवाला शुल्क (गं० उ०)। पर्या०—खरचराई (गं० उ०, गया), बरदिया (शाहा०), कास चराई (मुं०, पट०, पू०), कास चराई (मुं०, पट०, पू०), देना (मुं०, पट०, पू०), भैंसोंधा (मुं०, पट०, पू०), बरदाना (मुं०, पट०, पू०), दैना (द०-पू०)। यह शुल्क कहीं-कहीं केवल भैंसों के चराने के लिए ही लिया जाता है, अतएव 'भैंसोंधा' कहा जाता है। [खर+चर+ई (प्र०), मिला०—खरचराई]

खरचल—(क्रि०)-(१) पात्र आदि में लगी किसी वस्तु को दूसरी वस्तु से खरोचना। (२) व्यय करना।

खरचा—(सं०)-(१) (द०-प० शाहा०)। दे०—खरई। [देशी, मिला०—खरई] (२) खेती आदि का व्यय। [खर्च (फा०)] (३) सीपी या लोहे का बना खुरचने का छोटा साधन (द० भाग०)। [<खरचल (बिहा०)]

खरचारु—(सं०)-(द० भाग०)। दे०—खेरचांड़ी। [खर+चारु, खर< खंड, चारु< चौंड़ी (बिहा०)]

खरचालों—(सं०)-(पट०, गया)। दे०—खेरचांड़ी। [खर+चालों। मिला०—खरचारू]

खरथुआ—(सं०)-(पट०, गया, मग०-५)। दे०—खडुका। [खर+थुआ। <खर, थो८ ना (देशी)]

खरबटाइ—(सं०) खेत में ही, कटे हुए अनाज के बोझों को बाँटने की प्रक्रिया (चंपा, द०-पू० मुं०)। दे०—बोझ बटाई। [खर+बट+आइ (प्र०), खर<कट, <खड, <खट+बटाइ<बटाई< बंटन]

खरबिरवा—(सं०) वह औषध, जो वनस्पति से प्राप्त होता है (चंपा०-१)। [खर+बिरवा। खर< कट, खट, खड, बिरवा< बीज< वीर्य]

खरबूजा—(सं०) तरबूज की तरह का एक फल, जिसमें पानी नहीं होता तथा स्वाद में सक्षार मिठास होती है। पर्या०—ज़ालमी (प० मुं०, पट, प०), फूँट (द०-पू०)। [(देशी), खर+बूजा, बूजा<बीज (?)। खर्बूज (संस्कृ०—मा० प्र० नि०), खरबुजा, खरमुज (बं०), खर्बुज, खरबूज (मरा०), तेलिया, शक्करटेटी, तलिया भीमड़ा (गु०), खरबूज (ते०), सड़जसौते, षड़भुजा (क०), खर्बूज (फा०) खरपुजह (अ०)]

खरवन—(सं०) फसल काटने के समय लोहार, बढ़ई, नाई और धोबी को किसान की ओर से मिलनेवाला एक पांजा धान या कोई दूसरी फसल (उ०-प० शाहा०)। पर्या०—केरा, पुरी, पालपसेरी (प० मुं०)। [खर+वन; खर< *कट, अथवा <काटल (बिहा०), काटना (हिं०) <√कृत। वन< √वन् (याचने) (?), अथवा खर+वन; खर (=डंठल-सहित फसल) का मिलनेवाला बन (मजदूरी)]

खरवाँस—(सं०) चैत और पौष का महीना, जो हिन्दू-रीति के अनुसार अशुभ माना जाता है और जिसमें शादी-ब्याह आदि शुभ कार्य नहीं होते। (शाहा०-१, चंपा०)। [खर+वाँस< *खर+मास]

खरवा—(सं०) वह जमीन, जिसमें चूना और गंधक का अंश अधिक मात्रा में हो (द०-भाग०)। दे०—खारो। [खर+वा (प्र०, अल्पार्थक) <क्षार]

खरवाह—(सं०) समय के पहले सूखी जमीन में धान की बोआई। दे०—खरहर बावग। [खर+वाह। <खर, <कट वा< खड़ा (हिं०), वाह (प्र०) अथवा < √वह (?)]

खरवाहा—(सं०)-(१) सिंचाई करनेवाला पुरुष (द०-प० मुं०)। दे०—पनछन्ना। (२) सींचने के समय खेत में पानी को इधर-उधर बिखेरनेवाला मनुष्य (सा०)। दे०—पनमोरा। [खर + वाहा। खर< खंड अथवा कर्ष। वाहा (प्र०) वा< √वह]

खरवे, खरवेह—(सं०) सूखी जमीन में समय के पहले की जानेवाली धान की बोआई (गया)। दे०—खरहर बावग। [खर+वे। खर< *कट, <*कर्ष अथवा खड़ा (हिं०)। वे <वाप (=वपन) (?) <√वप]।

खरवेह—(सं०) सूखी जमीन में समय के पहले की जानेवाली धान की बोआई (गया)। दे०—खरहर बावग। [खर+वेह, मिला०—खरवे]

खरसान—(सं०) तम्बाकू का टूटा असार डंठल और पत्ता (द०-पू० मुं०)। दे०—झाला। [देशी, वा खर+सान। खर< कट (=घास) +सान <समान (सन—बिहा०=सामान, यथा—ऐसन, वैसन, तैसन आदि)। मिला०—खरसन (संता०)=बिना तैयार किया हुआ तम्बाकू

खरहर बावग—(सं०) सूखी जमीन में समय के पहले की जानेवाली धान की बोआई। पर्या०—धुरिया बावग (गं०उ०), ठर्रा (शाहा०, पट०), खरवाह, खरवेह, खरवे (गया), बीघा (पट०), धुरधुस्सा (द० मुं०), खरहरिया बावग (मुं०-२, पट०-४, मग०-५)। [खर+हर+बावग। खर<कट, कर्ष अथवा खड़ा (सूखी भूमि के लिए प्रयुक्त) +हर<√हृ अथवा खर (∠खड़ा) + हर <हल। बावग <वाप (+क) <√वप्]

खरहरल—(क्रि०) खरहरे से जमीन को झाड़ना। (वि०) खरहरे से झाड़ी गई जमीन आदि।

खरहरा—(सं०) खलिहान में अन्न बुहारने अथवा बथान बुहारने के लिए प्रयुक्त झाड़ू (चंपा०)। दे०—सिरहथ। [खर+हरा। खर<कट अथवा खल (= खलिहान) हरा <√हृ वा झाड़ा <झाड़ल (बिहा०) <उद्+<हृ। खराट (मरा०)< क्षर+यष्टि (संस्कृ०)—(म० व्यु०)]

खरहरिया बावग—(सं०)—(मुं०-२, पट०-४, म० ५)। दे०—खरहरा बावग।

खरहरा—(सं०)—(द० भाग०)। दे०—खरहरा।

खरहा—(सं०)। दे०—खड़हा।

खरही—(सं०)—(१) पान की लता के आधारा स्तम्भ, जो प्रत्येक कोरो के बीच में छै-छै पड़ते हैं। [(देशी)—संभ० <खर वा खंड] (२) बड़ा खढ़ (चंपा०-१)। [खर+ही (प्र०) <खर, मिला०—कट। खरही (हिं०)=घास या अन्न का ढेर]

खरहुल—(सं०)—(गं० द०)। दे०—खढ़ौर। [खर+हुल (प्र०) अथवा< भू]

खरिकौता—(सं०) खरिका (दंतखोदनी) रखने के लिए दीवार में बना छिद्र या ताखा (उ०-पू० मुं०)। पर्या०—मुक्का (पट०-४), खरकोटी, मुड़की (गया, द०-प० बिहा०)। [खरिका+औता। खरिका<खर (हिं०)+इका (अल्पा० प्र०), औता <अवट (संस्कृ०)= खात, छिद्र]

खरित—(सं०)—(शाहा०)। खदोड़ खेत। [देशी]

खरिदगी—(सं०)—(१) खरीद कर अधिकृत की गई करमुक्त भूमि। पर्या०—इनाम, इनामात, खैरात (शाहा०), खुसवकत (द० भाग०)= प्रसन्नता या सोहार्द के कारण मिली हुई अधिकृत करमुक्त भूमि। (२) खरीद कर जमीन पर अधिकार करनेवाला, न कि मौरूसी हकवाला (शाहा०)। (वस्तुतः शब्दार्थ—खरीद की हुई है) दे०—गैरमौरूसी। [खरिद+गी(प्र०)< खरीद (फा०), मिला०—क्रीत, क्रीति< √क्री]

खरिदार—(वि०) खरीदी हुई सम्पत्ति का बनस्वामी। पर्या०—बैदार। [खरिद+दार (प्र०) <खरीद (फा०)]

खरिहान—(सं०) फसल की दौनी के लिए बनी हुई जगह (बिहा०, आज०) पर्या० — खरिहानी (पट०, दर०-१)। [खरि+हान <*खलधान, <* खलाधान, <* खले+धानी—(नेपा०)] खलिहान (हिं०), खलियान्, खलिहान्, खलो



खलिहान

(नें०), खलिवारा (पं०, सि०, ल०) < *खल-वाट । खल (बं०), खला (असo, श्रो०), खरा (सिं०), खलुँ (गु०), खले (मरा०), कल (सिंह०)]

खरिहानि—(सं०) दे०—खरिहान ।

खरिहानी—(सं०)-(१) (पट०-४, पट०, चंपा० १, मग०-१) । दे०—खरिहान । पर्या०—खरि हानि । (बर०-१)[खरि+हानी, खरी+हानि +ई (प्र०) < *खलघान, *खलघान्य, *खलाधान; < *खले+धानी—(नेपा०)] २—चौकीदार को किसान की ओर से मिलने-वाला पारिश्रमिक, जो खलिहान में ही दिया जाता है (उ० प०, मं०-२, मग०-५) । दे०—चौकीदारी । ३—बढ़ई को किसी हथियार की मरम्मत आदि कार्य करने के बदले मिलने-वाली मजदूरी, जो प्रायः खलिहान में ही मिलती है (चंपा०, मं०, मं०-२, पट०-४, मग०-५) । दे०—धाली । ४—चमार को जूता बनाने के बदले मिलनेवाली मजदूरी (शाहा०, गया) । दे०—भाँवर ।

खरी—(सं०) तेल निकाल लेने के बाद तेलहन की सीठी । दे०—खरीं ।

खरीफ—(सं०) दे०—रब्बी । [खरीफ (अ०)]

खरुआएल—(सं०)—(१) बैंगन आदि तरकारी के पौधों की वह अवस्था, जब फलना बंद हो जाता है तथा पेड़ सूखने लगते हैं (चंपा०-१) । (क्रि०) २—किसी पौधे का सूखना (चंपा०-१, मग० ५) । [खरु+आएल (प्र०) < *खर अथवा खरू (=खेत)]

खरुका—(सं०) (१)—अफीम में लगनेवाला एक रोग (ब०-प० शाहा०) । (२) फसल में लगने-वाला एक रोग । पर्या०—जाला (मं०, पट०, पू०), पक्खब (प० मं०, गया), गुरका (प०, प० मं०) । [(देशी), मिला०—खरु, खरुक (संस्कृ०) = उजला]

खरुहन—(सं०) एक से अधिक बार रोपा जाने-वाला बीया (गं० उ०, मं० २) । दे०—खारु । [खरु+हन, खरु < उखारु < उखारल (बिहा०) उखाड़ना (हिं०) < *उत्खात (संस्कृ०) < √उद्+√खन्; हन < *धान्य]

खरुहान—(सं०)—(उ०-पू० मं०) । दे०—खारु । [खरु+हान । मिला०—खरुहन]

खरुहो—(सं०)-(१) भेड़, बकरी आदि पशुओं का समूह (द० भाग०) । दे०—झुंड । (२) छोटे-छोटे बच्चे । [मिला०—क्षुद्रक, क्षुल्लक, खुड्डुक (प्रा०), मिला०—खरही (हिं०) = घास, अन्न आदि का ढेर ।]

खरैठा—(सं०) वह स्थान, जहाँ मूंज नामक घास पैदा होती है (द० मुं०) । दे०—मुजवानी । [खर+ऐठा (प्र०) अथवा < √स्था]

खरैल—(सं०) एक आदमी द्वारा प्रयुक्त होने-वाला मछली पकड़ने का वह जाल, जिसमें छह लकड़ियाँ लगी रहती हैं । [देशी, संभ०—खर+ऐल < षड्+ऐल (देशी प्र०) (?)]

खरोर—(सं०) खड़ की बनी झोपड़ी । [खड़ो+ +घर < कट; < खट+गृह]

खर्रा—(सं०)-(१) खलिहान में अन्न बुहारने के लिए प्रयुक्त झाड़ू (प० मं०) । (२) घोड़े को माँजने (खरहरने) के लिए लोहे या रस्सी की बनी कूची । (३) खाज पैदा करनेवाला रोग, खुजली । (४) खारा पानी । [खर-खर शब्द करनेवाला—अनु०]

खर्री-(सं०) तेलहन का वह भाग, जो तेल निकाल लेने के बाद कोल्हू में बचा रहता है और जिसका उपयोग पशुओं के चारे या खाद में होता है (सा०, चंपा०) । पर्या०—खल्ली । [कल्क]

खर्रो—(सं०) एक प्रकार की बरसाती तरकारी, झिगनी (प०) ।

खलकोइया—(सं०)-(१) मंड़ुआ अथवा किसी दूसरे अनाज के दाने निकाल लेने के बाद बची हुई ऊपर की भूसी (पट०, गया, पट०-४, मग०-५) । दे०—डाँटी । (२) मकई के ऊपर का पत्ता । (३) चमड़ा । (४) छिलका । [खलको +इया (प्र०) अथवा खल+कोइया । खल < छाल < √छल् (=संचलने) वा खल्ल (संस्कृ०), खाल (प्रा०), छिलका, खाल (हिं०), खलखलाओ (संता०) = चमड़ा उघारना (खाल उतारना), परती जोतना । कातड़ी (मरा०), चामड़ी, चामडु (गु०), खलड़ि = < *खल्ल—(नेपा०); कोइया < कोशिक]

खलखलाएल—(क्रि०)—(१) मछली का पानी में इस तरह घूमना कि पानी ऊपर तक उछल पड़े (भोज०) । (२) पानी का खौलना । [अनु०]

खलचोइया—(सं०) भुट्टे के ऊपर की पत्तियाँ (चंपा०) । दे०—खोइया । [खल+चोइया = चोइँटा (बिहा०), चोई (हिं०) < चोच (संस्कृ०) = छिलका । खल = क्षाल, क्षालित । मिला०—खलकोइया]

खलड़ी—(सं०) चमड़ा । त्वचा । दे०—चाम । [खल+ड़ी < *खल्ल, < छाल]

खलवा—(सं०) गहरी जमीन, जिसमें पानी नहीं हो । दे०—खाल । [खल+वा (प्र०) < खात (?) अथवा खल (=खलिहान) > खल्य । मिला०—खल्ल = नीची भूमि (= 'खल्लो वस्त्रप्रभेदे स्याद् गर्त्ते चर्मणि चातके'—मेदि०]

खलसी—(सं०) एक प्रकार की मछली । [देशी]

खलार—(सं०)—(१) वह गहरी जमीन, जिसमें पानी न हो (उ०-पू० चंपा०, भाज०) । दे०—खाल । (२) नीची जमीन । (३) खाल, चमड़ा । [खल+आर (=हरा < घरा), < खात (?) अथवा खल (=खलिहान) ∠ खल्य । खल्ल-घरा । खातघरा वा खलघरा]

खलिहानी—(सं०) किसान द्वारा अधिकार जता-कर लिया गया भत्ता, जो विशेषतः खलिहान की रक्षा आदि के नाम पर लिया जाता है (पट०) । पर्या०—भाँवर (शाहा०), मँगनी, माँगन (पू० मं०, पट०-४) । [खलि+हान+ई (प्र०) < खलेधानी] टि०—खलिहान में तैयार अन्न के बँटवारे की पद्धति में फसल की कटनी जमींदार और किसान दोनों की देख-रेख में होती है और वह फसल एक संयुक्त खलिहान में एकत्र की जाती है । उसकी देख-रेख दोनों दलों की ओर से सावधानी से होती है । जबतक गाँव की अधिकृत सब फसल खलिहान में आ नहीं जाती है, दौनी नहीं होती । जब-तक दौनी, तौलाई और बँटवारा नहीं हो जाता, तबतक उस अन्न में से कोई कुछ भी नहीं उठा सकता है । किसान कटनी के बाद खेत में से गिरे हुए अनाज की बाल को लोढ़ (चुन) कर ले सकता है । हाँ, फसल का एक विशेष परिमाण भी उसे मिलता है, जिसे वह मजदूरी में काटनेवालों को देता है । संयुक्त फसल में से ही गाँव के बढ़ई, कुम्हार, लोहार, चमार, मुंशी आदि कारीगर या पौनीवाले अपना-अपना भाग ले जाते हैं; क्योंकि वे वर्ष-भर किसान और जमींदार का काम करते रहते हैं । बँटवारे के लिए तैयार अनाज की राशि से इधर-उधर खसरा आदि के साथ उड़ा हुआ अन्न किसान का ही होता है । 'विसुनपिरित' भी सम्मिलित राशि से निकलता है । इन सब के बाद बची हुई राशि में जमींदार अपना भाग लेता है । धूलि आदि के साथ मिला हुआ अन्न किसान का होता है । इस प्रकार के बँटवारे में पुआल, भूसा आदि किसान का ही होता है । यह पद्धति जमींदारी-प्रथा के समय की है ।

खल्ली—(सं०) तेलहन का वह भाग, जो तेल निकाल लेने के बाद कोल्हू में बचा रहता है और जिसका प्रयोग पशुओं के खाने या खाद में होता है । दे०—खर्रो । (२) जमीन या बोर्ड पर लिखने का उजली मिट्टी का एक साधन, खड़ी, चक । [खटी, खली, कल्क (संस्कृ०), खली (प्रा०), खली (हिं०), खलि (ने०, बं०, ओ०), खल (पं०, ल०), खल (मरा०)]

खल्हर—(सं०)—(उ० प०) । दे०—खाल । [खल्+हर (< घरा) < खल्ल + घरा, खात [illegible] धरा वा खल+घरा । खल्लड़ (ने०) खल[illegible])]

खवुरा—(सं०) [illegible]०—खौर

खसकल—(क्रि०) गिरना, [illegible] स्थान से हटना । [मिला०—खसल] ([illegible]०) गिरा हुआ । [खसई (प्रा०), खहिबा ([illegible]), खसा (बं०), खसिबा (ओ०), खसना ([illegible]), खस्नु (ने०), खसवुं (गु०), खसशों ([illegible]०)—टर्नर के अनुसार ये सभी रूप खसुन (कश्म०) = उठना)-की एकरूपता में हैं । यद्यपि अर्थभेद हैं । ये *खस (म० भा०) के प्रतिरूप हैं । मिला०—√कश्, √कस (=जाना, घूमना), √खश < चोट करना]

खसरा—(सं०) पटवारी की खेत-बही, जिसमें

खेत का नंबर, रकबा आदि लिखा रहता है। [खसरा (अ०)]

खसरा दानाबंदी—(सं०) वह पत्रक, जिसमें फसल के आनुमानिक मूल्य का हिसाब और निम्नलिखित चीजों का उल्लेख रहता है—तारीख, असामी का नाम, अराजी (जमीन का परिमाण), जमीन की लंबाई-चौड़ाई, फसल का नाम, आनुमानिक वार्षिक उपज का परिमाण। [खसरा (अ०)—दानाबन्दी—(फा०) < दानः+बंदी। मिला०—धानाः (संस्कृ०) = भूँजे हुए जौ, दाने। बंद = बन्ध (संस्कृ०)]

खसरा बटाइ—(सं०) (१) पटवारी का वह कागज, जिसमें खेत के नंबर, रकबा आदि लिखे रहते हैं। (२) हिसाब का कच्चा चिट्ठा। [खसरा (अ०) + बटाइ (बिहा०, हि०)—< √वण्ट]

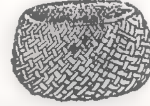
खसल—(वि०)—(१) गिरा हुआ धान, जौ आदि का पौधा। दे०—गिरल। (क्रि०) (२) गिरना, अपने स्थान से हटना। दे०—खसकल। [खस +ल (क्रि० प्र०)। मिला०-खसकना (हि०) √खष् (= चोट खाना), √कश, √कस (< जाना) = खसर्णो = फिसलना < √ खष् (म०व्यु०); खसवूँ (गु०), खसकुन (ने०)]

खहरल—(क्रि०) पत्ता, बीज या किसी चीज का खिसक-खिसककर गिरना (चंपा०-१)। [खहर +ल < खसरल, खसकल (बिहा०), खसकना (हि०) < √खष्, √कश्]

खाँखड़—(सं०)—(१) कुआँ बनाने के लिए खोदा गया गड्ढा (चंपा०-१)। पर्या०—खखरा, खँखड़ (शाहा०-१, आज०) (२) चावल पकाने का बड़ा बर्तन (चंपा०-१)। [(देशी), [मिला०—खाँख (हि०) < खम्, खंकर (संस्कृ०), खोंखर (हि०) < खंकर (संस्कृ०) (= सच्छिद्र)]

खाँखर—(सं०)—(१) कुएँ के अंदर बगल की दीवार के किसी भाग के गिरने से गड्ढे के रूप में बना हुआ स्थान (उ० प०)। पर्या०—घोघर (चंपा०, द० प० मं०) पाल (प०), चौंर (पट०, गया)। (२) (उ०)। दे०—दवड़। [देशी, मिला०—खाँखड़]

खाँच—(सं०) भूसा रखने के लिए बाँस या रहेठे की बनाई गई एक प्रकार की टोकरी (शाहा०-१) [देशी० मिला०—√खच् = बाँधना; खाँच (ने०)]


खाँच

खाँचा—(सं०)—(१) चीनी साफ करने के काम में आनेवाली टोकरी। (२) अन्न रखने या ढोने के काम आनेवाली बड़ी टोकरी। पर्या०—खाची, डलवा (गया), डेली (पू०)। [खाँचा < खाँचना (हि०) < √खच् (= बाँधना, जोड़ना, जड़ना, यथा—मणिखचित, खाँचा (हि०), खाँच् (ने०) = टोकरी]

खाँची—(सं०) छोटा खाँचा। दे०—खाँचा। [खाँचा+ई (अल्पा० प्र०)]

खाँचीदेल—(क्रि०) खेतों में टोकरे से खाद (कूड़ा-कर्कट) देना—(दर०-१)। [खाँची+ देल]

खाँजी—(सं०) फल रखने का एक प्रकार का जाल (उ०-पू० मं०)। [मिला०—खाँचा]

खाँड़—(सं०) सूखी हुई दानेदार शक्कर। पर्या०—भुर्रा, भूरा, बूरा। [< खंड] (२) नदी, नहर आदि में पानी को ऊपर उठाने के लिए जल-प्रवाह के बीचो-बीच इस पार से उस पार तक बाँधा गया बाँध (उ०-प०)। दे०—बाँध। [< खंड < √खडि (= टुकड़ा करना, अलगाना)]

खाँड़ी—(सं०) हल में लगे जुए के दोनों किनारों पर कटा हुआ अंश, जिसमें बैल के गले के नीचे की ओर लगी रस्सी बाँधी जाती है (पट०)। पर्या०—खाढ़ी, (द०-प०-मं०), खेंढ़ी (प०), खड्ढी (द०-प० शाहा०), कनोसी (गया), खात (द० भाग०), सिमल, नकटी (द०-पू० मं०)। [खंड > कर्ष > कड्ढ < खड्ड, खड्ढ]


खाड़ी

खाँड़ो—(सं०)—(द०-भाग०)। दे०—खाड़ तथा बाँध। [< खंड < √खडि (= टुकड़ा करना, अलगाना)]

खाँनल—(वि०) लात से कुचला हुआ, कुचला हुआ (चंपा०-१)। (क्रि०)—लात से कुचलना, कुच-लना। [खाँन+ल (वि० प्र०) < खुन्हल (द० भा०) < √क्षुदिर (= संपेषणे = पीसना)

खाँवाँ—(सं०)—दो चढ़ावों या जलाशयों के बीच में उठाया गया किनारा या मेंड़ (द० प० शाहा०) पर्या०—मेंड़ (शाहा० शेष भाग), पींड़ (गया), अलंग (प०), आहर (द० मुं०), बाँध, बान्ह (अन्यत्र)। [(देशी), अथवा—खाँ+वाँ < खेयबन्ध (?) वा खात+बन्ध]

खाँवाँ, खावा—(सं०) तालाब या तलाई के चारों ओर का बाँध (पट०, पट०-४, मग०-५) दे०—भींड़। [< खात+बन्ध]

खाई—(सं०)—दे०—खई। [< खेय]

खाजा—(सं०)—(१) ताड़ के फल के भीतर का वह हिस्सा, जो कटहल के कोए के आकार का होता है तथा खाया जाता है (चंपा०-१)। (२)—एक प्रकार की मिठाई, जो लम्बी और और परतदार होती है। [खाद्य, खाद्यक (संस्कृ०), खज्ज, खज्जक (प्रा०), खज्जय (प्रा०), खाजा (हि०), खाज्जा (पं०), खाजा (ने०) = हल्का भोजन, जलपान। खाजे (कुमा०) = भात। खाजु, खाज (सि०); खाजे (मरा०) = किराना]

खाढ़ी—(सं०) (१) (मं०)। दे०—खेढ़ा। (२) दे०—खाँड़ी। [< खात, कृष्ट]

खात—(सं०)—(द० भाग०)। दे०—खाँड़ी। [< खात]

खाता—(सं०)-(१)-(चंपा०)। दे०—खेढ़ा। (२) कोल्हू का परनाला, जिससे होकर ऊख का रस बहता है (सा०)। दे०—बाली। (३) (चंपा०)। दे०—खाद। (४) (गं० द०)। दे०—खाद। [खात]। (५) पटवा-रियों की खेत-संबंधी बही। (६) खेतों का चकला। [मिला०—खत (फा०), कत (फा०)]

खातिर—(सं०) जमींदार की ओर से पट्टेदार को ऋण के चुकते में की गई छूट (पट०, गया)। दे०—दहिहक्की। [खातिर (अ०)]

खाद—(सं०)—(१) अन्न रखने के लिए जमीन खोद-कर बनाया हुआ गड्ढा। पर्या०—खत्ता या खाता ((गं० द०), चौर (द०-पू० मं०), माट (गया), खाध या खाधा (द० भाग०)। [< खात] (२) भूमि की उर्वरता के लिए खेतों में डाली जानेवाली गोबर, कूड़ा-करकट अथवा वैज्ञानिक मिश्रण से बनी चीज (बिहा०, आज०)। (यौ०)—खाद के गड़हा = खाद बनाने का गड्ढा। [< खाद्य] (३) ऊख रोपने के पहले बीज रखने का गड्ढा (सा०)। पर्या०—खाता (चंपा०), गाड़ा (शाहा०), गँड़सा (गया), बलसार (पट०), टोनखाद, टोनखावा (उ०-पू० मं०)। [< खात] (४) किसी अन्न में निम्न प्रकार की चीजों की मिलावट (चंपा०-१)। किसी चीज में बाहर से मिलाई गई या मिली हुई विजातीय चीज (चंपा०-१)। [खाद (हि, बिहा०) = गोबर आदि की खाद। अपवित्र या निम्न स्तर की वस्तु। खाद्य अथवा अ+खाद्य]

खाद के गड़हा—(सं०) गोबर, कूड़ा-करकट आदि की खाद बनाने का गढ़ा। दे०—घूर। [खाद के+गड़हा (यौ०)]

खादर—(सं०)-(१) गोबर, मूत्र, कूड़ा-करकट आदि की बनी खाद (गं० उ०, सा० १) पर्या०—खदौड़, खद्धी (गं० उ०), गोंदौरा (प०), गोथा (पू०), करसी (पू०), घूर (गं० द०-प०), गनौरा (पू०, सा०, पट०-४, मग०-५), गंदौरा (पू०, सा०), कूड़ा (पू०, सा०), कूड़ा-कुरकुट (पू०, सा०), बहारन (पू०, सा०), गोनरौर, गोनौड़, (द०-पू० मं०)—(इसका अर्थ, कूड़ा-कर्कट या बुहारकर इकट्ठी की गई गंदगी भी है।) [< खाद्य, संभ०—खात्रम (संस्कृ०) = गढ़ा खातर (गु०)] (२) घास-पात जलाकर बनाई हुई खाद (उ०-प०)। पर्या०—गोथा (उ०-पू०, मं०), अलाह (पट०, गया), डाही (पट०, गया), हूरा (द० मुं०), छारी (द० भाग०)। [खाद+र (स्वा० प्र०) < खाद्य]

खादर के गड़हा (सं०) दे०—खाद के गड़हा।

खाध—(सं०) अन्न रखने के लिए जमीन खोद-कर बनाया हुआ गड्ढा (द० भाग०)। दे०—खाद। [< खात]

खाधा—(सं०)-(ब० भाग०)—दे०—खाद, खाध । [< खात]

खान—(सं०)-(१) नये कोल्हू को बनाने के लिए बढ़ई को दी जानेवाली मजदूरी (उ०-प० मं०) । पर्या०—खन कमाई (उ०-पू० मं०) (२) ऊख के कोल्हू को ठीक (दुरुस्त) रखने के लिए किसान की ओर से बढ़ई को प्रति कोल्हू मिलनेवाला (दो रुपये का) पारिश्रमिक या पुरस्कार (सा०) । दे०–पचरावन । [खान < खादन] (३) ऊख पेरने के कोल्हू का वह खोखला भाग, जिसमें ऊख पेरा जाता है (गं० ब०-प०) । पर्या०—घर (चंपा), कुँड (पू०), कूँड़ (पू०), हंडा (शाहा०), हँड़ोलवा (शाहा०), हाँड़ा (ब० मुं०), हन्वा या हंडा (गं० ब०) । (४) कोयला, लोहा आदि का उद्‌गम-स्थान । [खात, खानित (संस्कृ०), अथवा खाना (फा०) = घर, < खनि (संस्कृ०) = खान]

खानदान—(सं०)—(उ०-पू० मं०) । दे०—खोरिश । [खानदान (फा०)]

खान्ही– (सं०) ताड़, केले आदि फलों का हत्था (मुं०–१) । [< स्कन्ध=समूह, राशि]

खाप—(सं०) वह भूमि, जिसका भूमिकर, नगद रूप में चुकाया जाता हो (पू० मं०) । दे०—नगदी । [(देशी०), मिला०—छाप < √छप् । खापल् ,(संभ० < खात-नेपा०)]

खाभर—(सं०) एक तरह की जिरात (सा०-१) [देशी, मिला०—खावड़ < खर्वट]

खाभल—(क्रि०)—(१) खेत की पपरी तोड़ने के लिए खुरपी या कुदाल चलाना (चंपा०–१) । (२) खुरपी आदि से गहरी कोड़ाई करके घास आदि का निकालना (सा०, चंपा०)। दे०—भर खुरपी सोहल]। (३) गाय, बैल आदि का एक जगह एकत्र होकर चरने को जाना (मुं०–१)। [खाभ+ल (प्र०), मिला– √ क्षुभ]

खार—(सं०)–(१) बाढ़ या वर्षा के कारण नदी आदि में हुई जलवृद्धि (द० पू०) । दे०—दाहर । (२) वह ऊँची जमीन, जो बाढ़ आदि के कारण गहरी हो जाती है और जिसमें पानी जम जाता है (मग०–५) । (३) खारा पानी, मिट्टी आदि । [<*क्षार < √क्षर्]

खारी—(सं०) वह जमीन, जिसमें गंधक, चूना आदि का अधिक अंश हो (मग०–५, पट०-४)। पर्या०—खरवा (ब० भाग०) । [खार + ई (प्र०)< *क्षारिक < क्षार]

खारू—(सं०)–(१)—बार-बार रोपा जानेवाला बीया (गं० उ०) । पर्या०—खरुहन । (२) बोरो या अन्य धान के बीज का पौधा, जो एक बार उखाड़कर रोपने के बाद पुनः उखाड़कर रोपा जाता है (उ०-पू० मं०) । पर्या०—खरुहान (चंपा०, मं०-२), खरुहन (चंपा०)। [खारु < उखारु < उखार+उ (प्र०,< उखारल (बिहा०), उखाड़ना (हिं०)< *उत्खात]

खाल—(सं०)–(१) विना पानीवाली गहरी जमीन । पर्या०—खलवा, खलार (उ०-प०), खल्हर (उ०-प०)। (२) चमड़ा । दे०—चाम । [< खात, खल्ल =नीची जमीन । चमड़ा < *खल्ल >]

खाली काँटा—(सं०) वह काँटा या तौलने की मशीन, जिससे ऊख की खाली गाड़ियाँ तौली जाती हैं (बिह०, री०) । टि०—मिल में गाड़ी पर लाया गया ऊख पहले गाड़ी के साथ तौल लिया जाता है और उस वजन को एक पुर्जे पर लिख लिया जाता है । ऊख उतारने के बाद खाली गाड़ी पुनः तौली जाती है । इस प्रकार हिसाब करके ऊख का ठीक परिमाण मालूम किया जाता है । खाली गाड़ी को तौलने का काँटा 'खाली काँटा' और ऊख से लदी गाड़ी को तौलने का काँटा 'भरती काँटा' कहलाता है । [खाली+काँटा खाली < खल्ल, खालित, खालित्र (प्रा०) +कंटक]

खावाँ—(सं०) दे०—खई। [खा+वाँ < *खात +बंध]

खावा, खोंवाँ—(सं०)–(प०) । दे०—खाँवाँ, खावा तथा भींड़ । [खा+वा < *खात+बंध]

खास महाल—(सं०) वह जमींन्दारी, जिसका प्रबंध सरकार खुद करती है (सा०-१, चंपा०, मग०-५, मं०-२) । [खास+महाल (अ०)]

खाहिन—(सं०) मोटे दानों का एक प्रकार का धान (ब०-प० शाहा०) । [देशी]

खिचड़ी—(सं०)–(१) दाल-चावल मिलाकर बनाया गया भोजन। पर्या०–पुंगल (पट०-४) (२) मकर-संक्रान्ति का पर्व, जिसमें नये चावल की खिचड़ी खाई जाती है (भोज०) । दे०–सँकरांत ।

खिचड़ी—(सं०) दे०–खिचड़ी । कहा०–'कोठिला बैठि बोले जई, खिचड़ी खाके क्यों नहीं बोई' (—घाघ) = छोटी कोठी पर चढ़कर जई कहती है कि उसे खिचड़ी खाकर, अर्थात् मकर-संक्रांति के बाद क्यों नहीं बोया ?

खिच्चा—(सं०) –(१) फसल (मकई आदि) की न पकी हुई (दुधिया) बाल (मं०, भाग०-१)। दे०–दुद्‌धा । (वि०) (२) वह फल, जो अभी पुष्ट तथा पोख्ता न हो, कोमल हो (चंपा०, मं०-२, मग०-५) । [< *कच्यक < √कच (विकसने)]

खिजल—(क्रि०) धान का झड़ना (दर०-१) पर्या०—छिजल । [< √क्षि (क्षये), अथवा < सीद् √ < √षद्‌लृ (विशरणगत्यवसादनेषु)]

खिजाया—(सं०) पहली बार कूटा गया चावल, जिसमें धान और चावल मिले रहते हैं (उ० पू० मं०) । दे०—मुहचुर । पर्या०—अँकड़ा (मग०-५), अखरा (मं०-२), बोकड़ा (चंपा०) [(देशी), मिला०—√क्षि (क्षये) अथवा √छिद् (=छोड़ना, मुक्त करना)]

खिनहुरी—(सं०) पुराना और बिलकुल घिसा हुआ हल । (सा०-१, चंपा०–१) । दे०—खिनौरी [खिन+हुरी < *क्षीण+हल (?)]

खिनौरी—(सं०) पुराना तथा घिसा हुआ हल । पर्या०— ठेँठी (ब०-पू०, उ०-प० मं०, चंपा०), ठेँठा (उ०-पू०, ब० मं०, चंपा), खुटहरा (शाहा०), खिनहुरी (सा०-१, चंपा०-१), खुँटहेरा (शाहा०) । [खिन+औरी < खिनहरी < *क्षीण+हल (?)]



खिनौरी

खिनौरी के जोत—(सं०) पुराने और छोटे हल से की जानेवाली जुताई (चंपा०, सा०) । पर्या०—ठेँठा के जोत (मं०, चंपा०), खुँटहरा (शाहा०) । [खिनौरी के+जोत (यौ०) < खिनौरी < *क्षीणहल । जोत < *युक्त < √युज् । मिला०—√युत् ,√जुत् (भासने)]

खिरदंत—(सं०) छींटकर (बावग) बोया जानेवाला एक प्रकार का धान (द० मुं०) । [खिर +दंत < क्षीरदंत (?)]

खिरनी—(सं०) एक फल-विशेष । यह पीले रंग का होता है और इसका फल छोटा तथा खटरस होता है (शाहा०-१, चंपा०, मं०-२) । [< *क्षीरिणी]

खिराज—(सं०) जमीन की मालगुजारी (सा०-१, चंपा, मं०-२) । [खिराज (अ०)]

खिलकट—(सं०)–(१) वह परती जमीन, जो पहली बार जोती जाती है (मं०) । दे०—खील–२। (२) धान बोने के लिए जोती गई नई गैर-आबाद जमीन (द०-पू०); दे०–खिलमार । [खिल + कट < खिल (संस्कृ०) । कट (प्र०) अथवा < कटल < (बिहा०) < कटना (हिं०) < √कृत्]

खिलकट्टी–(सं०)-(१) वह परती जमीन, जो पहली बार जोती जाती है । दे०–खील–२ । (२) धान बोने के लिए जोती गई नई गैर-आबाद जमीन (द०-पू०) । दे०—खिलमार–३ । [खिल+कट्टी । मिला०—खिलकट]

खिलमार–(सं०)–(१) वह परती जमीन, जो पहली बार जोती जाती है । दे०- खील–२ । (२) (शाहा०)। दे०–आबाद । (३) धान बोने के लिए जोती गई नई गैर-आबाद जमीन । पर्या०–नबाद खेत (गं० उ०), नौखील (गया), खिलकट्टी, खिलकट (द० पू०) । [खिल+मार < खिल+मार < मार्त < मृत् (मिट्टी)]

खिलही—(सं०) जमीन्दार की ओर से किसान को चौथाई मालगुजारी पर या विना मालगुजारी के परती जमीन देने की प्रणाली (चपा०, प० मं०) । पर्या०—आसा चास (ब०-पू० मं०) खीलमारी (शाहा०) । [खिल+ही (प्र०) < *खिल]

खिल्लत—(सं०) सरकार की ओर से युद्ध आदि में की गई सेवा के बदले कम मालगुजारी

पर दी गई भूमि । दे०—जागीर । [खिल्लत (अ०)]

खींची—(सं०) पशुओं के द्वारा पद-दलित फसल (द० भाग०) । दे०—घँगाठ । [अनु०, मिला०—√खच्, √खज (=मन्थे)]

खीरा—(सं०) लता में होनेवाला हरे रंग का एक बरसाती फल, जिसे कच्चा ही खाया जाता है । पर्या०—बालम खीरा = (१) चार फांकवाला एक प्रकार का खीरा (चंपा०) । (२) एक प्रकार का छोटा और कोमल खीरा (शाहा०) । [खीरा < *क्षीरक (?) । खीरो (ने०) < क्षीरकः —(नेपा०); खिरा (बँ०), खीरा (हि०, पं०), खिरा (मरा०)]

खीरी—(सं०) एक प्रकार का फल (हर०-१, चंपा, मग०-५, पट०-४) । दे०—खिरनी । [< क्षीरी < क्षीरिन् (?)]

खील—(सं०)—(१) परती जमीन (चंपा०-१) । (२) वह परती जमीन, जो पहली बार जोती जाती है । पर्या०—कुराव (द०-पू०), खिल-कट, खिलकट्टी, खिलमार (मं०, मं०-२) । (३) परती जमीन जोतने के दो वर्ष बाद का खेत (उ०-प०) । पर्या०—पह (मं०, शाहा०, द०-पू०), कनिल (द० भाग०), पोह (पट०, द० मुं०) । (४) प्रसूता गाय, भैंस आदि मवेशियों का पहले-पहल निकाला गया पीले रंग का दूध (चंपा०) । (५) घाव के अंदर का मांस-कील [< *खिल]

खील कोड़ल—(मुहा०) धान की बोआई के उपयुक्त बनाने के लिए गैर-आबाद या बंजर जमीन को कोड़ना । पर्या०—खील तोड़ल । [खील + कोड़ल < खिल + कोड़ल, कोड़ना (हि०), मिला०—√कुडि (=वंकल्ये) अथवा √कृ (=विक्षेपे)] ।

खील तोड़ल—(मुहा०) दे०—खील कोड़ल । [खील + तोड़ल < खिल + तोड़ल < √तुड् वा √ त्रुट् (छेदने), तोड़ना (हि०)]

खील बैठाओल—(मुहा०)—(पट०) दे०—अबाद । [खील + बैठाओल < खिल + बैठाओल, बैठाना (हि०) < वेष्टन]

खीलमारी—(सं०)—(शाहा०) । दे०—खिलही । [खील + मार + ई (प्र०) < खील मार < खिल + मार]

खुँटहरा—(सं०)—(शाहा०) । दे०—खिनौरी के जोत । [खुँट + हर + आ । खुँट < क्षुद्र (संस्कृ०), खुट्ट, खुट्ट (प्रा०) > खोटा, खोटा (हि०) + हर < हल]

खुँटा—(सं०)-(पट०, गया, पट०-४, मग०-५) दे०—खुट्टा, जंघा । [क्षुद्र, क्षोड (संस्कृ०) खोड (प्रा०), खूँटा (हि०)]

खुँटिया—(सं०)-(१) (द०-पू० मं०, चंपा०, भाग० १, मं०-२, मग०-५) । दे०—खूंटी । [खुँट + इया (प्र०) < क्षुद्र, क्षुद्रिका वा क्षोड (=खूंटा, जिसमें हाथी बांधा जाता है ।)] (२) (द० भाग०) । दे०—दोंजी । (३) (गया, द० भाग०) दे०—जड़ । [खुँट + इया (अल्पा० प्र०) < क्षुद्र, क्षुद्रिका, क्षोड]

खुँटहरा—(सं०)-(शाहा०-१) । दे०—खुटहरा ।

खुँड़ल—(क्रि०) लीपी-पोती जगह पर पशुओं का पहुँचकर खुन्हना । [खुड़ + ना (प्र०) < *खुर, √क्षुद्]

खुआ, खोआ—(सं०) फसल के डंठल से अनाज निकालने के लिए की जानेवाली पहली दौनी (द० भाग०, मं०-२) दे०—पोर । पर्या०—खेप (चंपा०) । [खुआ, खोआ < क्षोद < √क्षुदिर् (=संपेषण), खूँदना (हि०), खुनल (वि०) अथवा √खुर (ण) + < *खुर]

खुखसा—(सं०) एक पशुखाद्य घास । [देशी]

खुखुड़ल—(वि०) पानी आदि के कारण लकड़ी आदि का कमजोर, मुलायम और हलका हो जाना (शाहा०-१) । [देशी]

खुखुड़ी (सं०)-(१) मकई के भुट्टे में से दाने निकालने के बाद बची हुई डाँट (द०-प० शाहा०, भाज०) । दे०—लेंढ़ा । पर्या०—हड्डी (सं०प०), खुखुँड़ी (भाज०) । (२) एक प्रकार का शस्त्र, जो छोटी तलवार की तरह होता है । [(देशी), मिला०—खंकर या कंकाल]

खुटहरा—(सं०)—(शाहा०) । दे०—खिनौरी । पर्या०—खुँटहरा (शाहा०-१) । (२) पशुओं का खोरहा रोग (मग०-५) । [खुट + हर + आ < क्षुद्र + हल]

खुटिया-(सं०) दे०-खुँटिया ।

खुटियारी—(सं०) ऊख की खुट्टीवाला खेत (पट०-१) । [खुटिया + री (प्र०) < क्षोट]

खुट्टा—(सं०)-(१) ढेंकी का वह स्तंभ, जिसपर वह टिकी रहती है (द० भाग०, द० मुं०) । दे०—जंघा । (२) मवेशियों के बांधने का लकड़ी या बांस का स्तम्भ, जो जमीन में गड़ा रहता है । (३) (पू० मं०, गं० द०) । दे०—खूंटा । [< क्षुद्र (१) < क्षोड (=हाथी आदि के बांधने का खूंटा), खूँट (प्रा०) । मिला०—< √कुठ् (प्रतिघाते)—(म० व्यु०), खूँटा (हि०)]

खुट्टी—(सं०)-(१) वह ऊख, जो पहले कटे हुए ऊख की जड़ से पैदा हुआ हो (पट०-१, चंपा०) । (२) कटी हुई फसल की जड़ । (३) कपड़ा आदि लटकाने के लिए दीवार में गाड़ी हुई कील । [क्षोट, दे०—खुट्टा]

खुट्टी छोड़ल-(मुहा०) दूसरे साल के लिए कटी हुई ऊख की जड़ को छोड़ देना, ताकि फिर से उसमें पौधा उगे (पट०-१, चंपा०) । [खुट्टी + छोड़ल]

खुड़हेरल—(क्रि०) जमीन की ऊपरी सतह पर से मिट्टी या घास आदि का हटाना (चंपा०-१) । [खुड़ + हेर + ल (प्र०) < क्षुद्र वा खुर + हेर < हल]

खुदनी—(सं०) फावड़ा, चौड़े फलक की कुदाल (गया) । दे०—फौरा । [खुदनी < खोदल (बिहा०), खोदना (हि०), मिला०—√कुड् अथवा √क्षुद् (=हिलना, डोलना, चलना (नैघ०—प्रयो०—मो० वि० डि०)]


खुदनी

खुदर—(सं०)—(प०, प० मं०) । दे०—गुदरी [< क्षुद्र]

खुदराहा मालिक—(सं०) जमींदारी में कम (खुदरा) दाय रखनेवाला स्वामी (मग०-५) । दे०—खुरदिहा मालिक ।

खुदरिआ मालिक—(सं०)—(चंपा०) । दे०—खुरदिहा मालिक ।

खुदी—(सं०) चावल का टूटा हुआ छोटा-छोटा टुकड़ा (चंपा०-१) । दे०—खुद्दी । [< *क्षुद्र, (संस्कृ०), < खुद्द (प्रा०)]

खुद्दर—(सं०) ऊख की सिट्ठी, जो जलावन या खाद के काम आती है (सा०-१, मं०-२) । [< क्षुद्र]

खुद्दी—(सं०) चावल, दाल आदि के बहुत छोटे-छोटे टुकड़े । पर्या०-खँड़ौरा (द०-प०शाहा०), मेरखुन (द० मुं०, चंपा०) । [खुद्द + ई (प्र०) < *क्षुद्र]

खुन्हल—(क्रि०) लीपी-पोती या बनी-बनाई जमीन या किसी दूसरी वस्तु पर मनुष्य अथवा पशु द्वारा पैरों से कुचलना, जिससे उसपर पैर के चिह्न हो जाते हैं । [< *क्षोदन < √क्षुद्]

खुम-(सं०) अन्न रखने के काम में आनेवाला एक प्रकार का मिट्टी का बड़ा बरतन (गं० द०) । [< कुम्भ (संस्कृ०), मिला०—कुम्प्, कुम्भ = गोल बरतन (लो० वर०)]


खुम

खुर—(सं०) सींगवाले चौपायों के पैर की कड़ी टाप, जो फटी हुई होती है (चंपा०-१, बिहा०, भाज०) [< खुर वा क्षुर । खुरः (संस्कृ०), खुरो, खुर (पा०), क्सुर (पुं०) = खुर, खुर (स्त्री०), एड़ी (रोम०), खुर (बरवी), खुरि (पश्तो), खुर (=पैर)-(प० पहा०), खुर (कुमा०), खुरा (असं०), खुर (बँ, ओ०, हि०, पं०), खुरा (ल०), खुरु (सि०), खुर (गु०), खुर (मरा०), खुर् (ने०)]

खुरकी—(सं०) अफीम या किसी अन्य फसल के साथ होनेवाली एक घास (उ०) । पर्या०—मछैती (उ०), रूआरी (सा०)—(मिला०—रुआरा) । [देशी, मिला०—क्षुरक = एक प्रकार का पौधा, खुटका (हि०)]

खुरखून—(सं०) पशुओं के द्वारा पद-दलित फसल (गया, द० मुं०) । दे०—घँगाठ । [खुर + खून < खुन, (क्षुर) + खून, खूनल (बिहा०), खूँदना (हि०) < √क्षुद्]

खुरचन-(सं०)-(१) बरतन के खुरचने से निकली हुई शेष अफीम । (२) खुरचकर निकाली गई वस्तु । पर्या०—खखोरन (गया, द०-प० शाहा०, द० मुं०) । खखोरी (चंपा०, मं०-२) । [< क्षरण < √क्षुर्]

खुरचनी—(सं०)-(१) दूध या मक्खन गर्म करने के पात्र की तलहटी में लगा हुआ अर्धदग्ध पदार्थ-विशेष (पट०, आज०)। दे०—डाढ़ी। (२ खुरचने का औजार। [खुरचन+ई (प्र०) <खुरचल (बिहा०), खुरचना (हिं०) <क्षुरण]

खुरदांइ—(सं० फसल के डंठल से अनाज निकालने के लिए की जानेवाली दूसरी दौनी (द०-पू० मं०)। दे०—डंटी दांवल। [खुर+दाँइ <खुर (क्षुर) वा क्षुद्र+दाम, दमन< √दम]

खुरदिया मालिक—(सं०) (गं० द०, मग०-५)। दे०—खुरदिहा मालिक। [खुरदिया+मालिक ∠खुदरा+मालिक। खुदरा< क्षुद्र (संस्कृ०), खुर्द< खर्द (फा०)+मालिक (फा०)]

खुरदिहा मालिक—(सं०) जमींदारी में थोड़ा दाय रखनेवाला स्वामी (गं० द०, मग०-५)। पर्या०—खुरदिया, मालिक जुज़वी हिस्सेदार (पट०)। खुरगाहा मालिक (मग०-५)। खुररिया मालिक (चंपा०, सा०)। [खुरदिहा + मालिक. मिला०—खुरदिया मालिक]

खुरदौंती—(सं०)-(गया)। दे० खुरदांइ तथा डंटी दांवल। [खर+दौंती< खर, (क्षर) वा क्षुद्र+दौंती< दान्ति< √दम्]

खुरदौनो—(सं०) (१)-(चंपा०,पट०)। दे०—खुरदांइ तथा डंटी दांवल। (२) खलिहान बनाने के समय मिट्टी को बैठाने के लिए उस जमीन पर बैलों को चलाना। [खुर+दौनो< खुर—क्षुर, वा क्षुद्र+दौनो< दमन< √दम्]

खुरनो—(सं०)-(गया)। दे०-खुरनो तथा फौरा। [खुरनो< क्षुरण वा क्षोदन< √क्षुद्]

खुरपा—(सं०) घास-पात हटाने, गढ़ने या फसल लगे हुए खेत की मिट्टी खरोचने के काम में आनेवाली लोहे की बनी हुई खुरपी (चंपा०-१, मग०-५, पट०-४, मं०-२, आज०) [< *क्षुरप्र (संस्कृ०), खुरप्प (प्रा०), खुरपा, खुरपा (संता०), खुरपें (मरा०) खुर्पा (बं०)]



खुरपा

खुरपि—(सं०)—(दर०-१)। दे०—खुरपा। [खुरपा+इ (अल्पा० प्र०) < *क्षुरप्र]

खुरपियान—(सं०) ऊपर-ऊपर से छिलकर घास आदि निकालने की प्रक्रिया (उ० प०) दे०—टिपनी। [खुरपा+इयाना (प्र०) < *क्षुरप्र]

खुरपियाना—(सं०) खुरपी से कोड़ना (छिछली-ऊपर-ऊपर की कोड़ाई) (उ० प०) पर्या०—कमैनी, करौनी (चंपा०, मं०), कोड़नी (गं० द०), छेमनी (द० प० शाहा०), केलौनी, कमौनी (द० भाग०, मं०-२, मग०-५, पट०-४)

खुरपियावल—(क्रि०) खुरपी से छिछली कोड़ाई करना। खुरपी से खेत की घास-पात निकालना। (वि०) खुरपी से घास-पात आदि निकालकर साफ की गई भूमि। [खुरपि+आवल (प्र०) <खुरपी< *क्षुरप्र]।

खुरपी—(सं०)—(उ० बिहा०, आज०)। दे०—खुरपा।

खुरपेड़िया—(सं०) वह रास्ता, जो खेतों की मेंड़ से होकर जाय (चंपा०-१, मं०-२)। पर्या०—खुड़ारी (प० चंपा०), खुरयाड़ी (सा०-१)। [खुर+पेड़िया< खुर वा क्षुद्र+पद्या (?)]

खुरफा—(सं०) एक प्रकार की साग। कुलफे की साग। पर्या०—गोलावा (पट०, गया, सा०)। [खरफा (फा०)]

खुरमा—(सं०)-(१)-छुहारा। खजूर का भेद। यह रेगिस्तान में होता है (पट०-१, मग०-५)। (२) आटे का बना एक प्रकार का मीठा खाद्य। [खुर्मः (फा०)]

खुरयाड़ी—(सं०)—(सा०-१)। दे०—खुरपेड़िया। [खुर+याड़ी, वा खुर+या+आड़ी वा खुरया+ड़ी (प्र०)। खुर+आर वा आरी (बिहा०)]।

खुरसनिआ—(सं०) एक प्रकार का छोटा-सा मिर्चा, जो अत्यन्त तीता (कड़ुआ) होता है (चंपा०-१, मं०-२, मग०-५)। [खुरसनि+इआ (प्र०) < खुरासान]

खुरहेठो—(सं०) गाय आदि के चलने से जमीन में उगनेवाला खुर का चिह्न (शाहा०-१)। [खुर+हेठी (प्र०, या देशी) <खुर]।

खुर्पा—(सं०)—(सा०, चंपा०)। दे०—खुर्पी। [खर्पा < *क्षुरप्र]।

खुर्पी—(सं०) (१)-कड़ाह की पेंदी में चीनी बैठने से बचाने के लिए उसे खुरचनेवाला औजार। पर्या०—खुरपा (सा०, चंपा०), कठखुरपी (उ०-पू०मं०), पेड़नी (पट०), ढपूटन (द० भाग०)। (२)दे०—खुरपा [खुर्पा+ई (अल्पा० प्र०) < क्षुरप्र]

खुशखरीद—(सं०) खेती की वह प्रणाली, जिसमें नील की खेती करने के लिए निलहे किसानों को अग्रिम मूल्य तथा उचित मूल्य पर नील का बीज देते थे, जिसका मूल्य बाद में हिसाब के अनुसार चुकता होता था। पर्या०—खुसकी (चंपा०), नविश्तखानी (उ०-पू० मं०)। [खुश+खरीद (फा०)]

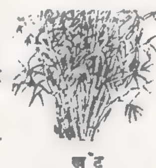
खुसकी—(सं०)-(चंपा०)। दे०—खुशखरीद। [खुस+की< खुश (फा०)]

खुसकी ठीका—(सं०) किसी विशेष निश्चित कर पर कुछ वर्षों के लिए ली गई जमींदारी। [खुसकी< खुश वा खुश्की (फा०) मिला०—शुष्क (संस्कृ०)+ठीका] (हिं०)]

खुसखुस—(सं०) ऊख की मिल का एक यंत्र, जिससे छनकर रस अगले यंत्र में चला जाता है और सिट्ठी पुनः रोलर के पास लौट आती है (रो०, हरि०)

खुसबरी—(सं०) एक प्रसिद्ध छोटी पीली फली, जो स्वाद में खट-मिट्ठी होती है। दे०—मकोय [खुस+बरी< कुशाबदरी (?), मिला० गूज-बेरी (अं०)]

खूँट—(सं०)—(१) बांस की कोठी या वह स्थान, जहाँ बांस होता है (शाहा० चंपा०, सा०)। (२) कपड़े का एक छोर (शाहा०-१, चंपा, सा० मं०)। [मिला०—कूट]



खूँट

खूँटा—(सं०)—(१) (मं०, प०) दे०—खुट्टा और जंघा। (२) मवेशियों के बाँधने के लिए लकड़ी या बांस का बना स्तंभ, जो जमीन में गड़ा रहता है। (बिहा०, आज०) (३)—वह स्तम्भ जिसके सहारे ढेंकी खड़ी रहती है। पर्या०—खुट्टा (पू० मं०, गं० द०), खंभा (पू० मं०, गं० द०), जंघा (प० मं०, सा०, चंपा०), खाम्हा (प० मं०, सा०, चंपा०)। (४)-ऊख के कोल्हू का सीधा खड़ा खंभा (पट०, गया)। दे०—हरसा। (५)—लाठा के पिछले भाग के अंत में लगी कील, जिसपर मिट्टी आदि का भार बाँधा जाता है। पर्या०—खूँटी, गँड़मेखा-(पट०, गया०), गुल्ली (पट०), किल्ला (पट०, द०-पू०)। [< क्षोड, मिला०—खुट्टा, खुट (प्रा०), मिला०—√कुठ (प्रतिघाते)—(म० व्यु०)।

खूँटा मानल—(वि०) वह मवेशी, जो बिक्री के बाद दूसरे स्वामी के यहाँ जाने पर खाना छोड़ देता है (शाहा०-१, मग०-५, पट०-४, चंपा०, सा०)। [खूँटा+मान+ल (वि० प्र०)]

खूँटी—(सं०)-(१)—नील, ऊख आदि की दूसरी फसल, जो पहली फसल के काट लेने पर उसी की जड़ से पुनः उगती है। पर्या० दोंजी (द०-पू०मं०)। (२) ऊख काट लेने के बाद उसके मूल से निकला हुआ छोटा पौधा (अंकुर), जो बाद में ऊख बन जाता है (गं० उ०, बिह०)। पर्या०—खुँटिया (द०-पू० मं०), पनपा (बिह०), खूँटी ऊख रो०)। (३) दे०—खूँटा। (४) ऊख या किसी पौधे की जड़ या मूल (गया, द० भाग०)। दे०—जड़। पर्या०—खुँटिया। (५) छोटा खूँटा या कील। [खूँटा+ई (अल्पा० प्र०) < क्षोड, क्षुद्र। < खुण्ट (प्रा०)—नेपा० मिला०—कुठ (प्रतिघाते) (म० व्यु०)]

खूँटी ऊख—(सं०)—दे०—खूँटी (रो०)। [खूँटी+ऊख]

खूआ, खोआ—(सं०) खलिहान में दांवन के लिए छींटी हुई तैयार फसल (द० भाग०)। दे०—पंर। [< *क्षोदक< क्षुद्रक]

खूफा—(सं०)—नारियल या ताड़ की आँठी के भीतर का बहुत ही मुलायम गूदा (शाहा०-१) [देशी]

खूरा—(सं०)-(१) वह आधार, जिसपर अन्नागार (कोठी) अवस्थित रहता है (पट०)। दे०—गोड़ा।



(२) (द० प० शाहा०) दे०—करुआर। [< खरक, < क्षोडक]

खेंढ़ी–(सं०)–(१) (गया)। दे०–खेढ़ा। (२) सीढ़ी (पट०)। (३) कोदो-जाति का एक प्रकार का अन्न। [< खात, कर्ष, गर्त्त, श्रेणी]

खेंवट—(सं०)–(१) जमीन के मालिक का अधिकार-संबंधी कागज, जो जमीन की पैमाइश के बाद तैयार होता है (सा०-१ चंपा०, मग०-५) [खें+वट< खेत+बाँट ?] (२) नाव को चलानेवाला मल्लाह। [< *केवट]

खेंवा—(सं०) नाव से पार करने के लिए दिया जानेवाला शुल्क।

खेखरी के मान—(मुहा०) ऊसर जमीन (शाहा० १)। [खेखरी के+मान]

खेखसा—(सं०) एक प्रकार की बरसाती लता का फल, जिसकी रसदार या सूखी तरकारी बनती है (गया)। दे०—चठेंल। [देशी, मिला०—कीकस= कड़ा, कील, पसलियों की हड्डी; संभ०—चठेंल के काँटों-जैसी खीलों के कारण ही खेखला (कीकस्य) नाम पड़ा हो]

खेड़हा—(सं०)—(बर०-१)। दे०—खेढ़ा। [< *कर्ष]

खेड़ही—(सं०) एक प्रकार का फूल (बर०-१)। [देशी]

खेड़ा—(सं०)—(चंपा०-१)। दे०—खेढ़ा। [< *कर्ष]

खेड़ी—(सं०) मूँग (बर०-१)। [देशी]

खेढ़ा–(सं०)–(१) हरिस के ऊपर पालो बाँधने की जगह पर, उसके निचले भाग का कटा हुआ अंश। पर्या०—खेंढ़ी (गया), खेढ़ी (शाहा०), खेहा (पट०) खाता (चंपा०), खाढ़ी (मुं०), खड़हा (द०-पू० मुं०), खोंढ़ा (द०-पू० बिहा०), काढ़ (द०-पू० बिहा०), खेड़ा (चंपा० १), खाढ़ी (मुं० २)। [< खात, < *कर्ष] (२) श्वेत वर्ण के शूक (सूँग) से युक्त एक प्रकार का धान (गं० उ०, चंपा०-१)। पर्या०—खेढ़ी (चंपा०-१), खेड़हा (दर०-१)। [देशी]

खेढ़ा

खेढ़ी—(सं०)—(१)–(शाहा०)। दे०—खेढ़ा। (२) बाँस, लकड़ी, पत्थर या ईंट आदि से बनाई गई ऊपर चढ़ने की सीढ़ी। [< खात, < कर्ष, < श्रेणी]

खेत—(सं०)–(१) वह जमीन, जो पहले परती हो, किंतु बाद में तीन वर्ष पहले से आबाद हो रही हो। पर्या०—पही (चंपा०), पह (उ०-पू० मुं०)। (२) खेती के योग्य जमीन का घिरा या सीमित टुकड़ा (बिहा०, आज०)। पर्या०—टोपरी, पारी (गं०द०), टोपरा (प०), डाबर (चंपा, गया), बारी, बहियार (द० भाग०)। [< *क्षेत्र]

खेत गोबरावल—(मुहा०) खाद के निमित्त खेत में पशुओं को बैठाना (द० मुं०)

खेतपथार—(सं०) भू-स्वामी की भू-सम्पत्ति। दे०—खेती बारी। [खेत+पथार< *क्षेत्र+प्रस्तार (=समभूमि), पत्थार (प्रा०), पथार (असं०)= वृक्षादि रहित नीची जमीन]

खेतबधार—(सं०)–भूस्वामी की भू-सम्पत्ति। [खेत+बधार < खत+पथार < *क्षेत्र+प्रस्तार, दे०–खेत पथार]

खेतभोज—(सं०) धान की रोपनी शुरू करने के प्रथम दिन किसान द्वारा दिया जानेवाला भोज (पू० मुं०)। दे०—पहिलरोप। [खेत+भोज < *क्षेत्र+भोज]

खेतभोजनी—(सं०)— पू० मुं०)। दे०—खेतभोज तथा पहिरोप। [खेत+भोजन+ई < *क्षेत्र+भोजन]

खेतमास—(सं०) मूँग की जाति का एक दलहन (उ०-पू० मुं०)। पर्या०—खेतमासु। [खेत+मास< *क्षेत्रमाष (?)]

खेतमासु—(सं०) मूँग की जाति का एक दलहन (उ०-पू० मुं०)। दे०—खेतमास। [खेत+मासु, मिला०–खेतमास]

खेतहा कोंहड़ा—(सं०) खेत में होनेवाला कोंहड़ा (पट०-१)। [खेतहा+कोंहड़ा< क्षेत्रीय+कूष्माण्ड]

खेती—(सं०) खेत का काम, खेत-संबंधी कार्य। [खेत+ई (प्र०) < क्षेत्रीय]

खेतीबारी—(सं०) भू-स्वामी की भू-सम्पत्ति (प० मुं०)। पर्या०—खेतबधार (शाहा०, पट०), खेतपथार (चंपा०, द० मुं०, भाग०-१) [खेती+बारी< *क्षेत्र+वाट, वाटिका]

खेती-भवानी—(सं०) फसल या तरकारी काटने के समय कोइरियों द्वारा पूजित एक देवी। [खेती+भवानी< *क्षेत्र+भवानी]

खेना—(सं०) दे०—अखैना। [खेना< अखेना< *अक्षाणि। दे०—अखैना]

खेप—(सं०)–(१) बोझों के ढोने या किसी और काम का क्रम या पारी। (२)—(चंपा०)। दे०—खूआ। [< *क्षेप< √क्षिप]

खेपान—(सं०) ऊख के रस का उतना परिमाण, जितना एक बार में उबाला जा सके (द०-पू० मुं०)। दे०—ताव। [खेपान< खेप (बिहा०) (=बार, क्रम)< *क्षेप< √क्षिप्]

खेरही—(सं०) एक कदन्न, जिसके चावल की खीर अच्छी बनती है। यह कोदो की जाति का है (मुं०-१)। पर्या०—खेंढ़ी (कहीं-कहीं)। [देशी, मिला०—कोरदूष]

खेहा—(सं०)—(चंपा०-१)। दे०—खेढ़ा। [देशी]

खेवट—(सं०)—(१) किसी जमींदार के किसी गाँव के हिस्से की तहसील (सा०–१)। (२ वह कागज, जिसमें मालिक, मुकर्रीदार या विरितदार के हक का इंदराज रहता है, (सा०–१)। [खे+वट< खेत+वट< बाँट]

खेसरा— (सं०) वह कागज, जिस पर खेत का नंबर और क्षेत्रफल लिखा रहता है। (सा०-१, चंपा०, मग०-५, पट०-४, मुं०-२)। [खसरः- (अ०), खसरा (हि०), खेसो (ने०)]

खेसारि—(सं०)–(बर०-१)। दे०—खेसारी।

खेसारी—(सं०) एक प्रकार का दलहन, जो छोटा, किंतु तीन ओर से थोड़ा चिपटा, ऊपर से मटमैला और भीतर पीला होता है। (चंपा०-१, मग०-५, पट०-४, मुं०-२, भाग०-१)। पर्या०—लतरी (शाहा०), खेसारि (बर०-१)। लोको०—'तुरुक तारी, बैल खेसारी, बाभन आम, कायथ काम।'—मुसलमानों को ताड़ी, बैलों को खेसारी, ब्राह्मणों को आम तथा कायस्थ को काम प्रिय होता है। [खेसारी< खंजकारि, कृशर (हि० श० सा०), संभ०—खे+सारी < खेत+सारी< *क्षेत्रशालि अथवा कशेरुक (क+शेरुक)< क (=वायु या जल) +√शृ (हिंसायाम्) वा √श्रा (पाके), अथवा √क्रुश् (शब्दे) या त्रिपुट होने के कारण, कृशानु (=भाग=तीन)+पुट (?), खेसारी (हि०), खेसारी (बं०), खेसारी (ओ०), खेसारि (ने०)]

खेस्टा—(सं०) बिना रजिस्ट्री की गई जमीन-संबंधी कागज। (चंपा०-१, मग०-५, मुं०-२, पट०-४) [देशी, मिला०—खेस्तो (ने०)]

खेहा—(सं०)–(पट०) दे०—खेढ़ा। [< खात, < कर्ष]

खैंचा—(सं०) बड़ा टोकरा। [खैंच+आ< खचित< √खच]

खैंची—(सं०)–(१) कोल्हू में ऊख के टुकड़े डालनेवाली टोकरी (शाहा०, पू० मुं०)। दे०—छैंटी। (२) टोकरी। [खैंच+ई (प्र०) < खचित < √खच वा √षच् (समवाये)]

खैर—(सं०)–(१) एक प्रसिद्ध कँटीला वृक्ष। यह खंभा आदि के काम में आता है। पर्या०—खैरा (चंपा०)। (२) पान के साथ खाया जानेवाला कत्था। [खदिर (संस्कृ०) खदिर (पा०), खयिर (प्रा०), खैर (हि०), खैर (कश्म०), खैर (अस०), खयेर (बं०), खइर (ओ०), खैरी (मि०), खयर (ने०), खेर (गु०), खैर (मरा०), किहिरि (सिंह०)]

खैरा—(सं०)–(१) धान में लगनेवाला एक कीड़ा, जिसके कारण बाल पीले रंग की हो जाती है तथा उसमें दाना नहीं होता (प०)। पर्या०—खैरी (उ०-पू० मुं०)। [देशी, संभ०—कत्थई वर्ण के कारण) < खैर < खादिर] (२) एक प्रकार का कँटीला वृक्ष। इसकी लकड़ी मजबूत होती है और खंभा आदि के काम में आती है (चंपा०-१)। [दे०—खैर-१। [खैर+आ (प्र०) < *खादिर, < *खदिरक]

खैरी—(सं०)–(उ०-पू० मुं०)। दे०—खैरा। [देशी, मिला०—खैरा]

खोंइया–(सं०)-(पू०-मुं०)। भुट्टे के ऊपर की परतदार पत्तियाँ। दे०– खोईया। [कोशिक < कोश, < कुक्षि वा √कुंच, √चोद् (=फेंकना, निकालना)]

खोँखरी—(सं०) मकई की बाल में से दानों को निकालने के बाद बची हुई डाँठ (द०-प० शाहा०)

दे०—लेंढ़ो। पर्या०—वलुरी (मग०-५) लेंढ़ा (चंपा०), [देशी, मिला०—खँखड़ी, कंकाल]

खोंच—(सं०)-(१) ऊख के कोल्हू के पेट में सुविधा के लिए लगाया गया लकड़ी का पाचड़ (पू०)। दे०—रोड़ा। (२) लकड़ी से या किसी और पदार्थ से खींच कर लगा आघात। [देशी, मिला०—√खच >खचित]

खोंचरी—(सं०) अन्न रखने के लिए खड़ की बनी हुई कोठी (द० भाग०)। पर्या०—खोंचली (मग०-५), बाँध (द० मुं०)। [देशी, मिला० √खच् वा √षच् (समवाये)]

खोंचली—(सं०)-(मग०-५)। दे०—खोंचरी।

खोंटल—(क्रि०)—(१) किसी पौधे की फुनगी को ऊपर से तोड़ लेना (मुं०-१, मग०-५, मं०-२, चंपा०)। (वि०) (२)—खोंटी हुई वस्तु (चंपा०-१)। [< √खुड, (=खोंटना). √खुंड (=तोड़ना), वा √खोट (क्षेपे)]

खोंढ़ा—(सं०) (१)—(द०-पू० बिहा०)। दे०—खेढ़ा। (२) पहाड़ा [< खात, < कर्षु, < कर्ष]

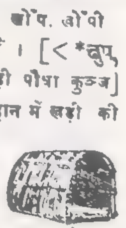
खोंता—(सं०)—(१) एक प्रकार का फल (दर०-१)। (२)—पक्षियों का घोंसला। [देशी]

खोंप, खोंपी—(सं०)-(१) भूसा रखने के लिए खड़ आदि का बनाया हुआ घर (गं० उ०, मं० २)। (२) बखारी के ऊपर का गोलाकार छप्पर (शाहा०-१, चंपा०, सा०)। पर्या०—खोंप के मथनी—वर्षा आदि से बचाव के लिए खोंप के ऊपर छाया हुआ छप्पर। (३) स्त्रियों के केशों का एक शृंगार-विन्यास जिसमें वेणी गूँथकर छत्राकार बनाई जाती है और उसमें कील, फूल आदि जड़े जाते हैं। [< *क्षुप, < *क्षुपक वा < *क्षुम्प = झाड़ी पौधा कुञ्ज]



खोंप, खोंपी

खोंपड़ा—(सं०) खेत या खलिहान में खड़ी की गई झोंपड़ी (द०-पू०, मग०-५)। दे०—मड़ई। [खोंपड़ा (प्र०) < *क्षुम्प, < *क्षुप (संस्कृ०), झोंपड़ा (हिं०), झोपड़ा (मरा०), झूपड़ी, झूंपड़ा (गु०), खोप्रो (ने०), झोपड़ (संता०) (=घनी झाड़ियों का जंगल), खोपड़ा (हिं०) = खोपड़ी, कपाल < खर्पर, कपाल]



खोंपड़ा

खोंपड़ी—(सं०)—(मं०-१, मग०-५, अन्यत्र)। दे०—खोंपड़ा तथा मड़ई। [खोंप + ड़ी (प्र०). मिला०—खोंपड़ा]

खोंपी, खोंप—(सं०)—(गं० उ०)। दे०—खोंप। [खोंप + ई (प्र०), मिला०—खोंप]

खोआ, खुआ—(सं०)-(१) (द० भाग०)। दे०—खुआ तथा पोर। (२) दाँवने के लिए खलिहान में छींटी हुई तैयार फसल (द० भाग०)। दे०—पोर। (३) दूध का बना खोवा। [< *क्षोद्य < √क्षुद् (पेषणे)]

खोइया (सं०)—(१) रस निकल जाने के बाद का ऊख का डंठल (चंपा०, मं०-२, अ० ज०)। पर्या०—खोइया (पट०, गया, पू०, पट०-४, मग०-५), खोइहा (द० भाग०), चेफुआ (शाहा०, चंपा०), बगास (चंपा०, सा०-१)। (२) अफीम आदि के बीजकोष के ऊपर का छिलका (गं० उ०)। पर्या०—खोहिया (गया), खोलड़ी (द०-प० शाहा०), बोकला (शाहा०, शेष भाग, द०-पू० बिहा०), बकुला (पट०)। (३) भेंट का लड्डू रामदाना (मुं०-१)। (४) ऊख चूसने के बाद उसका चूसा हुआ शेष भाग, जो फेंक दिया जाता है (गं० उ०)। पर्या०—खोहिया, चेपुआ (गं० द०), चोपा (द० भाग०)। सिट्ठी = चूसकर मुख से निकाला हुआ ऊख का शेष भाग। (५) किसी फल आदि का छिलका (चंपा०-१)। [< *कोशिक < कोश. < *कुंचित < कुंच वा खोटित < √खोट्वा < खोदित < √क्षुद् < खोल, < खोलक

खोइहा—(सं०)-(द० भाग०)। दे०—खोइया। [मिला०—खोइया]

खोइया—(सं०)-(१) भुट्टे के ऊपर की पत्तियाँ (प०)। (२) किसी वस्तु के ऊपर का रसहीन छिलका। पर्या० खलखोइया, बोकला (सामा०), खलखोइया (चंपा०), बकले, खोसा (द०-प०-मं०) खोइया (पू० मं०) पतौरा (द० मुं०), पांचो (द० भाग०)। खलकोइया (मग०-५, चंपा०)। [< *खादित < √क्षुद्; < *कुंचित < √कुंच, < *चोटित < √चोट वा < कोशिक < कोश]

खोखसा—(सं०) एक प्रकार का फल (दर०-१)। [मिला०—खेखसा]

खोजड़ा—(सं०) पाला या मारा आदि से ग्रस्त ज्वार, मकई, बाजड़े आदि की फसल (शाहा०)। दे०—झलियाएल। [देशी, मिला० —√खज् (मन्थे) √खंज (गति वैकल्ये)]

खोढ़ली—(सं०)-(१) कोठी या दीवार के भीतर कुछ रखने के लिए बनाया गया छोटा-सा खोखला भाग, ताखा (चंपा०-१)। (२) आम के बगीचे में आम रखने के लिए जमीन खोदकर और उसके ऊपर कुछ रखकर तथा उसे मिट्टी से ढककर बनाया गया गड्ढा। इसमें बगल की ओर मुँह रहता है। (चंपा०-१)। पर्या०—खधुली (चंपा०) खोधिला (मं०-२)। [खोढ़ल + ई (प्र०) < खोढर, खोढ़ल, < कोटर] (?)]

खोधिला—(सं०) दे०—खोढ़ली-२ (मं०-२)।

खोभरुआ—(सं०) रतालू (शाहा०-१)। दे०—खमहरुआ। [देशी]

खोभी—(सं०) एक पशु-खाद्य घास (द०-पू०-मं०, गया, चंपा०)। [देशी, मिला०—क्षुमा (= अलसी, सन या नील), क्षुमा, क्षूभा = एक प्रकार का अस्त्र)]

खोर—(सं०)-(१) इकट्ठा किये हुए अनाज की राशि (उ०-पू० मं०)। दे०—रास। [चोष्य = समूह (मो० वि० वि०)] (२) पानी का घेरा। बाँध का घेरा। बँधा हुआ पानी (मुं०-१) [देशी, मिला० —खोड (देशी) = सीमा निर्धारक काष्ठ। क्षोड (संस्कृ०) = खूंटा] (३)-(द०-पू० मं०)। दे०—खोरा। [मिला०—खोरा] (४) दही मथने का मिट्टी का बड़ा बरतन (मं०-२)

खोरा—(सं०)-(१) ऊख के उबाले हुए रस को रखने का बरतन (द०-पू०)। दे०—मटुकी। (२) वह बरतन, जिसमें कोल्हू से ऊख का रस चूता है। पर्या० —खोर (द०-पू० मं०), नाद (शाहा०), कुंडा (शाहा०, प० मं०, पट०), छन्ना। (३) अन्न रखने के काम में आनेवाला एक प्रकार का मिट्टी का बड़ा बरतन (पट०, गया, द० मुं०)। (४) गुड़ रखने का मिट्टी का बरतन, तौला, बड़ा बरतन (मुं०-१)। [मिला०—कुत्तु (चमड़े का बना तेल का पात्र), खोडी (देशी) = काष्ठ की पेटी (पा० स० म०)। चोण्ण < चोणी। कूट वा कुंड = एक प्रकार का बरतन। खोल या खोलक (= पात्र)]



खोरा

खोरासानी जवाइन (सं०) अजवायन की तरह का एक मसाला। [खोरासानी + जवाइन]

खोल—(सं०)-(१) पानी पटाने के काम में आनेवाले ढेकुल के खम्भे की शाखाओं में किया हुआ छिद्र, जिसमें धुरी लटकती रहती है। (२) नाव में से पानी उपछने का एक बरतन (मं०-२)। (३) किसी वस्तु का ऊपरी आवरण। (४) ओढ़ने का मोटा कपड़ा। (५) दे०—अनपट। [√खुंड, √खुल; < खोल, < खोलक]

खोलड़ी—(सं०)-(१) बीजकोष के ऊपर का छिलका, (द०-पू० शाहा०)। दे०—खोइया। (२) मँडुए के दानों को निकाल लेने के बाद बची हुई ऊपर की भूसी (द०-प० शाहा०)। दे०—डाँटी। [खोल + ड़ी < *खोल (संस्कृ०)]

खोलसा—(सं०) (मं० द०-पू०)। दे०—अनपट, खोल। [खोल + सा < *खोल]

खोला—(सं०)-(पू०)। दे० अनपट। [मिला०—खोल]

खोह—(सं०) दाँवने के लिए खलिहान में छींटी हुई तैयार फसल (चंपा, द०-पू० मं०)। दे०—पोर। [< *क्षोद्य]

खोहिया—(सं०)-(१)-(गया)। दे०—खोइया। (२)—(पट०, गया, पू०)। दे०—खोइया। (३) (ग० द०)। दे० —खोइया। [< क्षोदित या क्षोद्य < √क्षुद्]

खौरा—(सं०)-(१) पशुओं के पैर का एक रोग। इस रोग में खुर में घाव होकर उसमें कीड़े पड़ जाया करते हैं। इस रोग के होने पर पशुओं को जल में बाँधा जाता है। जल से कीड़ों की मृत्यु हो जाती है। पर्या०—खउरा, खवुरा। (२) कुत्तों का एक रोग। इसमें उनके सारे शरीर में घाव हो जाता है (चंपा०)। [खौर + आ, खौर < क्षुर]

ग

गँगट—(सं०)—(पू०, भाग०-१) दे०—आँकड़। [गँग+ट (प्र०) अथवा <गंगा+तट; गंगा+आवर्त्त (संस्कृ०), गंगावट्ट (प्रा०) मिला०—गङ्गाट; गङ्गाटेय= संस्कृ० एक प्रकार की मछली।

गँगटा—(सं०)—(द०-पू०, भाग०-१, मग०-५, पट०-४) दे०—अँकड़ा। [गँग+टा<गंगा+तट, गंगा+आवर्त्त (?); मिला०—गङ्गाट, गङ्गाटेय]

गँगटाहा—(सं०)—(पट०, द० मुं०, भाग०-१, मग०-५), दे०—गँगटियाहा। [गँग+टा+हा (प्र०) <गंगातट, गंगावर्त्त (?); मिला०—गङ्गाट, गङ्गाटेय]

गँगटियाहा—(सं०) कंकड़ मिली हुई मिट्टी (पट०, गया, द० भाग० भाग०-१, मग०-५) पर्या०—गँगटाहा (पट०, द० मुं), कँकरोटिया (द० भाग०, भाग०-१), अँकड़ाह (चंपा०, मैं०-२)। [गंग+टा+इया+हा (प्र०) <गंगातटीय, गंगावर्त्तीय (?), मिला०—गङ्गाट, गङ्गाटेय]

गँगटी—(सं०)-(१)—(द०-पू०, भाग०-१)। दे०—अँकड़ी। (२) नदी के किनारे मिलनेवाला छोटा गोल मटमैला कंकड़, जिसे पकाकर चूना बनाया जाता है (मग०-५)। [गंग+टा+ई (अल्पा० प्र०) <गंगा+तट, गंगावर्त्त (?) मिला० —गङ्गाट, गङ्गाटेय]।

गँगटी कवाल—(सं०)-(भाग०-१)। दे०—गगरी केवाल।

गँगबड़ार—(सं०) वह जमीन, जो किसी नदी की धारा के हटने से निकलती है (भाग०-१, चंपा, मग० ५) पर्या०—गँगबरार। [गँग+बड़ार <गंगा (संस्कृ०)+बरार (फा०; हिं० श० सा०)। गंगा+वार (संस्कृ०) (?)। वार=अवकाश, विस्तृत भूमि; यथा "वार आ पृथिव्याः"—अथ०—(मो० वि० डि०)]।

गँगबरार—(सं०)। दे०—गँगबड़ार।

गँगबट—(सं०) गंगा की मिट्टी। यह पीले रंग की होती है (चंपा०-१, मैं०-२)। [गंग+बट <गंगातट <गंगामृत वा गंगावर्त्त (संस्कृ०), <गंगवट्ट (प्रा०)। मिला०—गङ्गाट, गङ्गाटेय (संस्कृ०)=एक मछली]

गँगसिकस्त—(सं०) वह जमीन, जिसे नदी का जल काट ले गया हो। दे०—गँगबड़ार। [गंग+सिकस्त<गंगा (संस्कृ०)+शिकस्त (फा०) मिला०—सिक्थ, शिक्थ=मधु निचोड़ लने के बाद छत्ते में बचा हुआ भाग, मोम। सिक्त=सिंचित, सैकत=(संस्कृ०) सिक्तामय, जल से निकली हुई भूमि; "तोयोत्थितं तत्पुलिनं सैकतं सिकतामयम्" (अम०)]

गँजाई—(सं०) धान या रबी की फसल या कूड़े-करकट को एक स्थान पर एकत्रित करने की प्रक्रिया (बिह०)। [गँज+आई (प्र०)<गंज]

गँजाड़—(सं०) वह जमीन, जो एक बरसात से लेकर दूसरी बरसात तक बिना आबाद किये जोती जाती है और अगली बरसात के समय उसमें धान का बीज गिराया जाता है। दे०—दोतरा चौमास [देशी, मिला०—गंज (संस्कृ०)=अपमान, भांडार। गंजा (संस्कृ०) खान, मदिरागृह, मकान बनाने का स्थान। गंज (फा०)= टाल, राशि। गंभेर=(संता०)=घना जंगल]

गँजाड़ल—(क्रि०) खेत में थोड़ा पानी रहने पर उसकी हल्की जोताई कर देना। [गँज+आड़ल (प्र०)<गँज<गाँजल (बिहा०) गाँजना (हिं०)]।

गँजावल—(क्रि०) गाँजल क्रि० का प्रे०। गाँज लगवाना। इकट्ठा करवाना (वि०) गाँज लगवाया हुआ। [गँज+आवल<गञ्ज (?)]

गँड़मेखा—(सं०) लाठा के पिछले भाग के अन्त में लगी कील, जिसमें मिट्टी, पत्थर आदि का भार बाँधा जाता है (पट०, गया)। दे०—खूँटा। [गँड़+मेखा<गंड+मेख, मेखण (=कील)<√मिख]

गँडरकट्टा—(वि०) हत्था से पानी बिखेरकर खेत को सींचनेवाला पुरुष (द०-मुं०)। दे०—हथवाहा। [गँडर+कट्टा, गँडर<गँडारी <गर्त्त वा केदार, कट्टा<काटल (बिहा०) काटना (हिं०) <√कृत्]।

गँड़सार—(सं०) ऊख रोपने के पहले बीज के रखने का गड्ढा (गया, भाग०-१) दे० खाद। [गँड़+सार गँड<गँडेरी (ऊख का छोटा टुकड़ा) <गंड वा खंड; सार<शाल<शाला अथवा गंड<गर्त्त (संस्कृ०) गड (प्रा०) +सार<शाला]

गँड़सा—(सं०) चारा काटने का लोहे का बना हथियार, जिसमें छोटी, किन्तु कुछ भारी बेंट लगी रहती है (उ०-प० मैं०)। दे०—गँड़ासी। [गँड+सी <गंड वा खंड+असि]

गँड़हर—(सं०) एक पशु-खाद्य घास (शाहा०, गया, द० मुं०)। पर्या०—गड़ार (द०-पू०), गड़हरुआ, गड़ेरी (उ०), गड़ियार (प०), गँड़ेर (गया), गँड़र (पट०)। [देशी, मिला०—गवेधु, गवेधुक (संस्कृ०)=तृणधान्य, गँड़रा (हिं०) <गंडाली]

गँडा—(सं०)—(१) चार गोइठे या अन्य किन्हीं चार वस्तुओं का समूह। (२) काले सूतों की एक प्रकार की माला (शाहा०) [गंडक]

गँडाढार—(सं०) ऊख की पहली सिंचाई (गया, द०-प० शाहा०)। पर्या०—छेंवका (शाहा०, शे०, भा०), पनगंडा (पट०), अँधरी पटावन, अन्हरी पटावन (द० भाग०), पहिल पटावन (अन्यत्र)। [गंडा+ढार, गंडा<कांड, ढार <ढारल (बिहा०), ढारना (हिं०)<√ध्वल (गतौ) (?)]

गँड़ारी—(सं०) (१) सींचने या बोने आदि की सुविधा के लिए खेतों में बने हुए जमीन के छोटे-छोटे टुकड़े (पट०, द०-पू०, भाग०-१, मग०-५)। दे०—कियारी। (२) (गया, द० मुं०)। दे०—आर। (३) पटाने के लिए खेत में बनी छोटी नाली (द० मुं०)। [गर्त्त (संस्कृ०), गड (प्रा०), गंड, खंड वा केदार]

गँड़ास—(सं०)—(मैं०-२, चंपा०, भाग०-१, आज०)। दे०—गँड़ासी।

गँड़ासा—(सं०)-(१)—(द० मैं०) दे०—गँड़ासी। (२) फरसे के आकार का एक अस्त्र।

गँड़ासी—(सं०) चारा काटने का लोहे का बना हथियार, जिसमें छोटी, किंतु भारी बेंट लगी रहती है (शाहा०, चंपा०)। पर्या०—गड़ासी (भाग०-१) गँड़सी (उ०-प० मैं०), गड़ाँसा (द० मैं०), गँड़ास मैं०-२, चंपा०, भाग०-१)। [गँड़+असी<गंड वा खंड+असि]।


गँड़ासी

गँडुआ—(सं०) कुआँ बनाने या बगल की दीवार बाँधने में प्रयुक्त भट्ठी में पका मिट्टी का गोल पट्टा या ईंट (पट०, द०-मुं०)। दे०—खपड़ा। [गँड़+उआ <गंड वा खंड]

गँडेर—(सं०)—(गया)। दे०—गँड़हर।

गँदौरा—(सं०) खाद, बुहारन (पू० सा०)। दे०—खादर। [गँद+औरा <गंदा, खाद]

गंधकटंकी—(सं०) मिल की वह भट्ठी, जिसमें गंधक जलती है। इसके धुएँ से चीनी-मिलों में चीनी साफ की जाती है। (हरि० री०, बिह०)। पर्या०—गंधकभट्ठी। [गंधक (हिं०, संस्कृ०)+टंकी<टैंक (अं०)]

गंधकभट्ठी—(सं०) दे०—गंधकटंकी (री०)।

गंधकी—(सं०) एक छोटी हरी मक्खी, जो धान के पौधे को हानि पहुँचाती है। (मैं०-२, अन्यत्र भी) [गंध+की <*गंध। *गंधकीट]

गंधवा—(सं०) एक उड़नेवाला दुर्गन्धयुक्त कीड़ा, जो फूल लगने के पहले ही ज्वार आदि फसल पर प्रहार करता है (पट०)। दे०—गाँधी। [<*गन्धिक]

गंधी—(सं०) दे०—गाँधी।

गँभरी—(सं०) एक प्रकार का काला धान, जो बोने के दिन से केवल साठ दिनों में पक जाता है, इसका चावल लाल होता है (पू०, मैं०-२)। इस धान के दाने बाहर नहीं निकलते, बल्कि पौधे में पत्तों के भीतर ही पक जाते हैं। दे०—साठी। [गंभ+री <*गर्भ।

गँबखा—(सं०) ऊख की जड़ से निकलनेवाली शाखा, जिससे पौधे को हानि पहुँचती है (शाहा०)। दे०—दोंज। पर्या०—दोंजी (मैं०-२, चंपा०)। [देशी, गोखाद्य (?)]

गउ—(सं०) (चंपा०) दे०—गाय, गोरू।

गउसाला—(सं०) दे०—गोसाला।

गगरा—(सं०) लोहे, पीतल या ताँबे का बना घड़ा-जैसा पानी रखने का पात्र। दे०—गगरी, गागर।

गगरी—(सं०), (१) वह बरतन, जिसमें ऊख के रस

को उबालने के पहले एकत्र कर रखा जाता है। दे०—नाद। (२) पानी लाने या रखने के लिए मिट्टी, पीतल, ताँबे आदि का बना घड़ा (बिहा०, भाग०)। पर्या०—गगरा, गागर, घड़ा मेटा। [(अनु०) गर्गर, गर्गरी (संस्कृ०), गग्गर, (पा०), गग्गरी (प्रा०), गागुरु (कश्म०), गागर, गगरा (हिं०), गाग्रो (ने०,कुमा०), गगरी (असा०) गाग्री (बं०), गगरा (ओ०), गागर (पं०), गागिर (ल०), गागर (गु०)। टर्नर के अनुसार गागर (पं०), गागिर (ल०) के रूप गागरा (म० दे०) से सम्बन्धित हैं, न कि (संस्कृत) से। मिला०—घर्घरक (संस्कृ०) = एक नदी। घाघरी (सि०) = जलपात्र। ये रूप अनु० हैं—ने० पा०]



गगरी

गगरी केवाल—(सं०) बारीक कंकड़ मिली हुई मिट्टी। दे०—चनकी। पर्या०—गंगटी केवाल (भाग०-१)। [गगरी + केवाल, मिला०—(गंगटी केवाल)]

गचकी—(सं०) सड़क या रास्ते पर टूटने के कारण बने हुए छोटे-छोटे गड्ढे (शाहा०-१) [देशी, (अनु०)]

गचाक—(सं०) दे०—गचकी।

गछपक—(सं०) पेड़ पर का पका आम (चंपा-१)। पर्या०—गछपकु (चंपा०), गछपक्का (भाग-१)। [गछ + पक < *गच्छ + पक्व]

गछाड़—(सं०) वृक्ष की छाया। इस छाया में फसल अच्छी नहीं होती (पट०-१, पट०-४, चंपा०, मग०-५, भाग०-१)। [गछ + आड़]

गछुली—(सं०) फल आदि का नया बगीचा। (गं० उ०, मग०-५, पट०-४, मुं०-२) पर्या०—नौराही (चंपा०, मुं०), नरोइ (चंपा०, मुं०), लवगछुली या नवगछुली (मुं०, मुं०-२), नवपेड़ा, लौगाछी या नौगाछी (द०-पू०) केड़वारी (शाहा०), नरोई (पट०, द०-मुं०), नौकेड़ा बागीचा (गया), लवगच्छी (भाग०)। [गछ + उली (अल्पा० प्र०) < गाछ < *गच्छ]

गछेड़ मारल—(मुहा०) खेत की फसल पर वृक्ष की छाया पड़ना (पट०-१, चंपा०, पट०-४, मग०-५, भाग०-१)। [गछेड़ + मारल; गछेड़ < गछाड़ + आड़ < गाछ + आड़ < गच्छ + आड़। मार + ल < √मृ + णिच्। (= मारि (प्रे०)]

गजड़वा धान—(सं०) गाजर के रंग का एक मोटा धान (पट०-१, मग०-५, पट०-४)। [गजड़ + वा (प्र०) + धान < गाजर + धान]

गजड़ा—(सं०) मूली की जाति का एक प्रकार का कंद, जो खाने में मीठा होता है। यह लाल या लाल-बैंगनी रंग का होता है। यह कच्चा और पकाकर दोनों प्रकार से खाया जाता है। इससे तरकारी, हलुआ, मुरब्बे आदि बनाये जाते हैं (पट-१, भाग-१)। दे०—गजरा। [गजड़ा < गाजर < गार्जर, गर्जर, गृञ्जर (संस्कृ०), गज्जर (प्रा०), गाजर, गजरा (हिं०), गाजर (ने०), गाजर (असा०), गाजर (पं०), गजर (सि०); गाजर (बं०), गजर, सेठीमूल, बाटुला मूला (मरा०); गाजर (गु०), चिड़िकेय मुलंगी, गर्जरी, बहमुलङ्गी (क०), गृञ्जन (ते०), गजर (का०) गजर (ब०)]

गजनैना—(सं०) वह बैल, जिसकी आँखें छोटी-छोटी हों (पट०-१)। [गज + नयना (सादृ०) < *गजनयनक]

गजपती—(सं०) रोपा जानेवाला एक प्रकार का धान (द० मुं०, भाग०-१) [देशी, मिला०—गजपत्र < गज + पत्र]।

गजपत्ता—(सं०) धान का एक प्रकार (गया, मग०-५)। [देशी, गज + पत्ता मिला०—गजपत्र < गज + पत्र]

गजर—(सं०) धान के खेतों में, धान के बोने के पश्चात् घास-पात आदि की सफाई और बीज को नीचे दबाने के लिए की जानेवाली हल्की-सी पुनः जुताई (उ०-पू०, मुं०)। पर्या०—गजाड़, गजार (दर०-१, मुं०-२), ढकान (भाग०-१)। [देशी (अनु०), मिला०-गंज = वह स्थान, जहाँ वस्तुएँ सुरक्षित रखी जाती हैं]

गजरमसर—(सं०) मटर, चना, जौ और गेहूँ अथवा किन्हीं दो या तीन अन्नों का मिश्रण (शाहा०, छो०, भा०)। दे०—तरेरा। [गजर + मसर (अनु०), गजर + बजर (हिं०)]

गजरा—(सं०) मूली की जाति का एक प्रकार का कन्द, जो खाने में मीठा होता है और कच्चा एवं पकाकर दोनों प्रकार से खाया जाता है। (चंपा०, शाहा० तथा अन्यत्र), पर्या०—गाजर (द० प० शाहा०)। [गाजर < गर्जर, < गृञ्जन, मिला०—गजड़ा]

गजरौट—(सं०) पशुओं को खाने के लिए दिया जानेवाला गाजर का डंठल, पत्ता आदि (गया, भाग०-१)। दे०—गजरौटी। [गजर + औट < गर्जर]

गजरौटी—(सं०) दे०—गजरौट। [गजर + औटी < गर्जर]

गजाबजा—(सं०) दे०—गजरमसर। [गजा + बजा (अनु०) मिला०—गद्य-पद्य (मिश्रित), गज्ज-पज्ज (प्रा०)]

गजार—(सं०) खेत में पानी रहने पर जोतकर घास-फूस सड़ाने की प्रक्रिया। दे०—गजर। [देशी, मिला० गंज]

गजार करल—(मुहा०) गजार करना। दे०—गजार [गजार + कर + ल (प्र०)]

गजारी—(सं०), (१) वह ऊख, जो मीठा नहीं लगता। दे०—पंडार। (२) छोटा आलू [गजारि (संस्कृ०) = एक प्रकार का केला या गाजर]

गजुर—(सं०) (१) भिगोये हुए अन्न में से निकला हुआ अंकुर। (२) भूमि पर उगा हुआ बीज का पहला अंकुर (द० भाग०)। दे०—डिब्बी, पर्या०—गजुरा, गजूर (भाग०-१)।

गजुरल—(क्रि०) अन्न में से अंकुर का निकलना। (वि०) अंकुरित। दे०—गजुर। [गजुर + ल (प्र०) < गजुर]

गजुरा—(सं०) (भाग०-१)। दे०—गजुर।

गजूर—(सं०) (भाग०-१)। दे०—गजुर।

गझंडी—(सं०) एक जंगली झाड़, जो बाग आदि की मेंड़ों पर उगती है और जिसकी पत्तियाँ लाल-बैंगनी रंग की होती हैं। छोटी बघंडी। पर्या०—बघंडी (भाग०-१, मुं०-२, चंपा०, मग०-५)। [देशी, मिला०-गंजा (हिं०) < गञ्ज (संस्कृ०) = दूध, पानी आदि का बुलबुला]। टि०—गझंडी या बघंडी के दूध या रस को निकाल कर उसे कुंडलाकार तृण में लेकर फूंककर उसे बच्चे उड़ाते हैं और वह बुलबुला बनकर उड़ता है। इसका दातौन भी होता है।]

गट्ठा—(सं०) लकड़ी का बोझा (भाग०-१)। [< *ग्रन्थिक]

गठकोबी—(सं०) एक तरकारी विशेष। गाँठदार गोभी (पट०-१) पर्या०—कठकोबी (मग०-५), गेठकोबी (भाग०-१)। [गठ + कोबी < गाँठ + गोभी]

गड़गड़—(सं०) मेघ की गड़गड़ ध्वनि। [अनु० मिला०, √गर्ज (अव्यक्ते शब्दे)]

गड़गड़ावल—(क्रि०) गड़गड़ की ध्वनि का होना। मेघ का उमड़ना।

गड़नी—(सं०), (१) नदी, नहर आदि में पानी को ऊपर उठाने के लिए जल-प्रवाह के बीचों-बीच इस पार से उस पार तक बाँधा गया बाँध (उ०-प०)। दे०—बाँध। [देशी, मिला०—गाड़ना वा गोड़ना, गेड़ना; मिला०—√गुरी उद्यमने = ऊपर उठाना)]। (२) एक पशु-खाद्य घास (उ०-प०) [देशी, मिला०—गाँडर (हिं०), गंडाली (संस्कृ०)]

गड़हर—(सं०) एक प्रकार की घास, जो धान की फसल को हानि पहुँचाती है। (द०प०शाहा, मुं०-२)। पर्या०—गड़ार (पू०मुं०), गाँड़र (प० मुं०, पट०), जमार गड़ार (द०-मुं०)। [देशी, मिला०—गवेधुका, गंडाली]।

गड़हा—(सं०) गड्ढा, गहरा खेत आदि। पर्या०—गड्ढा, गरहा, गहरा, गहरड (भाग०-१), खदहा, खड्डा, डबरा। [गड़हा < *गर्त्त; < *कर्ष]

गड़ही—(सं०) छोटा गड़हा।

गड़रा—(सं०), (१) चावल में लगनेवाला एक प्रकार का छोटा उजला कीड़ा (गया, सा०, मुं०) दे०—खपड़ोइया। पर्या०—जलुआ (भाग०-१)। (२) लकड़ी में लगनेवाला एक उजला कीड़ा, जो एक या सवा इंच का लंबा-मोटा होता है तथा इसका मुँह लाल-पीले रंग का होता है

(भाग०-१) [देशी, मिला०—गंडोलक=एक प्रकार का कीड़ा (मो० वि० डि०) (३) एक प्रकार की घास [मिला०—गवेधु, गंडोल]

गड़हड़ो—(सं०) दुष्ट या मगोड़े जानवर का भागना रोकने के लिए उसके गले में बाँधा गया लकड़ी का एक टुकड़ा। (द० भा०, भाग०-१) पर्या०—ठकड़ा, ठोकरा (चंपा०)। [गड़+हड़ो< गलहडि=लकड़ी की शृंखला—(मो० वि० डि०)]

गड़हरुआ—(सं०) (उ०)। दे०—गँड़हर। [मिला०—गवेधुक, गडोल]

गड़हैया—(सं०) छोटा गड़हा (भाग०-१) पर्या०—खधिया (मं०-२)। [गड़हा+एया (अल्पा० प्र०)< गर्त्त, कर्ष]

गड़ार—(सं०)-(१) ऊख की जड़ में लगनेवाला एक कीड़ा (प०, चंपा०, मं०-२) पर्या०—दियारा (भाग०-१), दियार (चंपा०)। [मिला०—गंडोल+(क)] (२) एक प्रकार की घास, जो धान की फसल को हानि पहुँचाती है (पू०-मं०, भाग०-१)। दे०—गड़हर। (३) एक पशु-खाद्य घास (द०-पू०)। दे०—गँड़हर। [मिला०—गवेधुक, गंडालि, गंड्डुत (संस्कृ०)]

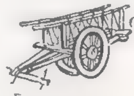
गड़ारी—(सं०), (१) खेत में बनाई गई छोटी-छोटी क्यारी (भाग०-१)। (२) खंभे की दोकानियों के बीच पड़ी धुरी पर नाचनेवाली घिरनी (उ०-प०, द० मुं०)। दे०—घड़ारी। [गड़+आड़ी< *गंड (=चिह्न, खंड)+आलि वा अणि, गर्त्त+अणि]।

गड़ि—(सं०) बैलगाड़ी (चंपा०, मं०-२)। दे०—गाड़ी।

गड़िमान—(सं०) गाड़ी हाँकनेवाला। दे०—गाड़ीवान। [गाड़ि+मान]

गड़ियार—(सं०) एक पशुखाद्य घास (पट०) दे०—गँड़हर। [मिला०—गवेधुक, गंडालि, गंड्डुत (संस्कृ०)]

गड़ी—(सं०) बैलगाड़ी (भाग०-१, अन्यत्र)। दे०—गाड़ी। [गन्त्री (संस्कृ०), गड्डी (प्रा०), गड्डी (पं०), गाड़ी (मरा०, गु०)]



गड़ी

गड़ी—(सं०) नारियल का गुद्दा [गरी]।

गड़ीवान—(सं०) गाड़ीवान [गड़ी+वान < *गन्त्रीमत्]।

गड़ेरी—(सं०)—(१) एक पशुखाद्य घास (उ०)। दे०—गँडहर। (२) भेड़ पालनेवाली एक जाति। [मिला०—गवेधुक, गंडालि, गंड्डुत (संस्कृ०), गड्डलिका (=भेड़)]

गड़ौंछी—(सं०) शाकजातीय एक पशुखाद्य घास (चंपा०, पट०)। दे०—चेंच। [देशी, मिला०—गर्मुत्=एक प्रकार की घास (मो० वि० डि०)]

गड़ौआँ (सं०)—(पट०, मग०-५, पट०-४)। दे०—कोठिला। [गड़+औआँ (वि०-प्र०) गड़< गड (आच्छादन, घेरा)। गड+कूप]

गढ़री—(सं०)—(उ० मं०)। दे०—गोड़हरुआ। [मिला०—गवेधुक, गंडालि, गंड्डुत (संस्कृ०)]।

गतान—(सं०)—(१) किसी चीज के बोझे को बाँधने के लिए घासों के समूह को लपेटकर या बाँस की करची को फाड़कर तथा ऐंठकर बनाई गई रस्सी (चंपा०-१)। पर्या०—गात (शाहा०)। [गत+आन, ग+तान< √गन्त्री+तन्तु, गात्रतन्तु, गन्त्रीदाम, गात्रदाम। गड (=बंधन)+तंतु वा दाम]

गतार—(सं०) जुए के नीचे का पल्ला या फलक (चंपा०, गया, मग०-५)। दे०—तरसईल। [ग+तार, गत+आर, < गर्त्ततल, गात्रतल ?) मिला०—गताल (बिहा०) = निचला, नीचा, गर्त्त]।

गतौरा—(सं०) ऊख के बोझे को बाँधनेवाली रस्सी (द० प० शाहा०)। दे०—जोती। गत+औरा, मिला०—गतान]

गत्ती—(सं०)—(द० भाग०)। दे०—गोरपोरी। [गर्त्त]

गदपँड़ोआ—(सं०)—(पट०, गया) दे०—गदपुरना। [गद+पँडोआ < गदहपूर्णा (हिं०), मिला०—गदपुरना]

गदपिड़ोड़ा—(सं०)—(द० मुं०, भाग०-१) दे०—गदपुरना—[गद+पिड़ोड़ा, मिला०—गदपुरना]

गदपुरना—(सं०) फसल, शाक आदि के खेत

में पैदा होनेवाली पशु-खाद्य घास, जो जमीन पर फैली रहती है। (शाहा०, चंपा०) पर्या०—गधपुरना (प० मं०, चंपा०) गदपँड़ोआ (पट०, गया), गदपिड़ोड़ा (द० मुं०), पुरनवा (द० भाग०, भाग०-१)। [गद+पुरना। गद< गदह (=रोगनाशक)। पुरना पुनर्नवा। गांद बन्ने पुण्या (बं०), घेटुली, पण्या (मरा०), साटोडी, (गु०), दुवेल्लडूकिलु (क०), कम्मेदि (ते०), मूकरत्तैकीरै (त०, अस्पत [फा०], पुनर्नवा [ने०)]

गदरा—(सं०) [(१) भोजन के लिए काटा हुआ कच्चा अनाज (ग० उ०, मं०-२, मग०-५)। पर्या०—कच्चा (ग०उ०), गादा, गद्दा, गादर (द० मुं०, चंपा०), अँकुरी (द० भाग०, चंपा०, भाग०-१), कचरी (सामा० पू०)। (२) आम का रस (चंपा०-१)। [देशी, मिला०—गर्ध्य, गर्ध< √गृध् (=चाहना); खाद्य, खद्य < √खद् (स्थैर्य=स्थिरता प्राप्त करना, घना होना। दे०—गद्दा]

गदराइल—(क्रि०) (१) फल और अन्न के गुच्छे का पकना। इस समय उपर्युक्त वस्तुएँ पुष्ट हो जाती हैं (चंपा०-१, मं०-२, मग०-५)। (२) मटर-बूट आदि के पौधों में दानों का पुष्ट होना। आम आदि फल का पुष्ट होना। (३) मोटाना (चंपा०-१)। "गदराने तन गोरटी।"—बिहारी। (वि०) गदराई हुई वस्तु [गदरा+आइल (प्र०)< खद्य, खाद्य (?)]

गदराएल—(क्रि०) (१) छीमी में अन्न का होना। (२)—चने आदि के पौधों में लगी ढेढ़ियों या छीमियों के अन्न का पुष्ट होना (मुं०-१, चंपा० मग०-५)। (वि०) गदराई हुई वस्तु। दे०—गदराइल। उदा०—गदराएल बा, गाभा भैल बा। [गदरा+आएल (प्र०)< खाद्य, खद्य< √खद्]

गदरी—(सं०) फसल का अधपका अन्न (चंपा०-१, मं०-२)।

गदहलोट—(वि०) (१)—वह मिट्टी, जहाँ गदहे लोटते हों (शाहा०-१, मं०-२)। (सं०)—गदहे का लोटना। [गदह+लोट]

गदहिया—(सं०)(१) एक कीड़ा विशेष (शाहा०१)। (२)-एक जाति-विशेष (शाहा०-१)। गोआ (मं०-२)। (३)—(पू० मं०, सा०) दे०—पर्या०—गदही [गदह+इया (प्र०) गदहा < गर्दभ, गर्दभी; "गर्दभी क्षुद्ररोगजन्तु-विशेषयो :—(मेदि०)]

गदहिया धान—(सं०) एक प्रकार का धान, जो मोटा और मटमैले रंग का होता है (पट-१)। [गदह+इया (प्र०)+धान< गदहा+धान]

गदही—(सं०) (१) उगते हुए दलहन के पौधों को नष्ट करनेवाला एक कीड़ा (उ०)। पर्या०—गदहिया (पू० सा०, मं०)। (२) गदहे का स्त्रीलिंग। [*गर्दभी (संस्कृ०)=एक प्रकार का कीड़ा, जो गोबर में पैदा होता है—सुश्रु०, —मो० वि० डि० "रासभे गर्दभी क्षुद्ररोग-जन्तुविशेषयो:"— (मेदि०)]

गदीना—(सं०), (१) लहसुन के स्वाद का एक साग। (२) एक छोटा-सा सुगंधित पौधा; इससे दाल छौंकी जाती है (पट०-१)। [देशी]

गद्दर—(सं०) एक प्रकार का भदई धान, जो उजला, लाल तथा कुछ मोटा होता है। इसका चावल लाल या सफेद होता है। यह भाद्र-आश्विन महीने में तैयार हो जाता है (सा०१, चंपा०-१, मं०-२)। पर्या०—गद्दरि (दर०-१) [देशी, मिला०—गुत्स (संस्कृ०), गद्दर् (ने०) =दलदल भूमि, पंकिल भूमि]

गद्दा—(सं०) (१)—(द०-प० शाहा०)। दे०—घड़ारी। (२) बैल, घोड़े और हाथी आदि की पीठ पर रखा जानेवाला मोटा गद्दा। (३)—रुई या नारियल के रेशे आदि को भरकर बनाया गया मोटा बिस्तर। [< *गर्त्त=ऊँचा स्थान, युद्ध-रथ में बैठने का स्थान, गद्दी, गादी (हिं०, ने०), गादी (बं०), गादि (ओ०), गद्दी, गड्डी (पं०), गड्डा (ल०) =एक पाँजा घास, गडो (सिं०), गादी (मरा०, गु०)

गद्दा, गादा—(सं०) भोजन के लिए काटा हुआ कच्चा अनाज (द० मुं०, मग०-५, मं०-२, चंपा०)। दे०—गदरा। [< *खद्य< √खद्—"स्थैर्य=स्थिरता प्राप्त करना, घना होना,

खाना । मिला०—खदिका (संस्कृ०) = भूना या तला हुआ अन्न]

गद्धा—(सं०), (१) धान के पौधे को रोपने के बाद खेत में ज्यादा पानी जमा हो जाना (मुं०-१) । (२) ज्यादा खाने की प्रतिक्रिया (मुं०-१ भाग० -१) । गद्धा लागल (मुहा०) पानी ज्यादा दिन तक जमा रह जाने के कारण धान के पौधों में सर्दी लगना (मुं०-१,) । [< *गद्य=रोग होने योग्य < *गर्त्त वा गर्त्तोदक]

गधपुरना—(सं०)—(प० मं०, चंपा०) । दे०—गदपुरना । [गध + पुरना < गदह + पुनर्नवा]

गधिश्राएल—(वि०)—गद्धा लगा धान का पौधा । (क्रि०) (१) धान के पौधों में ज्यादा पानी होने पर गद्धा रोग पकड़ना । (२) ज्यादा खाकर अलसाना (मुं०-१ भाग०-१) [गधा + इआएल (प्र०) < गद्य < गद (=रोग)]

गनौरा—(सं०) (१) खाद के लिए कूड़ा-कर्कट जमा करने का स्थान (मुं०-१, भाग०-१) । (२) कूड़े-कर्कट की ढेरी (मं०-२, चपा०, मग०-५) । (३) (पू० सा०) । दे०—खादर । [गन+औरा; गन < गन्दा √गन्ध (=दुर्गंध); औरा < अवट < वाट]

गन्हायल—(क्रि०) (१)—खेत में दी गई खाद का सड़ना (चंपा०-१, भाग०-१) । (२) किसी वस्तु के सड़ने पर उससे दुर्गन्ध निकलना । [< *गन्धन < गन्ध] ।

गपतू—(सं०) ज्वार, मकई और ऊख के पत्तों पर श्वेतचिह्न-जैसा लगनेवाला एक रोग, जिससे फसल का ऊपर का हिस्सा नष्ट हो जाता है (पट०, उ०) । दे०—ओरंग । [देशी, ग+पतू < अग्र + पत्र, < गर्भ + पत्र (?)]

गपसू—(सं०)-(सा०) दे०—ओरंग । [मिला०—गपतू]

गब—(सं०) धान की रोपनी शुरू करने के दिन कृषक द्वारा अपने पड़ोसियों को दिया जानेवाला भोज (चंपा०, मं०-२) । (२) धान के बीज का उतना परिमाण, जितना एक बार में रोपा जाता है । दे०—गवा । पर्या०—पहिरोपा (पट०-४, मग०-५); गब लगावल (मुहा०) गब लगाना । [देशी, मिला०—गर्भ]

गंब्रड़ा—(सं०) अनेक प्रकार के धान का मिश्रण । [मिला०—कर्बुर]

गब लगावल—(मुहा०) गब लगाना । दे०—गब ।

गब्भा—(सं०) फसल अथवा किसी पौधे के पत्तों के बीच का नया पत्ता (भाग०-१) पर्या०—गभा, गाभा, गोफा, बीर (चंपा०) ।

गभतू—(सं०)-(शाहा०) । दे०—ओरंग । [देशी, पत्र मिला०—गर्भ, दे० गपतू]

गभा-(सं०) फसल या किसी पौधे के पत्तों के बीच का नया पत्ता (चंपा०) या दे०-गब्भा । [< *गर्भक]

गभाइल—(वि०) वह पौधा, जिसकी बाल पूर्ण रूप से नहीं फूटी हो, अभी गर्भ में ही हो । [गभ + आइल (प्र०) < गर्भ < (संस्कृ०) < गब्भ (प्रा०)] ।

गभा भइल—(मुहा०) चंपा० । देव—गभा भैल ।

गभाभैल—(मुहा०) फसल में बाल का होना (द० प० मं०) । पर्या०—रेंड़ा भैल (द० प० मं०चंपा०), गम्हड़ी भेल (शेष मं०), दुधिआ-लए (शाहा०), गद्दराएल (पट०, गया०) दुधैलै (द० पू०), गद्दराएल (मं०) । [गभा + भैल, भइल, गभा < गर्भ; भेल, भइल < √भू]

गभिनायल—(क्रि०) गाय आदि मवेशी का गाभिन होना, गर्भ धारण करना । (वि०) गाभिन हुई गाय आदि । [< गभिन + आयल (प्र०) < गभिन < गब्भिणी (प्रा०) < *गर्भिणी]

गभौरी-(सं०)-(१)-धान का पूरा डंठल (पुआल), जो दाँवा नहीं जाता है, बल्कि उसे झाड़कर अनाज निकाल लिया जाता है और वह आँटी के रूप में बँधा रहता है । (द० भाग०, भाग०-१) । दे०—नेवारी । (२)—धान के सूखे पौधों की अँटिया या पुल्ला । [देशी, संभ० < *गह्वर, < *गर्भ]

गभ्भा—(सं०) ताड़, केले आदि की नई कोंपल (मुं०-१, भाग०-१) [< *गर्भक]

गमहि—(सं०) एक प्रकार का भदैया धान । दे०—गम्हरी । [< *गह्वर: < *गर्भ]

गमला (सं०) फूल रोपने का मिट्टी का बरतन । [गामला (बँ०), गमला (हिं०, पं०) । व्युत्पत्ति अनिश्चित; उधार लिया शब्द—(नेपा०) ।

मिला०—गल्वार्क (संस्कृ०) = स्फटिक का बना एक लघुपात्र, जिससे तरल पदार्थ पीया जाता था-(मो० वि० डि०); गम + ला < गुल्म + ल (प्र०); गुल्मक = झाड़ीदार, झाड़ीवाला, गम < ग्मा (पृथ्वी, मिट्टी) + आलु (= कठौती?)]

गमहारि—(सं०) एक प्रकार का पौधा । पर्या०-गम्हार (चंपा०) । [मिला०—गम्भारी]

गम्हड़ल—(क्रि०) धान आदि के पौधों का फूटने लगना [< *गर्भ < √गृभ् = √ग्रह (उपादाने = ग्रहण करना); < गह्वर]

गम्हड़ा भेल—(मुहा०) फसल में बाल फूटने लगना (द० प० के अतिरिक्त मं०) । दे०—गभा भैल । [गम्हड़ा + भेल; गम्हड़ा < गर्भ; भेल < √भू]

गम्हड़ी—(सं०) फूटनेवाले धान आदि के पौधे । [गम्हड़ + ई < *गर्भ, < *गर्भिन्]

गम्हरी, गँभरी—(सं०) (१) एक प्रकार का काला धान, जो बोने के दिन से साठ दिनों में पक जाता है (पू० मं०-२) । दे०—साठी । (२) अधिक पानी होने पर फसल में लगा एक रोग [< *गर्भ, < *गह्वर]

गरँड़ी—(सं०) पानी को खेत की सतह तक ऊपर उठाने के लिए नदी-नहर आदि के जलप्रवाह के बीचोंबीच इस पार से उस पार तक बाँधा गया बाँध (द०-मुं०) । दे०—बाँध । [मिला०—गरौंड़ा]

गर—(सं०)—(१) काम में बैठ जानेवाला बैल (शाहा०, गया) । दे०—परुआ । [देशी, मिला० —गड़ < गड़ना < गर्त्त] (२) खुरपी से खेत में उगी हुई घास को अलग करना । (३) निकौनी करके खेत से निकाली हुई घास-फूस । गरदेल, (भाग०-१, द०-मु०) गर निकालल (मुहा०) = गरदेल) [उद् + गिर < √गृ = निकालना, वमन करना]

गरइ—(सं०)—एक प्रकार की मछली (सर्वत्र) । [< *गरघ्नी, गडक (संस्कृ०), गरई (हिं०), गरई माछ (बँ०)]

गरकी—(सं०)-(१) बाढ़ या अधिक पानी हो जाने के कारण की गई भूमि-कर की मुक्ति । दे०—माफ । (२) खेत के मालिक या जमींदार और बटाईदार या किसान के बीच मूल्य-निर्धारण के द्वारा उपज के बँटवारा करने की दशा में अन्न की कम उत्पत्ति होने पर उसके पूरक (भत्ता) के रूप में किसान या बटाईदार को दिया जानेवाला अनाज का अतिरिक्त अंश । (गं० द०, चंपा०) । दे०—छूट । [गरक + ई (प्र०) < गर्क (प्र०) = मग्न, डूबा हुआ, मिला०—गर वा गीर्ण (संस्कृ०) < √गृ]

गरकी परती—(सं०) खेत के मालिक या जमींदार और बटाईदार या किसान के बीच मूल्य-निर्धारण के द्वारा उपज के बँटवारा करने की दशा में अन्न की कम उत्पत्ति के लिए पूरक (भत्ता) के रूप में किसान या बटाईदार को को दिया जानेवाला अतिरिक्त अंश (द०मुं०) । दे०—छूट । [गरकी + परती; मिला०—गरकी]

गरगही—(सं०) वह रस्सी, जिसे पशुओं की गरदन में लपेटा जाता है । [गर + गही, गर <; गल, गही √ग्रह < √ग्रह्]

गरदनी—(सं०) बैलों की गरदन के चारों ओर बाँधी जानेवाली गोल रस्सी । (चंपा०, मं०, भाग०-१) । दे०—गरदाँव । [गर + दन + ई < गरदन (हिं०) < गल (संस्कृ०)]


गरदनी

गरदाँव—(सं०) बैलों की गरदन के चारों ओर बाँधी जानेवाली गोल रस्सी (प०, द० मुं०, भाग०-(१) । पर्या०—गरदनी (चंपा०, प० मं०) गरौंधा (पट०), गरदाम (चंपा०-१) । [गर + दाँव < गर + दाम < *गल + दाम]

गरदान—(सं०) (चंपा०) । दे०—गरदाँव ।

गरदानी-(सं०)(१)—कोल्हू के बैल की गरदन के चारों ओर की रस्सी, जो पगहा और कड़ी से संबंधित रहती है (चंपा०) । दे० गरदावनी । (२) बैल की गरदन के चारों ओर बाँधी जानेवाली रस्सी । [गर + दानी < गल + दामन वा < गरदन (हिं०)]

गरदाम—(सं०) गरदानी । मवेशियों के गले में बाँधी जानेवाली रस्सी । दे०—गरदाँव । [गर + दाम < गरदाम < *गलदाम]

गरदामी—(सं०)-(उ० पू० मं०)। दे०—गरदावनी। [गर+दामी<*गल+दाम]

गरदावनी—(सं०) कोल्हू के बैल की गरदन के चारों ओर बँधी हुई रस्सी, जो पगहा और कड़ी से संबंधित रहती है। पर्या०-गरदामी (उ० पू० मं०) गरदानी (चंपा०)। [गर+दावनी <गलदाम, गलदामन]

गरदेल—(मुहा०) खेत में उगी हुई घास को खुरपी से निकालकर अलग करना। दे०—गर।

गरनिकालल—(मुहा०) (दर०-१)। दे०—गरदेल [गर+निकालल]

गरहर—(सं०) दुष्ट या भगोड़े जानवर को भागने से रोकने के लिए उसके गले में बाँधा गया लकड़ी का एक टुकड़ा या पट्टा (द० भाग०, भाग (१)। दे०—ठेकर। [गर+हर। गर< गल। हर (प्र०) वा< √हृ]

गरहरुआ—(सं०) एक प्रकार की घास (चंपा-१) [मिला०-गवेधुक, गरहेड़ुआ (हि०), (बिहा०)]

गरहा—(सं०) दे०-गड़हा।

गरही—(सं०) छोटा गड़हा।

गरही खरचा—(सं०)-(द० मुं०)। दे०—गाईं खरच [गरही+खरचा (देशी<गढ़ही<गड्ढा <*गर्त; खरचा (<खर्च (फा०)]

गरौंड़ी—(सं०) पानी को खेत की सतह तक ऊपर उठाने के लिए नदी, नहर आदि के जल-प्रवाह के बीचोंबीच इस पार से उस पार तक बाँधा गया बाँध (उ० प०, पट०, गया)। दे०—बाँध। गर+औंड़ी<गंड (=चिह्न, पंक्ति)+औंडी<आड़, आर]

गरियर—(वि०) काम में बैठ जानेवाला बैल (द० प० शाहा०) दे०—परुआ। (गर+इयर <गर<गड़ना; मिला०-गर, गरियार (राज०)

गरियार--(सं०) वह बैल, जिसका रंग मटमैला हो।

गरौंधन--(सं०) घोड़े या किसी दूसरे मवेशी के के गले में बाँधी जानेवाली रस्सी। पर्या० गरदाँव, गरऔंधा (शाहा०) गरदम (उ० पू० मं०)। [गर+औंधन<गल+दामन]

गरौंधा—(सं०) बैलों की गरदन के चारों ओर बाँधी जानेवाली गोल रस्सी (पट० । दे०—गरदाँव। [गर+औंधा<*गलदाम, दामन]

गलइया मसीन—(सं०) वह मशीन, जिसमें खराब तथा गंदी चीनी को गलाकर पुनः स्वच्छ चीनी बनाने का काम होता है (री०)। [गलवया (बिहा०)+मसीन<मैशीन (अं०)

गलल-(वि०) वर्षा के कारण आहत या गला हुआ बूट अथवा कोई दूसरा अनाज (सा०) दे०—मराइल। (क्रि०) (१) पानी में किसी वस्तु का सड़ना। (२) लोहे आदि पदार्थ का पिघलना। [गल+ल (प्र०)<गरण, गलन <√गृ; <*गलति—मिला० गालयति (संस्कृ०) गलति (पा०), गलइ (प्रा०), गलुन (कश्म०) गल्नु (ने०), गलणों (कुमा०), गालिवा (असo) गला (बं०), गालिआ (ओ०)=किसी छेद से निकालना। गलना (हि०), गलणा (पं०), गलपु (सि०) गलवुं (गु०) मिला०—गालण (ल०), गालणी (मरा०)—<*गालयति (संस्कृ०)। यह रूप गलति (संस्कृ०) से भिन्न है। गलति (पा०) गड़िवा (असo)=पानी की तरह गिरना, गरा (बं०)=चूना, गड़णु (सि०), जलवुँ (गु०), गलणे (मरा०), गलनु (सिंह०)—(नेपा०)

गलावल—(क्रि०) गलल क्रि० का प्रे०। खेत की मिट्टी को जोत-कोड़कर पानी में गलाना। लोहे आदि धातुओं का पिघलाना। [गल+आवल (प्र०) <गल <गलल <गालि< √गल+ णिच् गालयति (संस्कृ०), गाले गलावेइ (प्रा०)गलाना (हि०)गलाउनु, गाल्नु (ने०), गालान (बं०), गालणु (ल०), गारणु (सि०), गालवु (गु०), गालणे (मरा०)]

गल्ला-(सं०)-(१)खलिहान में इकट्ठा किया हुआ, फसल के बोझों का, ढेर (उ० प० बिहा०, मं० २)। दे०-गाँज। (२) धनसंपत्ति, अनाज। [गल्ला(अ०)]


गल्ला

गवँई—(वि०) गाँव का। [गवँ+ई (प्र०) <गाँव<*ग्राम]

गवत-(सं०)-(१) मवेशियों का खाद्य-पदार्थ, घास, पुआल आदि(चंपा०-१, शाहा०)। (२) बथान में एक साथ बाँधकर पशुओं के खाने के लिए दिया जानेवाला चारा (गं० उ०)। पर्या०—लेहना (शाहा०, चंपा०), गौत (गया), गौतहा (पट०)। [गव+त<*गवाद <*गवाद्य, गौत, गवत, चारा (हि०), चारो (ने०), गौअत्त (दे० प्रा०), गवत (मरा०), दे०—चारा, चरी (बिहा०)]

गवतचोर—(सं०) थोड़ा खानेवाला पशु (द० प० मं०, चंपा०-१)। दे०—निखोराह। [गवत+चोर<गव+त+चोर<*गवाद+ चोर]

गवा—(सं०)—(१) धान की रोपनी शुरू करने के दिन कृषक द्वारा अपने पड़ोसियों को दिया जानेवाला भोज। पर्या०-गावा, गव (चंपा०), पहिरोपा (पट० -४)। (२) धान के बीज का उतना परिमाण, जितना एक बार में रोपा जाता है। [देशी]

गवालेल—(मुहा०) पहले दिन धान का रोपना (चंपा०)।

गवैँयाँ खरच—(सं०) जमींदारों के विषय में होनेवाला एक प्रकार का खर्च (मं०)। दे०-गाईं खरच। [गवैँयाँ+ खरच (देशी)।<गवैँयाँ< ग्राम+खरच<खर्च (फा०)]

गसवन कब्जा—(सं०) बिना अधिकारी हुए भी जमीन पर किया गया अधिकार (सा०१, चंपा०)। [गसवन+कब्जा]

गहरा—(सं०)—(१) उपजाऊ और ताकतवर मिट्टी। दे०—बरियार। (२) गड़हा, गहरा। [गम्भीर]

गहीड़—(वि०) गहरा (दर०-१)। [गम्भीर]

गहुँ—(सं०)—(चंपा०)। दे०—गहुम।

गहुम—(सं०) एक प्रसिद्ध चैती अनाज, जो श्वेत-रक्त वर्ण का होता है तथा जिसका आटा खाया जाता है (पू० बिहा०)। पर्या०—गहुँ, गेहूँ (चंपा०)। दे०—गेहूँ। [गोधूम (संस्कृ०) >गोहुमो (प्रा०) >गेहूँ (हि०)। गम (बं०), गहूँ (मरा०); घऊँ, घेऊँ (गु०); गोवी, गोधि, गोदी (कन्न०); गोदुमु, गोधुम, गोधुमतु (ते०); गोहुम, गुहुम (संता०); गहुँ (ने०); गोयम (सिंह०); गंदुम (फा०); हिन्ता, हिताह (अर०)]

गहुमन—(सं०)—(१) पीले (गेहुँए) वर्ण का पशु। दे०—पीआर। (२) एक प्रसिद्ध साँप। [गहुम+न<गहुम<गोधूम+वर्ण]

गहुमा—(सं०)—(१) रोपा जानेवाला एक प्रकार का लाल-मोटा-चिपटा धान (उ०-पू० मं०, सा०-१, दर०-१)। (२) एक प्रकार का भदई अनाज, जो उजला या लाल एवं गोल और वृन्त पर चिपटा होता है। इसका आटा या भूँजा खाया जाता है। इसका पौधा लंबा होता है और उसपर अधखिला कमल-जैसा अन्न का गुच्छा लगता है (द० भाग०)। दे०—जनेर। (३) ज्वार की जाति का एक अनाज, जो छोटे दाने तथा मटमैले रंग का होता है (द० भाग०)। दे०-बजड़ा। [गहुम+आ (प्र०) <*गोधूमक]

गाँज—(१) खलिहान में इकट्ठा किये हुये फसल के बोझों का ढेर (राशि)। पर्या०—टाल (गं० उ०, शाहा०, बिहा०), गल्ला (उ०-प० बिहा०), ढेरी (गया), कांड़, कांड़ा (चंपा०, पू०), खम्हार (द०-पू० मं०)। (२) खलिहान में अथवा कहीं अन्यत्र भी रखी हुई नेवारी या पुआल की राशि। (३) चारे के लिए काटे गये जनेरे के डंठल की राशि (प०)। पर्या०—टाल (पू०), खम्हार, कांड़ (द०-पू० मं०)। (४) खेसारी की फसल की राशि (पट०-१)। [मिला०—गञ्ज (मो० वि० डि०)]


गाँज

गाँजल (क्रि०)—गाँजना, इकट्ठा करना। [गाँज +ल<*गञ्ज (संस्कृ०) (?), गंजन(प्रा०), गंजिउ (अप०), गाँजना (हि०), गाँजिवुँ (गु०) गाँजले (मरा०)]

गाँजा—(सं०)—(१) एक प्रकार की मादक वस्तु, जो चिलम में चढ़ाकर तथा सुलगा कर पी जाती है। यह वस्तु नेपाल या राजशाही में अधिक पैदा की जाती है। इसी की जाति की भाँग भी है, जो जंगल में स्वयं होती है। (२) गाँजे

का पौधा। [देशी, मिला०—गञ्ज (संस्कृ०) =एक प्रकार का पौधा। गञ्जा (स्त्री०)= झाड़ी, मदिरालय। गंज (प्रा०), गाँजा (हि०, ने०, अस०, ने०), गंजा (ओ०), गाँजो (सि०) गाँजो (गु०), गाँजा (मरा०)]

गाँझी—(सं०) एक प्रकार की लता (दर०-१)। [मिला०—गञ्ज (संस्कृ०)=एक प्रकार का पौधा]

गाँठ—(सं०)—(१) ऊख, लकड़ी आदि का बोझा। (२) शरीर के दो पोरों को पृथक्-पृथक् करनेवाली ग्रंथि (सा०-१)। (३) किसी वस्तु को बाँधकर बनाया गया बड़ा बंडल। (४) कपड़े और रस्सी आदि में लगाई गई ग्रंथि। (५) ऊख, बाँस आदि के पोरों की ग्रंथि (मैं०-२, पट०-४, चंपा०, भाग०-१, मग०-५)। गाँठदेवल, गाँठ पारल (मुहा०) =गाँठ बाँधना। किसी बात या घटना को याद रखना। [ग्रंथि, ग्रंथ (संस्कृ०)<गंठ्ठ (प्रा०), गाँठ (हि०), गाँठि, गाँठो (ने०)]

गाँठदेवल (मुहा०)—गाँठ देना। किसी वस्तु या घटना को याद रखना।

गाँठपारल—(मुहा०) दे०—गाँठ, गाँठ देवल।

गाँड़र—(सं०)–(१) एक प्रकार की घास, जो धान की फसल को हानि पहुँचाती है (प० मैं०, पट०, मग०-५)। दे०—गड़हर। (२) एक पशु-खाद्य घास। दे०—गँड़हर। [देशी, मिला०—गवेधुक (संस्कृ०)]

गाँधी—(सं०) एक उड़नेवाला दुर्गंधयुक्त कीड़ा, जो बाल में फूल होने के पहले ही ज्वार आदि अनाज पर प्रहार करता है। पर्या०—गाँधी, गँधवा (प०, मग०-५), माँछी (उ०), गन्हवा-(चंपा०), किरौना (द०-प० शाहा०), भेमरा (द० मुं०)। [<*गंधिक, < *गंधिन् (संस्कृ०), गाँधील (मरा०)]

गाँव—(सं०) ग्राम, बस्ती। [<*ग्राम (संस्कृ०), गाम (पा०, प्रा०), गाव (रोमा०), गोम (दरदी), गाँव (हि०), गाउँ (ने०), गाउँ (कुमा०), गाम (कश्म०), गाउँ (असा०), गाँ, गाँव, गाव (बँ०, ओ०), गम, (सिंह०), ग्लम (काफि०)]

गाँव के ठाकुर—(सं०) गाँव का स्वामी, जमींदार (द०-प० शाहा०)। दे०—जिमिदार। [गाँव-के+ठाकुर (यौ०)]

गाँव के खरच—(सं०) जमींदारी के विषय में होनेवाला एक प्रकार का खर्च। दे०—गाईं-खरच। [गाँव+के+खरच (यौ०)]

गाँवघर—(सं०) पास-पड़ोस। [गाँव+घर< ग्राम+गृह]

गाँसी—(सं०) फाल को गिरने से बचाने के लिए करुमार के बदले हल की नोक और फाल के बीच में ठोकी गई पचड़ी। [देशी, मिला०—गाँसना (हि०)=पेबंद लगाना। गाँस्नु, गसिनु (ने०)=पेबंद लगाना, जोड़ना। गाँस (ने०) =पेबंद, जोड़]

गाईं—(सं०) गाँव।

गाईं खरच—(सं०) जमींदारी के विषय में होनेवाला एक प्रकार का खर्च। पर्या०—गाँव के खरच, गवैंयाँ खरच (मैं०), सालीना खरच (द०-प०-मैं०), देही खरचा (गया, पू०-मैं०), एखराजात (पट०), बन्हखरच (द० भाग०)। [गाईं+खरच, गाईं < गाँव < ग्राम; खरच <खर्च (फा०)]

गागर—(सं०) दे०—गगरी।

गागर नीमो—(सं०) दे०–घघरा लेंबो, गागल।

गागल—(सं०)–एक प्रकार का बड़ा नींबू, जिसका छिलका मोटा होता है (दर०-१, चंपा०-१, मैं०-२)। पर्या०—गागल नीमो (चंपा०, शाहा०)। [देशी]

गागल नीमो (सं०)—(चंपा०, शाहा०)। दे०—गागल।

गाछ—(सं०)–(१) मूंग या किसी दलहन का डंठल, जिसे दौनी करके भूसा बनाया जाता है (द०-प० मैं०)। दे०—सँगरा। २–अरहर या दूसरे दलहनों का अंकुर या डंठल (उ०-पू०)। दे०—डिम्भी। (३) आम, कटहल आदि फलों का वृक्ष। [<*गच्छ (संस्कृ०), गच्छ (पा०), गाछ (हि०), गच्छी (शिना०–दरदी), गाछ (बँ०), गस (सिंह०), गाछ (ने०)]

गाछी—(सं०)-(१) वह स्थान, जहाँ आम, अमरूद, कटहल आदि के पेड़ लगाये गये हों। दे०—

बगैचा। (२) (मैं०)। दे०—आम के बगैचा। (३) बीज की क्यारी (बिड़ार) से रोपने के लिए उखाड़ा गया बीजों का पौधा। दे०—बीया। (४) भूमि पर उगा हुआ पहला अंकुर (उ०-पू० मैं०, मैं०-२)। दे०—डिम्भी। [गाछ+ई (अल्पा० प्र०) < *गच्छ]

गाजड़—(सं०) मूली की जाति का एक प्रकार का मीठा कंद, जो कच्चा और पकाकर, दोनों प्रकार से खाया जाता है (द०-प० शाहा०, मैं०, मग०-५)। दे०—गजड़ा। [< *गर्जर]

गाजर—(सं०)—(१) एक प्रकार की कपास, जो घर के पास बारी में उपजती है, न कि खेत में (उ०-पू० मैं०, शाहा०)। (२) दे०—गजड़ा, गाजड़, गजरा। [मिला०—गर्जर]

गाड़ल—(क्रि०) गाड़ना। [गाड़+ल (प्र०) <गाड़<*गर्त्त (संस्कृ०), गड्डु, गड (प्रा०)=छेद, गड़हा। गाड़ना (हि०), गाड़्नु (ने०), गाड़ा (बँ०), गाड़ (ओ०)=गड्ढा, गड्डणा (पं०)=बोना, गड्डण (ल०), गाड़उँ (गु०), गाड़णे (मरा०)]

गाड़ा—(सं०)—(१) ऊख रोपने के पहले बीज रखने का गड्ढा (शाहा०)। दे०—खाद। (२) पशुओं का एक रोग। इस रोग के कारण पशुओं के सींगों की जड़ में कोंपड़ निकलने लगती है (सा०-१, मैं०-२)। पर्या०—परत, कोंपड़। [गाड़ा, गड्ढा< गर्त्त वा कर्ष] (३) बैलगाड़ी (प०, चंपा०-१)। [गाड़+आ<गड्डु <*गान्त्र, गन्त्री]

गाड़ी—(सं०) गाड़ी, बैलगाड़ी। पर्या०—गड़ी, गाड़ा =बड़ी गाड़ी, गरी। [गाड़ी< *गान्त्र, गन्त्री (संस्कृ०), गड्डी (देशी प्रा०) गोड़ी (कश्मी०), गाड़ी (हि०, बँ, ओ०), गड्डु, गड्डी (पं०), गड्डु (ल०), गाड़ो (सि०), गाड़ी (मरा०, गु०)। टर्नर के अनुसार 'गाड़ी का सम्बन्ध <*गर्त्त (ऊँचा स्थान) से नहीं है, बल्कि <*गड्डु (=गाड़ना) से है।'—(नेपा०)। किंतु गाड़ी की व्युत्पत्ति< गन्त्र, गन्त्री या गन्त्रिका या से भी संभव है। दे०—गन्त्री=गाड़ी—हर्ष, अमर०]

गाढ़—(सं०) घनी बोआई। दे०—घन। (वि०) गाढ़ी वस्तु। [गाढ]

गाढ़ा—(सं०)—(१) दे०—घन। (२) घना, गाढ़ा। [गाढ]

गात—(सं०) एक प्रकार की घास की रस्सी, जो बोझा बाँधने के काम में आती है (शाहा०)। दे०—गतान। [दे०—गतान]

गाता—(सं०)—(१) (द० मुं०)। दे०—गैंता। (२) ताड़ के लंबे बल्ले या किसी दूसरी लंबी भारी वस्तु को दूसरी जगह पर ले जाने के लिए उसमें बँधी रस्सी के साथ लगाया गया बाँस का टुकड़ा। [देशी, मिला०—खनित्रक* >खन्ता, खइंता>गैंता>गाता]

गाद—(सं०) नीची जमीन (द० मुं०)। [गर्त्त, खात]

गाद, गादा—(सं०)—(१) मटर की अधपकी छीमी। (२) अधपके मटर की बनी दाल। (३) किसी तरल वस्तु की निचली सतह में बैठा हुआ मोटा अंश। [<*खाद्य (?)]

गादर—(सं०) भोजन के लिए काटा हुआ कच्चा अनाज (द० मुं०, चंपा०)। दे०—गदरा। [गाद+र <* खाद्य (?)]

गादा, गद्दा—(सं०)-(१) दे०—गदरा। (२) (क) मटर की अधपकी छीमी। (ख) अधपके मटर की बनी दाल (शाहा०)। (३) पटुए और सन के ऊपर का हरा पत्ता। [< *खाद्य]

गादा, गाद—(सं०) दे०—गाद, गादा।

गादुर—(सं०) चना और मटर में लगनेवाल एक कीड़ा (द०-प० शाहा०)। [देशी]

गाभा—(सं०) (चंपा०, मैं०-२)। दे०—गब्भा।

गाभिन—(वि०) गर्भिणी गाय आदि। [गाभ+ इन< *गर्भिणी< गर्भ, गब्भिनी (पा०), गब्भिणी (प्रा०), गाभिन (हि०), गाभिनि (ने०), गभिनि (कश्म०), खब्नी (रोम०), गाभिण (कुमा०), गाभिनि (असा०), गाभिन (बँ०), गब्भण (पं०), गब्भन (ल०), गभिणी (सि०), गाभन (मरा०, गु०)]

गाय—(सं०) दूध देनेवाली, सींग, पूँछ और सास्ना (गलकंबल) से युक्त एक मादा मवेशी, गौ।

बैल का स्त्री० । पर्या०—गउ, गोरू (चंपा०), गैया । [< *गो (सांख्य), गव, गौ (पा०, प्रा०), गाय, गौ, गउ (हि०), गौ, गउ (पं०), गौं (ल०), गउँ (सि०), गौ (मरा०, गु०)] महर्षि पतंजलि के अनुसार 'गो' शब्द के बहुत-से अपभ्रंश रूप हैं यथा—गावी, गोणी, गोता, गोपोतलिका आदि]

गाय-गोरू—(सं०) भैंस को छोड़ शेष सींगवाले पालतू पशु । दे०—गोरू । [गाय+गोरू (अनुवा०)< गो]

गार—(सं०) जमीन की वह ऊँचाई, जहाँ तक करीन आदि से पानी नीचे से ऊपर की ओर उठाया जाता है (उ०-प० मुं०) । दे०—बोदर । [देशी]

गावा—(सं०)-(१) दे०—गवा ; (२) एक बार में रोपे जानेवाले धान के पौधों का समूह (चंपा०-१) । [देशी, मिला०—ग्राम (=गाँव, समूह), गर्भ]

गावा-पखार—(सं०) रोपनी समाप्त होने पर गृहस्थ के घर पर मजदूरिनों द्वारा किया जानेवाला एक उत्सव, जिसमें गृहस्थ के शरीर पर मजदूरिनें कीचड़ उछालती हैं और द्वार पर पहले से रखे हुए, उलटी टोकरी पर जलपूर्ण कलश की, गीत गाती हुई, प्रदक्षिणा करती हैं और अंत में घर की मालकिनों द्वारा दिये हुए सिन्दूर और तेल लगाती हैं एवं भींगे हुए चने की अंकुरी का प्रसाद लेकर घर जाती हैं (चंपा०, मुं०-२) । [गावा+पखार । दे०—गावा; पखार< पखारल< *प्रक्षाल]

गाविस—(सं०) एक तरह की मिट्टी । कुम्हार इसे बरतन रँगने के काम में लाते हैं (चंपा०-१, मुं०-२) । [देशी, मिला०—कपिश]

गाही—(सं०) पाँच वस्तुओं की एक इकाई (चंपा०, मग०-५, मुं०-२, भाग०-१, पट०-४, शाह०) । [देशी, संभ०< *गाथा वा*गाथिन्]

गिड़ायल—(क्रि०) ऊख के पौधे में ग्रन्थि का लगना (प० मुं०) । दे०—पोर । [गिड़ायल< गिरहानल< *ग्रंथि]

गिरई—(सं०) किसीसे रुपये लेकर उसके बदले में उसके पास जमीन, गहने आदि रखना (शाहा०) । दे०—गिरवी, रेहन । [गिरवी]

गिरथ—(सं०) दे०—गिरहथ ।

गिरदा—(सं०)-(पट०) । दे०—खपड़ा ।

गिरदौंय—(सं०)-(मग०-५) । दे०–गरदावनी ।

गिरल—(क्रि०)-(१) हवा या किसी और कारण से फसल अथवा आम आदि फलों का जमीन पर गिरना । (२) किसी ऊँची जगह से किसी वस्तु अथवा व्यक्ति का गिरना । (वि०) हवा के कारण भूमि पर गिरी हुई फसल, फल आदि । पर्या०—खसल । [गिर+ल (प्र०) < गिर, गिरना (हि०) (संभ०) < √गृ (=गिरति), टर्नर महोदय के अनुसार (१) गिर्नु (ने०), गिर्णो (कुमा०), गिरना (हि०), गिड़ना, गिडाउना (पं०) और वर्ण-व्यत्यय के साथ डिग्गा (पं०), डिगना (हि०)< *गिड्ड, (२) गडति (संस्कृ०), गलति (पा०)=गिरता है । गडिबा (असं०), गड़प (सि०) और संभ० गड़ना (हि०) भी (यदि< *गड्ड नहीं माना जाय) और गडवुँ (गु०), गड़णो (मरा०) (३) गलति (संस्कृ०) गिरता है, गलई (प्रा०) गलिबा (ओ०), गलना, (हि०), गलणा (पं०), गलवुँ (गु०), गलणे (मरा०) ये रूप गेले (मारोप० व श्रुति से मिलते-जुलते हैं)

गिरस्त—(सं०) दे०—गिरहथ ।

गिरह—(सं०)—(मग०-५) । दे०—गिरे ।

गिरहथ—(सं०) गृहस्थ, जमीन का मालिक (बर०-१, चंपा०, मुं०-२, मग०-५) । पर्या०—गिरथ, गिरस्त, गिरहस्त, गिरहथिन (स्त्री०) । [गिरह+थ, गिर+हथ< गृहस्थ]

गिरहथिन-(सं०) गिरहथ की स्त्री । दे०–गिरहथ ।

गिरहस्त—(सं०)—दे०—गिरहथ ।

गिरावल—(क्रि०) गिरल क्रि० का प्रे० । गिराना । [गिर+आवल (प्र०)< गिरल, दे०—गिरल]

गिरे, गिरेह—(सं०)—(१) ऊख की ग्रंथि या गाँठ । (२)–बाँस आदि लंबे पौधों की गाँठ । दे०–पोर । [गिरे< गिरह< *ग्रन्थि]

गिरेह, गिरे—(सं०) । दे०–गिरे या पोर ।

गिलंदाजी—(सं०) काटी हुई भूमि और कुएँ की गहराई की नाप के लिए प्रयुक्त एक हाथ का परिमाण (द०-पू०, मग०-५) । दे०–तरहा । [फा०]

गिलंदाजी मिट्टी—(सं०) सिंचाई के समय खेत की मेड़ों पर दी गई मिट्टी ।

गींगट—(सं०)—(द०-पू०) । दे०–कंकड़ । [दे०-कंकड़]

गुँजेरा—(सं०) एक प्रकार की घास, जिसे पशु खाते हैं (द०-प० शाहा०) । [देशी]

गुंड—(सं०) दलहन की कटी फसल का एक निश्चित परिमाण (बंडल), अंटिया-(पट०) । [मिला०-गुंड, गुंठ वा गुड =गोलक, पुलिंदा]

गुँड़ा—(सं०)—(१)चावल छाँटने पर उससे निकली महीन भूसी, जो गाय, बैल आदि का पुष्ट भोजन है (मुं०-१, अन्यत्र भी) । (२)–चावल, आदि मकई के भूँजे को चूरकर बनाया गया चूर्ण । 'गुंडा खाय, भुसंडा होय ।'=गुंडा (भूसा आदि या कदन्न) खाय और मोटा-ताजा हो जाय । [कूट, गुंडक=धूलिचूर्ण (मो० वि० डि०)]

गुंडा—(सं०) दे०–गुँड़ा । पर्या०— कुंडा ।

गुंडी—(सं०)—(१)–अनाज ओसाने के समय हवा से उड़ा हुआ महीन भूसा (चंपा०, द०-पू० बिहा०, मग०-५) । दे०—पंभी । (२) काते हुए सूत का एक परिमित लच्छा । [गुंडी< *गुंड, गुड]

गुंडो—(सं०) छाँटने पर निकला हुआ अनाज (विशेषकर चावल) के ऊपर का महीन छिलका (द० भाग०, चंपा०) । दे०—भूसा, गुंडा । पर्या०—गुड़ा (बर०-१) । [कूट वा गुण्डक =चूर्ण, धूलि (मो० वि० डि०)]

गुआ—(सं०) गोबर की खाद । [गुआ< * गोमय]

गुआ पटायल—(मुहा०) खाद देना, खासकर गोबर की खाद देना (बर०-१) । [गुआ+पटायल, गुआ< गोआ< गोवा< गोबर< * गोमल, *गोमय; पटायल (देशी)]

गुजराँति—(सं०)-(मुं०-२) । दे०–गुजराती ।

गुजराती—(सं०) लंबे थन, विशाल देह और ऐंठे हुए गोल सींगोंवाली काले रंग की भैंस (बर०-१, चंपा-१) । पर्या०—गुजराति (मुं०-२) । (वि०) गुजरात-प्रदेश-संबंधी । [गुजरात+ई (प्र०), गुजरात< गुजर+आत वा गुजर+रात< गुर्जर*+राष्ट्र; आवर्त्त वा < गुर्जरत्रा]



गुजराती

गुजरुआ—(सं०) ऊख के कोल्हू की पेंदी में रस चूने के लिए काटी हुई नाली (द०-प० शाहा०) । दे०—नरदोह । [गुज्जर+उआ, (देशी)]

गुड़—(सं०)-(१) पुआल का बड़ा बोझा, जो लपेटकर बाँधा जाता है (चंपा०-१, मुं०-२, पू० मुं०) । [गुड (संस्कृ०)=बंडल, बोझ (मो० वि० डि०)] (२)–गूड़ । दे०—गुर [गुड]

गुड़मी—(सं०) एक प्रकार का बरसाती फल, जो मकई आदि के खेत में होता है (बर०-१) । पर्या०—गुरम्ही (मग०-५) । [देशी]

गुड़रा—(सं०) रोपा जानेवाला एक प्रकार का धान (गया) । [मिला० गुंडाला, गुडाला = एक प्रकार का पौधा (मो० वि० डि०)]

गुड़ौर—(सं०) गुड़ बनाने का घर (सा०-१) । पर्या०—गोलौर (शाहा०), कोल्हुआर, कोल्सार । [गुड़+और< गुड़+उल< *गुड+कुल वा गुड़+गृह* > गुड़+घरु> गुड़+अरु> गुड़+और> गुड़ौर]

गुढ़ी—(सं०)—(१) रोपे जानेवाले छोटे पेड़ों की जड़ में मिट्टी को बाँध रखने के लिए चारों ओर लिपटाई गई रस्सी (द० शाहा०, गया) । दे०-मोजर । (२) पानी में होनेवाली एक घास (मुं०-२) । [<√गुण्ड =घेरना, लपेटना]



गुढ़ी

गुदर—(सं०)—दे०—गुदरी ।

गुदरी—(सं०)-(१) संठी से निकाल लेने के बाद सन के रेशों में बचा रह गया छोटा-छोटा डंठल (पू० मुं०) । दे०—गूदर । (२) फटे-चिथड़े और कपड़ों को सीकर बनाया गया बिछावन । (३) फटे-चिथड़े । [देशी]

गुदस्तादार—(सं०) शाहाबाद जिले में गंगा के दक्षिणी तट पर रहनेवाला काश्तकारों का एक वर्ग । पर्या०—गुदस्तादार । टि०—यह काश्तकारों का ही एक वर्ग है, इसमें राजपूत और ब्राह्मण हैं । इनके पूर्वजों ने देश को जीता था और ये लोग जमींदारों के अधीन रहकर

उनके लिए लड़ने-भिड़ने को सदा प्रस्तुत रहते थे, इसीलिए इनकी स्थिति ऊँची मानी गई है।

गुदस्ता भूमि सदा के लिए एक निश्चित कर पर बंदोबस्त कर दी गई है (यद्यपि कुछ जमींदार ऐसा नहीं मानते) और जमींदार की स्वीकृति के बिना ही बेची-खरीदी जा सकती है। यह एक प्रकार से सदा के लिए निजी संपत्ति होती है। यद्यपि इस भूमि के स्वामी इसे मुश्किल से बेचते हैं। ये काश्तकार सुखी एवं सम्पन्न होते हैं और सेना में भी बहुतायत से भर्ती होते हैं। [गुदश्ता+दार (प्र०) <गुज़श्ता (उर्दू)<गुजाश्त (फ़ा०)=दान की हुई या कर-मुक्त भूमि]

गुद्स्तादार—(सं०) दे०—गुदश्तादार। [गुदस्ता+दार<गुज़ाश्त (फ़ा०)]

गुदार—(सं०)—(१) फसल काटने की मजदूरी (सा०, मग०-१)। दे०—दिनौरा। [देशी, (संभ०)<गुजार<गुज़रः (फ़ा०)] टि०—कटी हुई फसल की २१ गाही पर १ गाही की निश्चित मजदूरी दी जाती है (मग०-५)। (२) काटनेवाले श्रमिक को प्रति बोझा एक आँटी दे देने पर बचा हुआ बोझे का अंश (शाहा०)। टि०—आँटी का परिमाण सर्वत्र एक-सा निश्चित नहीं है। यथा—अगली लोकोक्ति से स्पष्ट है:—'कोढ़ि कटनिहार कें, मुंगर सन आँटी।'—(आलसी) कटनिहार अपने लिए मुंगर (मुद्गर)-जैसी मोटी आँटी बाँधता है। [देशी]

गुदारा—(सं०) फसल काटने की मजदूरी (गया)। दे०—दिनौरा। [गुदारा<गुजारा<गुजारः (फ़ा०)]

गुनल—(क्रि०) गुनना, गणना करना, रस्सी का बँटना। (वि०) गुनी हुई, बँटी हुई। [गुन+ल<*गुण (=गुणयति)]

गुना—(सं०)(१) गुणा, गणित का एक भेद। (२) रस्सी के बाँटने में पड़नेवाली ऐंठन। [गुना<*गुण, *गुणक (संस्कृ०), गुण (पा०, प्रा०), गोन (दर०) गुणी (शिना०), गोनु (कश्मी०), गुणा (प० पहा०), गना (ने०), गुणा (अस०), गुणा (बं, ओ०), गुना, गन (हिं०), गुण (पं०), गणु (सि०), गुण (गु०, मरा०)]

गुमटी बाबू—(सं०) चीनी-मिल का एक कर्मचारी, जिसके हस्ताक्षर के बिना ऊख की पुर्जी का रुपया किसान को नहीं मिलता है (बिह०, री०, हरि०)। टि०—जब ऊख तौलवाकर एक कर्मचारी ऊख का परिमाण लिखकर पुर्जी ऊख लानेवाले किसान या गाड़ीवान को दे देता है, तो वह किसान या गाड़ीवान उस पुर्जी को लेकर गुमटी बाबू के पास जाता है; वह उसपर अपना हस्ताक्षर कर देता है। यदि उसे संदेह हो जाय, तो वह पुनः उस गाड़ी की तौल कराता है और पहली पुर्जी से उसका मिलान करता है, जिससे कि तौल में कमी-वेशी न हो। [गुमटी+बाबू]

गुमल—(क्रि०)-(१)—डंठल के साथ फसल की बाल रख देने पर कुछ दिनों के बाद सूखकर दानों का स्वयं छूटना या उस बाल का मुलायम हो जाना (सा०-१, चंपा०-१, मैं०-२, पू० मैं०)। (२) पाल पर रखने के बाद आम आदि का और धुआँ देने पर केले आदि का पकना। [गुम +ल; गुमक्का (देशी)=भूसी से दाना अलग करने का काम (हिं० श० सा०)]

गुमसल (क्रि०)—(१) भींगे हुए अन्न की, समुचित हवा और धूप नहीं पाने पर, सड़ने के पूर्व की स्थिति (चंपा०-१ मग०-५, पट०-४, मैं०-२, भाग०-२)। (२)-(वि०) गुमसी हुई (गुमल) वस्तु। [गुमस+ल (प्र०)<*ग्रीष्म (?)]

गुमसावल—(क्रि०) गुमसल क्रि० का प्रे०। गुमसाना।

गुमावल—(क्रि०) गुमल क्रि० का प्रे०। गुमाना।

गुमास्ता—(सं०) किसी जमींदार या महाजन का कर्मचारी, जो घूम-घूमकर जमींदारी या महाजनी का तकाजा और काम देखा करता है (सा०-१)। [(फ़ा०), गुमास्ता (हिं०), गुमास्ता (ने०)]

गुम्मा—(सं०) दे०—गुमा और गूमा।

गुर, गूर—(सं०) ऊख के रस को पकाकर तैयार किया गया दानेदार ठोस पदार्थ। पर्या०—गुड़ा। [गुड] टि०—गुड़ कहीं राव और कहीं चक्की के रूप में होता है, खाने-पीने के

लिए इसकी छोटी-छोटी भेली भी बनाई जाती है। भेली को मगही में 'अदरखी' भी कहते हैं; क्योंकि इसमें स्वाद के लिए प्रायः अदरक मिलाई जाती है।

गुरचलना—(सं०) अन्न साफ करने की चलनी (उ०-पू० मैं०)। दे०—चलना। [गुर+चलना]

गुरद्न—(सं०) ऊख के उबाले हुए रस को ठंडा करने के लिए लकड़ी या लोहे की बनी चम्मच (शाहा०)। दे०—तामिया। [गुर+दन<*गुड]

गुरद्म—(सं०) लकड़ी की बनी छोलनी, जिससे ऊख का रस या गुड़ चलाया जाता है (सा०-१)। पर्या०—गुरद्न। [गुर+दम<*गुड (?)]


गुरदम

गुरदेल—(सं०) धनुष के आकार की बनी चीज, जिसकी प्रत्यंचा दो रस्सियों की बनी रहती है और बीच में दोनों रस्सियों को थोड़ी दूर तक एक-दूसरे में बुनकर एक स्थान बनाया जाता है, ताकि उस पर गोली रखी जा सके। यह खेतों से चिड़ियाँ आदि भगाने और मारने के काम में आता है। इसकी गोली मिट्टी की बनी होती है (चंपा०-१, भाग०-१, मैं०-२)। पर्या०—गुलेल। [देशी, दे०—गुलेल]

गुरधवल—(वि०) फल का पकना शुरू होना और मीठा होना (शाहा०-१)। [गुरधव+ल (प्र०) <गुणाधार, गुणाधान, गुणाढ्य, गुणाढ्य (?)]

गुरपोर—(सं०) मिट्टी का बड़ा बरतन, जिसमें जम जाने के बाद गुड़ रखा जाता है (मैं०)। दे०—माट। [गुर+पोर∠गुड+पात्र (?)]

गुरमिआ—(सं०) एक प्रकार का परवल, जो गोल और छोटा होता है (चंपा०-१)। [गुरमि+आ (प्र०) <गुर्मा (देशी०)]

गुरला—(सं०) करीब एक हाथ लंबा, खास कर इमली की लकड़ी का बना टुकड़ा, जो ढेंकुल (लाठा) के बाँस में दोनों कनखियों के बीच में लगा रहता है। इसके बिना ढेंकुल नहीं चल सकती है। घुरकिल्ली (सा०-१)। [देशी]

गुरहंडी—(सं०) गुड़ रखने का माट (द० भाग०)। दे० -हौद। [गुर+हंडी <गुड़+हंड (क)]

गुरही—(सं०)—(१) एक प्रकार का धान (चंपा०-१)। [गुरु वा गुर<गुड] (२) फसल के बोझे को बाँधने के लिए किसी घास की ऐंठी हुई रस्सी (शाहा०)। [गुर+ही<*गुण]

गुरीच—(सं०) एक प्रकार की लता, जिससे औषध बनाया जाता है। [गुड्चो]

गुरुच—(सं०) दे०—गुरीच।

गुर्म्ही—(सं०)—(मग० ५)। दे०—गुड़मी।

गुलजाफरि—(सं०) एक प्रकार का फूल (दर०-१)। [गुल+जाफरि (फ़ा०)]

गुलजामु—(सं०) एक प्रकार का फल (दर०-१)। [गुल+जामु<गुल (फ़ा०) +जामु<जामुन=जंबू]

गुलजामुन—(सं०)-(१) एक प्रकार के फल का वृक्ष। इसका फल गोल और मीठा होता है (पट०-१)। (२) जामुन का एक भेद, जिसका फल अपेक्षाकृत बड़ा, रसदार और मीठा होता है (मिला०—कठजामुन)। (३) एक प्रकार की मिठाई। [गुल, गुलाब (फ़ा०) + जामुन<*जम्बू]

गुलदाउदी—(सं०) एक प्रकार का फूल, जिसका पौधा छोटा तथा फूल गुच्छेदार होता है (मग०-५)।

गुलदावरी—(सं०) एक प्रकार का फूल (दर०-१)। [(गुल+दावरी (फ़ा०)]

गुलफा—(सं०) एक प्रकार का साग (मैं०-२)। [देशी, मिला०—गुल्फ]

गुलमिरिच, गोलमरिच—(सं०) एक प्रसिद्ध तीती, काली फली, जो मसाले में प्रयुक्त होती है, काली मिर्च। दे०—मिरिच। [गुल+मिरिच <*गोल+मरीच]

गुलाइँची—(सं०) एक प्रकार का फूल। दे०—गुलैंची। [गुल+चीन (फ़ा०)]

गुलाब—(सं०) एक प्रसिद्ध फूल, जो लाल और गुलाबी रंग का होता है। फूल के वृन्त में और

पौधों में काँटे होते हैं । [गुलाब (हिं०), गुलाफ (ने०) (फा०)]

गुलाब मखमल—(सं०) एक प्रकार का धान (चंपा०-१)। [गुलाब+मखमल]

गुलाबी—(सं०) गुलाबी रंग । (वि०) गुलाबी रंग की वस्तु ।

गुलाबी पोई—(सं०) एक प्रकार की लता। इसका पत्ता लाल रंग का होता है तथा इसका साग बनता है (पट०-१) । [गुलाबी+पोई]

गुलेल-(सं०)-(१)दे०-गुरदेल। (२) दो रस्सियों के योग से बनी हुई वस्तु, जिसपर ढेला रखकर फेंका जाता है (द० भाग०, द० मुं०, मग०-५, मैं०-२, चंपा०) । दे०—ढेलमास । [देशी, (संभ०)—गुल +एल<गुल <*गलिक=(ढेला, छोटा टुकड़ा, गोली)एल<√ईर (फेंकना), गुलगुँछ (देशी०)=ऊपर फेंकना, गुलुच्छ (देशी)=घुमाया हुआ (पा०स०म०), गुलेल, गुलैस (हिं०), गुलेलि (ने०), गोलेल (कुमा०), गुलेल, गुलेला (पं०), गुलेलि, गुलेलो (सिं०)<*गोल+इल्ल (?) अथवा गँ, ल के साथ उधार, वा गुलूले (फा०) या गोली से प्रभावित—(नेपा०)]

गुलेती—(सं०) धनुष-जैसी बनी हुई वस्तु, जिसमें दो प्रत्यंचा समानांतर रूप में लगी रहती है और दोनों के बीच में थोड़ा-सा सूत से बुना रहता है, जिसपर मिट्टी की छोटी गोली रख-कर चलाया जाता है (द० मुं०, द० भाग०) । [देशी, (संभ०), गुल+एती<गुलिक<√ईर]

गुलैंच—(सं०) एक प्रकार का फूल (बर०-१) । [गुल+ऐंच<गुलचीन (फ़ा०)]

गुल्लरि—(सं०) एक प्रकार का फल, गूलर (बर०-१, मैं०—२) । [गुल्लर<गूलर]

गुल्ला, गुल्ली—(सं०)—(१) ऊख आदि का उतना बड़ा टुकड़ा, जो मुँह में चूसने के लिए लिया जाता है । (द० मुं०, भाग-१, चंपा०, आज०) । (२) ऊख के दो पोरों के बीच का भाग (मग०-५) । [<*गुलिक (संस्कृ०), <*गुल्म (संस्कृ०)>गुल्ल (प्रा०)]

गुल्ली—(सं०)—(१) लकड़ी की कील या खूँटी, जिससे कुएँ में लटकनेवाली रस्सी में मोट बाँधा जाता है । दे०—किल्ली । (२)—(शाहा०) । दे०—गँड़ा । (३) कूँड़ में आर-पार लगी हुई हुई फट्टी, जिसमें रस्सी बाँधी जाती है । दे०—किल्ली । (४) - (पट०) । दे०—खूँटा । [देशी, मिला०—गुलिक] (५) दे०—गुल्ला, गुल्ली । (६) बच्चों के 'गुल्ली-डंडा' खेल में प्रयुक्त होनेवाला ३ इंच का लकड़ी का टुकड़ा, जिसे डेढ़ फुट के डंडे से दूर फेंकते हैं । [दे०—गुल्ला]

गुल्ली, गुल्ला—(सं०) । दे०—गुल्ला, गुल्ली ।

गुहौरि—(सं०)-(१) एक लत्ती विशेष (चंपा०-१, बर०-१) । (२) आँख की एक बीमारी, जिसमें आँख के कोनों पर फुन्सी हो जाया करती है । [देशी, <*ग्रीष्मवटी]

गूँड़ा—(सं०)—(गया, मग०-५) । दे०—गुंडा । [<गुण्ड, <*गुंडक=धूलि, चूर्ण

गूंडी—(सं०)-(चंपा०, द०-पू० बिहा०) । दे०—गुंडी और पंभी । [गूंड+ई<*गूंडक]

गूदरी—(सं०) संठी से निकालने के बाद सन के रेशों में बचा रह गया छोटा-छोटा डंठल (उ०-पू० मैं०, मग०-५) । पर्या०—खुदर (प०, प० मैं०), कुदारी—उ०-पू० मैं०), गुदर, गुदरी (पू०मैं०) । [देशी]

गूमा—(सं०)-(१) एक प्रकार का प्रसिद्ध पौधा, जिसके फल के ऊपर उजला फूल रहता है (चंपा०-१) । पर्या०—गुम्मा (भाग०-१) । (२) नमी के कारण विकृत अन्न, जिसमें एक प्रकार की सड़ी-जैसी गंध और बुरा स्वाद आ जाता है (मग०-५) । [देशी, मिला०—गुल्म]

गूर, गुर (सं०)—ऊख के रस से तैयार किया गया दानेदार ठोस मीठा पदार्थ । पर्या०—गुड़, गूड़ । [<*गुड, (संस्कृ०), गुड, गुल (प्रा०), गूड़, गुड़ (हिं०), गुड़ (ने०), गूल (मरा०), गुर (बं० ओ०), गुरु (सिं०), गोल (गु०), गोर (कश्मी०)]

गूलर—(सं०) दे०—गूलरि ।

गूलरि—(सं०) एक प्रसिद्ध फल, जिसमें सैकड़ों बीज होते हैं और पकने के साथ-साथ कीड़े

भी होते हैं । कच्चे की तरकारी भी होती है । पर्या०—गुल्लर, गूलर, डुम्मर (भाग-१) । [गूलर (संस्कृ०), गूलर (हिं०), गल्लर (ने०), गुल्लर (पं०), गुलर, गुलेर, गुलरी (गु०)]

गेंठा—(सं०)—(१) पशुओं के बाँधने की रस्सी (द०भाग०) । दे०—पगहा । (२) ढोरों के बाँधने की घुंडीदार रस्सी (मुं०-१) । [<ग्रंथिक, <ग्रंथक]

गेंठी-(सं०) एक प्रकार की लता (बर०-१)। [देशी]

गेंड़—(सं०)—(१) ऊख के ऊपर का पत्तियों-सहित भाग (द०-प० शाहा०) । (२) चारे के लिए काटा गया ऊपर का हरा भाग (चंपा०-शाहा०)। दे०-अगेंड़। (३) चीनी मिल में डाले जाने के लिए काटा गया ऊख का टुकड़ा (हरि०)। पर्या०—गेंड़ी, पगाड़ (रो०) । [<*अंगेरक <*अग्रकांड, गंड (संस्कृ०)=जोड़, गंड (पा०)=डंठल, गंड (प्रा०)=ऊख का पोर, गोंड़ा (हिं०), गन्ना (हि०, पं०)=ऊख, गन्नो (सि०)=ज्वार की मीठी डाँटी]

गेंड़छीला—(सं०)—(शाहा०) । दे०-अंगेड़ीहा । [गेंड़+छीला<अंगेरक वा अग्रकांड+छीला, छिलना (हि०) <श्लक्ष्ण]

गेंड़ल—(क्रि०) -(१) गेड़ना, पानी आदि को रोकने के लिए बाँध बाँधना । (२) किसी स्थान या वस्तु की सुरक्षा के लिए घेरना। [गेंड़+ल (प्र०) <गेंड़<*गंड, खंड]

गेंड़वहिया—(सं०)-(उ०-प०) । दे०— अंगेड़ीहा । [गेंड़+वहिया<*अंगेरक<*गंड, <अग्रकांड+वहिया (देशी)]

गेंड़वाही—(सं०)-(१) धान की खेती में मेड़ के टूटने पर उसकी पुनः मरम्मत करने की प्रक्रिया (मग० ५) । (२) ऊख को काटने और उसकी पत्तियों को छीलने की प्रक्रिया (चंपा०) ।

गेंड़ा करल—(क्रि०) ऊख का टुकड़ा करना (उ०-प०) । दे० —छोलल। [गेंड़ा+कर+ल (प्र०) <*अंगेरक, <*अग्रकांड+करल, करना (हि०) <√कृ]

गेंड़ा, गेंड़ी—(सं०) बीज के लिए काटा गया ऊख का टुकड़ा (प०) । पर्या०—गेंड़ी (चंपा०), टोना, टोनी (पू०,मग०-५), गुल्ली (शाहा०, मग०-५), पोंहड़ा (पट०, मग०-५, पट०-१), बीहन (दर०, भाग०, मग०-५)। [<*खंड, गंड, <*अंगेरक, <अग्रकांड, <*ग्रंथि]—

गेंड़ारी—(सं०)—(गया) । दे०—कियारी । [गेंड़+आरी <*खंड, <गंड]

गेंड़ावल—(क्रि०) गेंड़ल क्रि० की प्रे० । गेंड़-वाना, घेरवाना । दे०—गेंड़ल ।

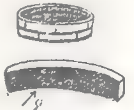
गेंड़िकाटा—(सं०)—(प०) । दे०—कानू । [गेंड़ि+काटा<*खंड, <*ग्रंथि, <अंगेरक, <*कांड, काटा ≤ काटल (बिहा०), काटना (हि०) <√कृत]

गेंड़ियार—(सं०)-(१) कोल्हू के लिए ऊख के टुकड़े काटे जाने का घर या स्थान । पर्या०—गेंड़ियारी (प०), टोनियारी (पू०), टोनियासी (उ०-प०मैं०), टोनखाद (द० भाग०) । (२) दे०—गेंड़ियारी २) । [गेंड़+इयार <*कांड, <*ग्रंथि, <*खंड,<*अंगेरक <*गंड] ।

गेंड़ियारी—(सं०) (१)—(प०) । दे०-गेंड़ियार । (२) ऊख काटने (टोना करने) के पहले उसे रखने के लिए बना हुआ गड्ढा । पर्या०—गेंड़ियार (प०) । [गेंड़+इयार+ई <*खंड,ग्रंथि, कांड; इयारी (प्र०)<केदार]

गेंड़ी, गेंड़ा—(सं०)-(१)-(प०, बिह०, हरि०) दे०—गेंड़ा । (२) कोल्हू में डालने के लिए काटी हुई ऊख की टुकड़ियाँ । आजकल लोहे के कोल्हू होने पर समूचा ऊख कोल्हू में लगाया जाता है, न कि काटकर (प०, पू०मैं०, चंपा०, मग०-५, मैं०-२, आज०) । पर्या०—टोनी (पट०, गया, पू०), अंगारी (द०-प० शाहा०) । (३) चीनी-मिल में डालने के लिए काटी गई ऊख की टुकड़ियाँ (रो०, बिह०, हरि०) । [गेंड़+ई<*खंड, <*कांड, <*ग्रंथि, गंड]

गेंड़ आवा—(सं०) कुएँ की दीवाल को बनाने के लिए प्रयुक्त वह ईंट, जिसका एक मुख छोटा और दूसरा चौड़ा होता है (चंपा०, मग०-५, मैं०-५)। दे०—सुरजमुखी ।



गेंड़ आवा

[देशी, मिला०—गंड, खंड]

गेंदा—(सं०) दे०—गेना।

गेँघारी—(सं०) हरे रंग का एक साग (पट०-१)। पर्या०—गेन्हारी, गेन्हरी (भोज०), गेन्हारि (मं०-३, भाग०-१, मग०-५)। [देशी, (संभ०)<*गंध]

गेँहड़ि—(सं०) मवेशियों का समूह [गेंहड़ि <*ग्रन्थि वा ग्रहण (संस्कृ०), गेएहण (प्रा०)]

गेँहड़िवाला—(सं०) घूम-घूम कर पशुओं का व्यापार करनेवाला मनुष्य (द० मुं०)। दे०—फेरहा। [गेँहड़ि + वाला (प्र०), गेँहड़ <ग्रंथि वा ग्रहण (संस्कृ०), गेएहण (प्रा०), मिला०—गेड़ही, गेढ़ी (बिहा०)=चरवाहों का झुंड]

गेटकीपर—(सं०) चीनी-मिल का दरवान (बिह०) [गेट+कीपर (अँ०)]

गेटकेन—(सं०) वह ऊख, जिसकी तौल मिल के अंदर होती है। [गेट+केन (अं०)]। टि०—चीनी-मिल में दो प्रकार से ऊख लाये जाते हैं। एक तो स्थानीय किसान बैलगाड़ियों या ट्रकों पर लादकर मिल में ऊख पहुँचा देते हैं। दूसरा वह, जो दूरस्थ स्थानों से रेलगाड़ियों के द्वारा आता है। किसानों द्वारा लाया गया ऊख मिल में तौला जाता है, उसे 'गेटकेन' कहते हैं और दूरस्थ स्थानों से लाये जानेवाले ऊख के लिए स्थान-स्थान पर मिल की ओर से तौलने और वहाँ से मिल में भेजने की व्यवस्था रहती है, उसे 'आउटकेन' कहते हैं (बिह०, री०, हरि०)।

गेटपास—(सं०) चीनी-मिल के अंदर प्रवेश करने या अंदर से कोई वस्तु बाहर लाने का अनुमति-पत्र (बिह०, री०, हरि०)। [गेट+पास (अँ०)]

गेटबाबू—(सं०) चीनी-मिल के द्वार पर नियुक्त कर्मचारी, जो मजदूरों के आने-जाने के समय का लेखा-जोखा रखता है और उनकी उपस्थिति लिखा करता है (बिह०, री०, हरि०)। पर्या०—हाजिरी बाबू (भोज०)। [गेट (अँ०) + बाबू (हिं०)]

गेठिया—(सं०)—(१) दे०—आखा। (२) खैनी (सुरती) का बाँधा हुआ बड़ा बंडल।

गेड़हरुहा—(सं०) अनाज के खेत में उगनेवाली एक प्रकार की घास (उ०-प०)। पर्या०—गढ़रो (उ० मं०), गेढ़रो (मग०-५)। [देशी, मिला०—गत्रेधुक]

गेड़ही, गेढ़ी—(सं०) गाँव भर के ढोरों को चरानेवाले चरवाहों का समूह (मुं०-१)। [देशी, मिला०=ग्रंथि]

गेड़ी—(सं०, ऊख का छोटा टुकड़ा (चंपा-१, मं०-२)। [<*अगेरी, <*कांड, <*खंड, ग्रंथि]

गेड़ियार—(सं०)-(प०)। दे०—गँड़ियारी। [गड़+इयार, <*अंगेरी, <*कांड, <*खंड, <*ग्रंथि]

गेड़ुआ—(सं०)-(१) केले के पौधों के छिलके (डफउर) में गूँथे हुए फूल की माला (चंपा०-१)। (२) विवाह के समय कन्या और वर तथा उनके माँ-बाप के ललाट में बाँधा जानेवाला छोटा मौर। पर्या०—पटमौरी (मग०-५), पटमउर (अन्यत्र)। (३) झारी [देशी]

गेढ़रो—(सं०)—(मग०-५)। दे०—गेड़हरुआ।

गेढ़ी—(सं०)। दे०—गेड़ही।

गेनहारि—(सं०)—(दर०-१)। दे०—गेन्हारी।

गेना—(सं०) एक प्रसिद्ध फूल, जो पीले या नारंगी रंग का होता है। इसके कई प्रकार होते हैं—एकहरा, दोहरा, हजारा। पर्या०—गेंदा। [गेंदा (हिं०), मिला०—गेंदुक, संभ०—साद्द०]

गेन्हरी—(सं०) एक प्रकार का प्रसिद्ध साग, जिसकी तरकारी होती है (भोज०, चंपा०)। पर्या०—गेनहारि, गेन्हारी (पू० मं०, मग०-५, मं०५, भाग०-१)। [देशी, मिला०—गन्धोलि (संस्कृ०) = एक प्रकार का पौधा]

गेन्हारी—(सं०)-(पू० मं०, मं०-५, मग०-५, भाग०-१)। दे०—गेन्हरी। पर्या०—गेनहारि (दर०-१)। [देशी, मिला०—गन्धोलि (संस्कृ०)]

गेरू—(सं०)-(१) लाल मिट्टी (गं० द०)। दे०—ललकी मिट्टी। (२) हल्के लाल रंग की पहाड़ी मिट्टी, जिससे मकान और दूसरी चीजें रंगी जाती हैं। साधु-संन्यासियों का कपड़ा भी इसी रंग में रँगा जाता है। [<*गैरिक, गेरुक

गेरुका (पा०), गेरया, गेरुया (प्रा०), गेरु (कश्मी०), गेरु (कुमा०), गेरू (ने०), गेरू (हिं०), गेरी, गेरु (पं०), गेरेउ माटी (असा०), गेरी (बं०), गेरु (ओ०), गरु (गु०), गेरू मरा०)]

गेरुआ—(सं०)—(१) ऊख की जड़ को काटनेवाला एक कीड़ा (प०)। [देशी, मिला०—गैरिक] (२) रोपे जानेवाले छोटे पेड़ों की जड़ में मिट्टी को बाँध रखने के लिए चारों ओर लपटाई गई रस्सी (द०-प० मं०)। दे०—मोजर। (३) दे०—गेरू। [गेंड़ल (बिहा०), गेंड़ना (हिं०)]

गेरुई—(सं०) फसल में पैदा होनेवाला एक रोग, जिससे पौधा सूखकर लाल और बाल का रंग काला हो जाता है। यह रोग जाड़े में तथा वर्षा अथवा पुरवैया हवा के कारण अधिक होता है (उ०, द०-प०, चंपा०)। —"नीचे ओद ऊपर बदराई; घाघ कहै गेरुई अन्न धाई।" —(घाघ) =नीचे जमीन भींगी हो और ऊपर बादल लगे हों, तो घाघ कहते हैं कि उस समय फसल में गेरुई कीड़ा लगेगा। [देशी, मिला०—गैरिक]


गेलहंटा

गेलहंटा—(सं०) बैंगन का एक भेद, जो गोल होता है (द० मुं०)। दे०—बैंगन। पर्या०—गोलहंटा (मग०-५)। [गोल+हंटा< गोल+ भंटा]

गेलहनी—(सं०) *पाँच फालों का बना एक तरह का हल, जो नील की खेती में काम आता है (सा०)। दे०—पचफरिया। [देशी]

गेल्हा—(सं०)—(१) ऊख के पौधे की जड़ से निकलनेवाला नया पौधा (चंपा०-१, हरि०)। पर्या०—गोभी (री०), पनपा, खूँटी (बिह०, मं०-२)। (२) एक प्रकार का फल, जो कपड़ा चुनने या कागज को चिकना करने के काम में आता है (चंपा०-१, मग०-५)। पर्या०—गेल्ही (मं०-२)। [देशी]

गेल्ही—(सं०) दे०—गेल्हा।

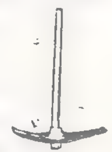
गेहुँआँ—(सं०) एक प्रकार का जनेर, जिसके एक वृंत में दो दाने लगे होते हैं। [गेहुँ +आँ <गेहूँ]

गेहुमा—(सं०) एक प्रकार का भदई अनाज, जो उजला या लाल एवं गोल और वृन्त पर चिपटा होता है। इसका आटा या भूंजा खाया जाता है। इसका पौधा लंबा और पौधे के ऊपर अधखिले कमल-जैसा अन्न का गुच्छा होता है (सा०)। दे०—जनेर। [गेहुँम+आ (प्र०), गेहूम, गहूम (बिहा०), गेहूँ (हिं०)< *गोधुनक]

गेहूँ—(सं०) एक प्रसिद्ध चैती अनाज, जो पीताभ या रक्ताभ होता है तथा जिसका आटा खाया जाता है (गं० उ०, आज०)। पर्या०—गहुम (पू० बिहा०), गोहुँ (पं०), गोहुम (गं० द०, उ०-पू० मं०) मंडा 'गया)। [गोधूम (संस्कृ०), गोहूम (प्रा०), गेहूँ (हिं०), गंदुम (फ़ा०), गित्र (रोमा०), गिहु (आर०), गोम, गोमु (दर०), गहूँ (प० पहा०), गिऊँह (कुमा०), गोम (बं०) गहम (ओ०), गेहूँ (सि०), गहुँ (गु०), घउँ (गु०), गहूँ (मरा०), गोयम (सिंहा०)]

गैंची—(सं०) दे०—गोंइजी।

गैँता—(सं०)-(१) कुआँ खोदने के समय भीतर से मिट्टी बाहर करने का पात्र (गं० द०, कहीं-कहीं, मग०-५)। दे०—चलना। (२) दे०—गाता। (३) कड़ी मिट्टी खोदने के लिए लोहे का बना लंबा नोंकीला फावड़ा। [देशी, मिला० —*खनित >खंता]


गैँता

गैघरा—(सं०) गौओं के रहने का मकान (उ०-पू० मं०)। दे०—गौसार। [गै+ घरा< *गोगृह]

गैना—(वि०) छोटा (बौना) बैल (पट०-४, मग०-५)। दे०—नाटा। [देशी]

गैबार—(सं०) गाय चरानेवाला, चरवाहा (दर०-१), पर्या०—गैवरवाहा (मं०-२), गंवार (चंपा०), धौरे (द० भाग०)। [गै+वार (प्र०)< गो+वार<√वृ] (संभ०)]

गैया—(सं०) दे०—गाय।

गैरमजरुआ आम—(सं०) वह जमीन, जिसपर जमींदार का अधिकार रहता है, लेकिन उसके व्यवहार करने का अधिकार सभी असामियों का

का होता है। जैसे—रास्ता, डगर आदि। [गैर+मजरुआ+आम (फ़ा०)]

गैरमजरुआ खास—(सं०) वह जमीन, जिसपर मालिक (जमींदार) का अधिकार रहता है। [गैर+मजरुआ< खास (फ़ा०)]

गैरमौरुसी—(सं०) वह काश्तकारी जमीन, जिसपर मौरुसी हक नहीं मिला हो। पर्या०—पाही (पट०, गया), खरिदगी (शाहा०), हाल उपारजित (उ०-पू०मैं०)।[गैर+मौरूसी (फ़ा०)]

गैवरवाहा—(सं०)-(मैं०-२)। दे०—गैंबार। [गैवर+वाहा ; मिला०—गैबार]

गैवार—(सं०)—(चंपा०) दे०—गैवाह।

गैवाह—(सं०) गौओं को चरानेवाला मनुष्य (उ०-पू० मैं०)। दे०—चरवाह। [गै+वाह (प्र०), गो+वाह< वह (संभ०)]

गोंइजी—(सं०) एक प्रकार की मछली, जिसका मुंह और पूंछ पतली होती है (शाहा०-१)। पर्या०—गइँची (पट०-४, चंपा०, मग०-५), गइँचा (चंपा०, मैं०-२), गैंची (भाग०)। [देशी, मिला०—गंडक]

गोंगरा—(सं०) लता में होनेवाली एक प्रकार की तरकारी। यह हरे रंग और लंबे आकार की होती है। (पट०-१)। पर्या०-परोर, नेनुआ, तोड़ई, तोरई, घिउड़ा (चंपा०, मग०-५, पट०-४)। [देशी, महाकोशातकी, हस्तिघोषा (संस्कृ०), नेनुआ, बड़ी तरोई, घिया तरोई, घिउरा, घेवरा (हि०), हस्तिघोषा, घुँधुल (बं०) घीसाले, घोसाला (मरा०), घीसोड़ा (गु०), तुप्पिरी (क०), तरडि (ओ०)]

गोँझी—(सं०)-(द० भाग०, पट०-४)। दे०—आँख। [मिला०—गोँजी=मंजोर(पा०स०म०)]

गोँडी—(सं०) चारा खिलाने के लिए मिट्टी का बना हुआ और धूप में सूखकर तैयार हुआ लंबा नाद (द० मुं०, मग०-५)। दे०—चरन। [देशी, मिला०—गोणा, गोणी (संस्कृ०) = बोरा, एक प्रकार की घास]

गोँढ़—(सं०) गाँव के पास की उपजाऊ भूमि। दे०—गोएँड़ा। [गोँ+ढ़< ग्राम+आढ्य वा गो< गुह< *गुथ]

गोँढ़ा—(सं०)। दे०—गोँढ़।

गोँत—(सं०) गाय का पेशाब (चंपा०-१, मैं०-२)। [गोँ+औंत< ऊँत< मूँत< मुत्त < मूत्र, गोमूत्र (संस्कृ०), < गोमुत्ति (प्रा०)]

गोँदौरा—(सं०)—(प०)। दे०—खादर। [देशी, संभ०—गोँ+दौरा< *गोमय+दौरा]

गोआ—(सं०)-(१)—(पू०)। दे०—खादर। [गोमय* >गोअय>गोआ] (२) लाठी का मोटा अंतिम छोर (द० मुं०)। दे०—हूरा। [देशी, मिला०—गुल्फ (संस्कृ०), गोँफ (प्रा०)] (३)—(उ०-प० मैं०)। दे०—खादर। [< *गोमय]

गोआ पटाओल—(मुहा०) ऊख के बोने पर सिंचाई किये बिना ही उसके बीज पर खाद (सड़ी पत्ती, घास आदि) देना (उ०-प० मैं०)। दे०—खदियाओल। [गोआ+पटा+आओल(प्र०)]

गोआम—(सं०)-(१) नदी, नहर आदि में बाँध बाँधने के लिए लगाये गये मनुष्य (पट०, गया, मग०-५, पट०-४)। पर्या०—गोमाम (मग०-५)। (२) मालगुजारी के अतिरिक्त किसानों द्वारा जमींदारों को समर्पित स्व-सेवा (पट०, गया, द० मुं०)। पर्या०—गोहार। [देशी]

गोआस—(सं०) मवेशियों के रहने का स्थान, गोष्ठ (उ०-पू० मैं०, चंपा०)। दे०—बथान। [देशी, मिला०—गो+आस< गो+आस < √आस् वा वास]

गोइठा—(सं०) दे०—गोयँठा।

गोएँड़—(सं०) गाँव के पास की उपजाऊ भूमि, जिसमें गाँव की गंदगी, सड़ी-गली खाद आदि पानी के बहाव के साथ जाया करती है। पर्या०—गोएँड़ा, गोँढ़ा, गोँढ़ा, बाध, कोड़ार, कोरार (पट०, प०), डिहाँस (शाहा०, पट०, गया), घरबारी (पट०, द० मुं०), बाड़ी (द० भाग०)। [मिला०—गोँढ़]

गोएँड़ा—(सं०)। दे०—गोएँड़। [मिला०—गोँढ़]

गोक्कुलफूल—(सं०) रोपा जानेवाला एक प्रकार का धान (गया)। [गोक्कुल+फूल < गोकुल+फुल्ल (?)]

गोखुलसार—(सं०) रोपा जानेवाला एक प्रकार का धान (द० भाग०)। [गोखुल+सार < *गोकुलशालि]

गोखुला—(सं०)-(१) धान की फसल को हानि पहुँचानेवाली एक काँटेदार घास (प० मैं०, पट०, गया, द० मुं०, पट०-४, मग-५, मैं०-२, चंपा०)। पर्या०—गोरखुल। (२) ऊसर या परती जमीन में होनेवाली और जमीन पर फैलने वाली एक काँटेदार घास, जिसकी फलियों पर टेढ़े काँटे होते हैं। [< *गोक्षुरक]

गोचर—(सं०) चरागाह।

गोचारि—(सं०) सुरक्षित चरागाह (दर०-१)। [गो+चारि< *गोचर]

गोछी—(सं०) धान की पहली रोपनी के समय में कीड़े-मकोड़ों से धान की रक्षा करनेवाले देवता को मदिरा, दूध, भूँजा और तेल से पूजने की एक रीति (द० भाग०)। [देशी]

गोजइ—(सं०) गेहूँ और जौ की मिली हुई फसल; गेहूँ-जौ आदि मिला हुआ अनाज (पट०-१, चंपा०, मग०-५, आज०)। [गो+जइ < गोहूम+जई< *गोधूम+यव]

गोजी—(सं०) पतली लाठी (चंपा०-१) [गो+ज +ई (प्र०), < *गो+अज< √अज्]

गोट—(सं०)—(१) पीले या काले-नीले वर्ण का गोल दानोंवाला तेलहन, जिससे कड़ुआ तेल निकलता है (पू० मैं०, दर०-१)। दे०—सरसों। (२) व्यक्ति, वस्तु, खंड। [देशी, मिला०—गुटिका (संस्कृ०)=गोटी, गोच (हि०, पं०)=टुकड़ा; गोटी, गोटा (हि०)±कपड़े पर लगाई जानेवाली सुनहली या उजली वस्तु, किनारी। गोट्टा (पं०), गोटो (ने०) = टुकड़ा, गोटा (ने०)=प्रतिवस्तु ; गोटा (बं०)=अविभक्त गोट (अस०)=परिणाम, इकाई, गोटा (ओ०)=एक, गोटु (सि०) तंबाकू का गोला; गोटी (गु०) चाँदी का गोला, गोटी (मरा०) गोल पत्थर]

गोट, गोटा—(सं०) मकई के भुट्टे में से निकला हुआ अनाज। [देशी, मिला०—गुटिका]

गोटा—(सं०)—(१) बीज (द० भाग०)। दे०—बीया। (२) दे०—गोट। (३) दे०—गोट-२। (४) साड़ी में लगाई जानेवाली एक प्रकार की किनारी। [देशी, मिला०—गुटिका]

गोटाएल—(क्रि०) मकई, जनेर आदि फसल की बाल का दृढ़ (अन्न के रूप में) होना (सा०, प० मैं०, चंपा०, मग०-५, पट०-४)। दे०—हबसाएल। [गोटा+आएल (प्र०) < आय, (संस्कृ० ना० धा० प्र०), गोटा < *गुटिका]

गोटी—(सं०)—(१) अफीम की टिकिया। (२) नील की टिकिया। (३) मिट्टी, पत्थर या लकड़ी आदि का छोटा गोल टुकड़ा, जिससे बच्चे गोटी का खेल खेलते हैं। गोटी देओल—(मुहा०)=संपत्ति के बँटवारे में गोटी से निर्णय करना (मग०-५)।—गोटी बैठावल (मुहा० चंपा०-१) दे०—गोटी देओल। अपना काम बनाना। [< *गुटिका]

गोटीघर—(सं०) नील की टिकिया सुखाने का घर। [गोटी+घर—मिला०—गुटिकागृह]

गोटी देओल—(मुहा०) दे०—गोटी।

गोटी बैठावल—(मुहा०) दे०—गोटी।

गोटी—(सं०)—(१) पीले या काले-नीले वर्ण का गोल दानोंवाला तेलहन, जिससे कड़ुआ तेल निकलता है (द० भाग०)। दे०—सरिसों। (२) दे०—गोट-२। [मिला०—गुटिका]

गोठउर—(सं०) दे०—गोठौर।

गोठउल—(सं०) गोयठों के रखने का घर। [< गोष्ठ+कुल]

गोठी—(सं०) साफ की हुई रुई का ढेर। [< गोष्ठी, गोष्ठ]

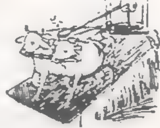
गोठौर—(सं०) गोयठों का ढेर (मग०-५, भाग०-१)। [गोठ+और, गोरु< गोइठा, < गोविष्ठा, (१); उर< पूर वा कुल]

गोड़—(सं०) मनुष्य, मवेशी या किसी जन्तु का पैर। [गोड़< *गोड्ड (प्रा०), गुर (रोमा०), गोड़ो (ने०, कुमा०), गोर (अस०)=पेड़ का तना, गोड़ (बं०), गोड़ा (ओ०); गोड़ा पिंडा (ओ०)=बछिया। गोड़ (हि०), गोड़ा (पं०) =घुटने। गोडा (ल०), गोडो (सि०)]

गोड़पीठा—(सं०) कुएँ के आर-पार रखा गया लकड़ी का तख्ता, जिस पर खड़ा होकर पानी निकाला जाता है (द०-प०मैं०)। पर्या०—

पौठा पट०-४)। दे०—परियाठा। [गोड़+पैंठा < प्रोष्ठ (संस्कृ०), पोट्ठ (प्रा०) = बैंच, स्टूल। गोड़ < *गोड्डु (प्रा०)]

गोड़पौर—(सं०) मोट खींचनेवाले बैलों के लिए कुएँ के पास बना हुआ ढालू मार्ग (द० मुं०)। दे०—पौदर। [गोड़ + पौर, पैर < पौरी < पओली < *प्रतोली]


गोड़पौर

गोड़रा—(सं०) एक मछली-विशेष। इसके कई पैर होते हैं (शाहा०-१, चंपा०-१, पट०-४, मग०-५)। [गोड़+रा (प्र०) < गोड़ < *गोड्डु (प्रा०)]

गोड़ल—(क्रि०)—(१) चरते हुए पशुओं को इकट्ठा करना (चंपा०-१)। (२) भूमि को कुदाल या खुरपी आदि से कोड़ना। [गोड़ + ल (प्र०) मिला०—गोर < √गुरी (उद्यमने = उठाना) वा √गुण्ठ, √गुण्ड (= ढकना = घेरना), गोड़ना, गोड़ना (हि०), गोड़नु (ने०) = खोदना, घासपात निकालना, खेत आदि को साफ करना। गोड़णा (पं०) = खोदना, गोड्डी (पं०, सि०), गाड़णा (ल०), गोड़वुँ (गु०)]

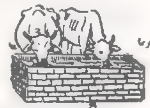
गोड़ा—(सं०)—(१) वह आधार, जिसपर अन्नागार (कोठी, बखारी आदि) अवस्थित रहता है। पर्या०—बैसना (द०-पू० मं०), बैसक (पू० मं०, द० मुं०), खूरा (पट०), ओटा (शाहा०)। (२) गँड़ासी के फलक का नुकीला अंश, जो बेंट के अंदर रहता है (गं०-उ०-प०)। दे०—खुरा। (३) बरतन के नीचे लगा छोटा आधार। (४) किवाड़ के नीचे लगा लकड़ी का लंबा टुकड़ा। (५) व्यक्ति या कोई एक वस्तु। दे०—गोट-२ [गोड़+आ < गोड़ (देशी), < *गोड्डु (प्रा०)।

गोड़ाइत—(सं०) —(१) गाँव में पहरा देनेवाला दुसाध। (२) जमींदारी में काम करनेवाला निम्न स्तर का नौकर, जो समय पर गाँव के लोगों को इकट्ठा होने की सूचना दिया करता है। [देशी]

गोड़ानी—(सं०)-(१) पशुओं का भागना रोकने के लिए उनके अगले दोनों पैरों को बाँधने की रस्सी (द० भाग०)। दे०—पैंढ़। पर्या०—छान (पट०-४, मं०-५, चंपा०)। (२) स्त्रियों या बच्चों के पैरों में पहना जानेवाला चाँदी का बना आभूषण। [गोड़ + आनी (प्र०) < गोड्डु (प्रा०)]


गोड़ानी

गोड़ी—(सं०) मिट्टी या पकी ईंटों का बना हुआ नाद-जैसा स्थान, जिसमें मवेशियों के खाने के लिए चारा रखा जाता है और जिसके दोनों ओर खूँटों में मवेशी बँधे रहते हैं (मुं०-१)। [देशी, मिला०—गोणी]


गोड़ी

गोड़ीलत्ती—(सं०) एक प्रकार की लता (दर०-१), [गोड़ी+लत्ती (देशी)]

गोड़ैत—(सं०)—(१) गाँव की ओर से नियुक्त गाँव में पहरा देनेवाला व्यक्ति। पर्या०—कोतवाल, चौकीदार। (२) दे०—गोड़ाइत। [गोड़ + ऐत (प्र०)—जैसे लट्ठ + ऐत = लठैत। गोड़ = गोड़ल, < अगोरल, अगोरना (हि०)]

गोड़ैतक मूठ—(सं०) चौकीदार को किसान की ओर से मिलनेवाला पारिश्रमिक (उ०-पू० मं०)। दे०—चौकीदारी। [गोड़ैत + क (विभ०) + मूठ]

गोड़ैती—(सं०)—(१) चौकीदार को किसान की ओर से मिलनेवाला पारिश्रमिक (द०-पू० मं०, चंपा०, पट०-४)। दे०—चौकीदारी। (२) गोड़ाइत को मिलनेवाला पारिश्रमिक। [गोड़ैत + ई]

गोतल—(क्रि०) मवेशियों के खाने के लिए पानी में घास, दाना, खल्ली आदि मिलाना (शाहा०-१, पट०-४, मग०-५, चंपा०, भाग०-१)। [गोत + ल (प्र०); मिला० गोतः (प्र०)]

गोथार—(सं०)-(१) पशुओं के खाने के बाद बचा हुआ व्यर्थ का (अखाद्य) घास-भूसा आदि (पट०, गया, दं०-पू०, मग०-५, पट०-४)। दे०—लथेर। (२) अनाज निकाल लेने के बाद फसल का डंठल (उ०-प०)। पर्या०—लथेर (प०, उ०-प० मं०), निघास (चंपा०, उ०-पू० मं०) निघेस (द०-पू० मं०), डाँटी (गं०-द० चंपा०), [गो + थार (संभ०) < *गो + स्तार]

गोधना—(सं०) एक घास, जिसे पशु खाते हैं (पू० मं०)। [गो + धना < गोधन (?)]

गोन—(सं०)—(१) मवेशियों की पीठ पर ढोने के लिए रखा हुआ बोरा (शाहा०)। दे०—आखा। कहा०—"बैल न कूदे कूदे गोन, एह तमासा देखे कौन।" = बैल नहीं कूदता है; उसकी पीठ पर रखा गोन कूदता है। इस तमाशे को कौन देखे। अर्थात् मनुष्य नहीं, मनुष्य का धनमद उसके सर पर नाचता है। (२) दो रस्सियों को बाँटकर बनाई गई रस्सी (गया, द०-प०)। दे०—गून। (३) वह पतली मजबूत बँटी हुई रस्सी, जिससे मल्लाह नाव खींचते हैं। (४) गोंद। [< *गुण, < *गोण]


गोन

गोनउरा—(सं०) वह स्थान, जहाँ घर का बुहारन, राख, गोबर आदि फेंका जाता है (पू० चंपा०, चपा०-१, पट०-४, मग०-५, मं०-५, भाग०-१)। [गोन + अउरा, गोन < गोमय। अउरा (प्र०) वा < आवर्त्त, कूट, पूर]

गोनर—(सं०) घर के पास जमा की गई खाद की राशि (पू० मं०)। दे०—ढेरी। पर्या०—गनोर (पट०-४), गनौरा (भाग०)। लोको०—'गोआरक गोबर दुहुदिस चिक्कन' (मं०) = ग्वाला की खाद-राशि दोनों ओर चिकनी होती है। [गोमय, गोमल]

गोनरौरा—(सं०) खाद, कूड़ा (द०-पू० मं०)। दे०—खावर। [गोनर + औरा < गोमय, गोमल + कूट, आवर्त्त, पूर]

गोपालभोग—(सं०) रोपा जानेवाला एक प्रकार का धान (गया)। [गोपाल + भोग]

गोपी—(सं०)—(१) एक प्रकार की पीली मिट्टी, जो चंदन के काम में लाई जाती है। (२) वह आम, जो चिपटा होकर समय के पूर्व पक जाता है (चपा० (१)। गोपी (+ चन्दन), गोपिचंदन (ने०)]

गोफा—(सं०)—(१) पौधों की कोंपल (चंपा०-१)। (२) लाठी के हुरें में लगी हुई लोहे की टोपी। [< *गुम्फ वा < *गुप्त]

गोब—(सं०) मरे हुए धान के पौधे के स्थान में दूसरे पौधे की रोपनी (दर०-१) [गोब < गोबन < गोमल < गर्भ]

गोबर—(सं०)-(१) (सा०-१)। दे०—खादर। [< *गोमय, < *गोमल] (२) गाय या भैंस का मल (बिहा०, आज०)। [गोबर < *गोमल; टर्नर के मतानुसार < गोर्वरः (संस्कृ०), गोव्वर, गोब्बर (प्रा०), गोबर (ने०, कुमा०, अस०, बँ०), गोबँर (ओ०), गोब्र (हि०, प०), गोर (गु०) = घोइठे की चूर। गोबर (मरा०) = सूखा गोबर]

गोबरचुननी—(सं०)-(मग०-५, चंपा०, पट०-४) दे०—गोबरबिननी।

गोबर पाँचे—(सं०) सावन वदी पंचमी को शेषनाग की पूजा करने का एक उत्सव (पट०, गया०)। पर्या०—बेहरा पाँचे (द० भाग०) नागपाँचे (मग०-५, पट०-४), लखपाँचे (चंपा०)। टि०—इस दिन स्त्रियाँ गोबर से घरों के चारों ओर रेखा खींचती हैं और दरवाजे के दोनों तरफ चौकोर मंडल तथा साँप के मुँह का आकार बनाती हैं। [गोबर + पाँचे < गोबर-पंचमी, गोमल-पञ्चमी]

गोबरबिननी—(सं०) खेतों या मैदान में मवेशियों के पीछे-पीछे चलकर गोबर बटोरनेवाली स्त्रियाँ (शाहा०-१, चंपा०-२, अन्यत्र)। पर्या०—गोबर चुननी (मग०-५, चंपा०, पट० ४)। [गोबर + बिननी। बिननी < बीनल (बिहा०), बिनना (हि०) < √विचिर् ('व्यक्तीकरणे' = स्पष्ट करना, पृथक् करना, उठाना, धा० रूपविभक्ति), विंक्ते।—वि + √चि (नेपा०)]

गोबराएल—(वि०)—(१) जिस खेत में अधिकता से खाद पड़ी है। दे०—खदोड़ खेत। (२) मस्ती में आकर पशुओं का आपस में लड़ना-भिड़ना (मग०-५)। [गोबर + आएल (प्र०) < गोमय, गोम्ल, गोब्र-]

गोबराएल—(क्रि०) खेत में गोबर की खाद देना (बर०-१)। [गोबर+आएल (प्र०) <गोमय, गोमल, गोब्र]

गोबरौरा—(सं०) पान में लगनेवाला एक रोग (प० मैं०, प०)। [गोबर+औरा (प्र०) <*उत्थ (?)]

गोबल—(क्रि०) फसल के बीज के मरने पर उस स्थान पर पुनः दूसरा बीज रोपना। पर्या०—डोभल (चंपा०), गोब, डोभनी [गोब+ल (प्र०) <गोब<गोभ<*गर्भ (संस्कृ०), गब्भ, गोब्भ (प्रा०)]

गोभल—(क्रि०) दे०—गोबल।

गोभी—(सं०)—(१) ऊख की जड़ से निकलनेवाली शाखा, जिससे पौधे को हानि पहुँचती है (पू० मैं०, री०)। दे०—दोंज। (२) फसल में लगनेवाला एक रोग, जो भीषण वायु गोभी के प्रभाव से होता है और जिससे पौधे में छोटे-छोटे अंकुर निकल आते हैं, जिस कारण वह कमजोर पड़ जाता है। (३) वह ऊख, जिसमें सद्यः अंकुर निकला हो (अन्यत्र, गं० उ०, मैं०-२, पट०-४, मग०-५)। दे०—पुआरी। (४) एक तरकारी, कोबी। [<*गुम्फ, *<गोजिह्वा]

गोमाम—(सं०)—(मग०-५)। दे०—गोआम।

गोयँठा—(सं०) जलावन के लिए गोबर का बनाया हुआ गोलाकार चिपटा या लंबा पिंड, जो धूप में सुखा लिया जाता है (शाहा०-१, पट०-४, मग०-५, मैं०-२)। पर्या०—चिपरी (भाग०), गोइठा (चंपा०)। [गोयँ+ठा <*गोमय+इष्ट, गो+विष्ठा]

गोयठा—(सं०) दे०—गोहरा, गोयँठा।

गोयँड़ा—(सं०)—(शाहा०-१, चंपा०)। दे०—गोंऍड़ा। [गोयँ+ड़ा]

गोरंटी—(सं०) कुछ पीली-उजली मिट्टी (ब० भाग०)। दे०—गोरिअट्टा। [गोर+रटी< गोर+मिट्टी<*गौरमृत्तिका]

गोरखिया—(सं०)—(१) गौओं को चरानेवाला मनुष्य (मग०-५)। दे०—चरवाहा। (२) जोते जानेवाले खेत में हल में चलनेवाले बैलों को अवकाश देने के लिए रखे गये अतिरिक्त बैलों को देखनेवाला लड़का। दे०—अनवाह। [गो+रखिया< *गोरक्षक]

गोरखिरवा—(सं०) वह बैल, जो न बहुत लाल हो और न बहुत उजला (पट०-१)। [गोर+खिरवा< गोर+क्षीर (?)]

गोरखुल—(सं०) धान की फसल को हानि पहुँचानेवाली एक काँटेदार घास (प०)। दे०-गोखुला। [गोक्षुरक]

गोरथारो—(सं०) पशुओं के खाने के बाद बचा हुआ व्यर्थ घास-भूसा आदि (द० भाग०)। दे०—लथेर। [गोर+थारो< गोरु+थारो< गो +स्तार]

गोरल—(क्रि०) किसी कच्चे फल को पकने के लिए भूसा, अन्न आदि में इस तरह रखना कि गर्मी के कारण वह पक जाय (चंपा०-१, मैं०-२)। [< √गृ (निगरणे = नीचे रखना)]

गोरपौर—(सं०)—(१) ऊख के कोल्हू के नजदीक का वह क्षेत्र, जिसमें बैल घूमता है (सा०)। पर्या०—पौदर (चंपा०, शाहा०), पौर या पैरी (गं० उ०, कहीं-कहीं, पट०, गया, द० भाग०), बही (पट०), बड़हरा (द० मुं०)। [गोर+पौर <गो+प्रतोली, गोड़ (देशी) प्रतोली]। (२) वह स्थान, जहाँ खड़ा होकर पानी पटाने के समय सैन चलाया जाता है। पर्या०—पौधा (प०), सैनार (द० भाग०)। [गोर+पौर]

गोरपौरी—(सं०) ढेंकी के पछुए के नीचे का गड्ढा। पर्या०—गत्ती (द० भाग०, पट०-४, मग०-५)। [गोर+ पौरी< गोड़ +प्रतोली, प्रोष्ठ]

गोरवा—(सं०) वह बैल, जिसका रंग गुंजे की तरह लाल हो (पट०-१)। [गोर+वा< *गौर, <* गोल]

गोरस—(सं०) दूध, दही, घी आदि। [गो+रस <*गोरस (संस्कृ०), गोरस (पा०, प्रा०), गुरुस (कश्म०), गोरस (हि०), सगोर, ने० कुमा०), गोरस (असo, बँ०)=दही; गोरस (गु०), गोरस (मरा०)]

गोरा—(सं०)—काश्तकारी भूमि का एक प्रकार। टि०—इसमें सीमा-निर्धारण के साथ-साथ एक निश्चित कर (राजस्व) दिया जाता है, किंतु भूमि-परिमाण का निश्चित उल्लेख नहीं मिलता है। सामान्य तौर से मौलिक प्रबंध-पत्र (Original Settlement) में आंकी गई भूमि के अधिक होने पर भी उसके कर में कोई वृद्धि नहीं हो सकती है। जमींदार की स्वीकृति के बिना खरीदी-बेची जा सकती है। [देशी]

गोरिअट्टा—(सं०) पीली या उजली चिकनी मिट्टी। पर्या०—गोरंटी (ब० भाग०)। [गोर +इअट्टा< *गौर+मृत्तिका]

गोरिआ—(सं०) ग्वाला-जाति का एक भेद, ये प्रायः गोरे होते हैं। [संभ०—<*गौर या <ग्वार< ग्वाल< *गोपाल]

गोरी केवाल—(सं०) हल्के रंग की मिट्टी (द०-पू० मैं०, मग०-५)। [गोरी+केवाल+ गोरी केवाल]

गोरुआ—(वि०) (१) भूसे आदि में गोरकर या ऊपर से गरमी पहुँचाकर पकाया हुआ आम आदि फल (मुं०-१, चंपा०-१)। पर्या०—पलुआ (चंपा०-१)। (२) उबाल लेने के बाद धूप में आधा सुखाया हुआ धान। [गोर+उआ< गोरल (बिहा०)< √गृ, गोरना (हि०)]

गोरू—(सं०)-(१) भैंस को छोड़कर अन्य सभी सींगवाले पालतू मवेशी (बर०-१)। (२) पालतू मवेशी। पर्या०—गायगोरू, धूरडाँगर (पट०, गया)। (३)-(चंपा०)। दे०—गाय। [गो+रू (प्र०)<*गो, <*गोरूप (संस्कृ०), गोरूप (पा०) = बैल, गुरुव, गोरु (रोमा०), गोरू (प० पहा०), गोरू (कुमा०), गोरु (ने०), गोरु (अस०, बँ०, ओ०), गोरू (हि०, पं०), गोरूँ (मरा०), गेरिया (सिंहा०) = बैल। गेरि (सिंहा०) = गाय]

गोरूवारी—(सं०) बैल-भैंस को खिलाने का काम (शाहा०)। [गोरू+वारी< गो+रू (प्र०) वा< गोरूप+वार+ई (प्र०)]

गोरेंटिया पथरौटी—(सं०) बारीक कंकड़ मिली हुई कुछ लाल मिट्टी। [गोरेँटिया+पथरौटी< गोर+अँटिया+पत्थर+औटी <*गौर+ मृत्तिका+प्रस्तर+वटी]

गोरैया—(सं०) एक कल्पित देवता, जो प्रायः गोड़ैतों के देवता माने जाते हैं। कहीं-कहीं किसानों के दरवाजों पर भी इनका पिंड बना होता है (पट०-४, मग०-५, चंपा०)।

गोलंबर—(वि०) गोल-गोल आकार का। [गोलंबर< गोल+बर (प्र०)]

गोलंबर कदुआ—(सं०) वह कद्दू, जिसका आकार गोल होता है (पट०-१)। [गोलंबर +कदुआ]

गोलंबर लेंवो—(सं०) गोल आकार का नींबू (पट०-१)। [गोलंबर+लेंवो]

गोलंभर—(सं०) ईंट आदि से बाँधने के पहले कुएं का खोदा गया बड़ा गोल ढाँचा (गया)। दे०—दवड़। [गोलंभर< गोल]

गोल—(सं०)-(१) ईंट आदि से बाँधने के पहले खोदे गये कुँए का बड़ा गोल ढाँचा (द०-प० शाहा०)। दे०—दवड़। [गोल] (२) (वि०) पीलापन लिये हुए लाल रंग का पशु (दर०-१)। पर्या०—गोला (भाग०)। [< *गौर, (संभ०) <*गोला =(मैनसिल, यह धातु गेरू की तरह लाल होती है)]

गोल—(सं०)-(१) गायों का समूह (सा०-१, मग०-५)। दे०—ढोर। (२) पीलापन लिये हुए लाल रंग (चंपा०-१, मग०-५, मैं०-२)। (३)-(वि०) पीलापन लिये हुए लाल रंग का पशु (चंपा०-१)। [गौर, गोल=(मैनसिल)= एक प्रकार की लाल धातु]

गोलकी—(सं०) काली मिर्च (मुं०-१, पट०-४, मग०-५)। (?)-(वि०) गोल आकार की वस्तु। (२) लाल रंग की गाय आदि। [गोलक+ई <गोलक, मिर्च< मरीच]

गोलगाल—(सं०) ईंट आदि से बाँधने के पहले खोदे गये कुएं का बड़ा गोल ढाँचा (शेष शाहा०, पट०-४, मग०-५)। दे०—दवड़। [गोल+गाल (अनु० शब्द)< गोल]

गोलवा—(वि०)-(१) लाल रंग का पशु (मग०-५)। दे०—गोल। (२) एक प्रकार का खट्टा साग, नोनिया साग। (मग०-५)। [गौर, गोला (=मैनसिल)]

गोलभंटा—(सं०) बैंगन का एक भेद, जो गोल होता है। दे०—बैंगन। [गोल+भंटा< गोल, भंटा (देशी) वा< वृन्ताक]

गोलमिरिच, गुलमिरिच—(सं०) एक प्रसिद्ध तीती गोल काली फली, जो मसाले में प्रयुक्त होती है; काली मिर्च। दे०—मिरिच। पर्या०—मरीच (दर०-१), मरिच (चंपा०)। [गोल+मिरिच< गोल मरीच]

गोलरी—(सं०) रबी की बाल का पका हुआ टुकड़ा, जो पीटने-झाड़ने पर भी अनाज के अंश के साथ रह जाता है। पर्या०—गोलुआँ (मग०-५)। [देशी]

गोला—(वि०)-(१) पीलापन लिये हुए लाल रंग का मवेशी। दे०—गोल। [< *गौर< *गोला (मैनसिल=एक लाल रंग की प्रसिद्ध धातु)] (२) (सं०) एक प्रकार की कपास (मुं०)। [गोला=लाल रंग]

गोलावा—(सं०)-(१) एक प्रकार का साग। इसे कुलफे का साग भी कहते हैं (पट०, गया, सा०, पट०-१)। दे०—खुरफा। (२) किवाड़ों में ठोंकी जानेवाली गोल कील, जिसकी ऊपर-वाली टोपी छत्राकार और गोल होती है (पट०-४, मग०-५)। [देशी]

गोली—(सं०)-(१) गुड़ रखने का बड़ा बरतन, बड़ा कुंडा (मुं०-१)। (२) पीलापन लिये हुए लाल रंग की गाय आदि मादा मवेशी। (३) अन्न आदि रखने के लिए गोलाकार छोटी कोठी पर्या०—जबरा (गया, चंपा०)। [गोल+ई < *गोलक]

गोलौर—(सं०)-(१) ऊख का रस उबालने और गुड़ बनाने का घर (शाहा०)। दे०—गुड़ौर। [गोल+और< *गुड+वाट] (२) ऊख पेरने तथा गुड़ बनाने का स्थान (शाहा०)। दे०—कोल्हुआर।

गोवार—(सं०) दे—ग्वार।

गोसाला—(सं०)-(१) गौओं के रहने का मकान। दे०—गोसार। (२) गौओं के रहने का सार्वजनिक स्थान, जहाँ अपंग गाय, बैल आदि रखे जाते हैं। पिंजरापोल। [गो+ साला< *गोशाला]

गोहट—(सं०) मेंड़ को कोड़ना या छाँटना (चंपा०, सा०-१)। आरि छाँटल (मुहा०) =मेंड़ को छाँटकर उसपर मिट्टी डालना, मुहा०—गोहटा फेंकना (पट०-४, मग०-५)। [देशी]

गोहमा—(सं०) छींटकर बोया जानेवाला एक प्रकार का धान (द० भाग०)। [गोहम+आ (स्वा० प्र०) < *गोहूम< *गोधूम]

गोहमाठी—(सं०)-(१) गेहूँ का खेत (पट०-४)। (२) अनाज निकालने के बाद बचा गेहूँ का डंठल। [गोह+माठी< गोहूम+माटी < गोधूम+मृत्तिका]

गोहरा—(सं०) जलावन के लिए गोबर का बनाया हुआ लंबा टुकड़ा, जो धूप में सुखा लिया जाता है। पर्या०—थपुआ, गोयठा, गोयँठा (पट०-४)। [गो+हरा< हल्ल, ईल्ल (हि० श० सा०)]

गोहराएल—(क्रि०) झुंड में से निकालकर पशुओं को गाँव की ओर ले जाना (द० मुं०)। दे०—निकासल। [गोहर+आएल (प्र०); < *गो+हार]

गोहरौर—(सं०) गोयठे का ढेर (शाहा०-१)। दे०—गेठौर। [गोहरा+औैर (प्र०)]

गोहान—(सं०) वह जमीन, जिसमें गाँव का गंदा पानी बहकर जाता है (शाहा०)। [गोह+आन (प्र०) वा आन< स्थान, गोह< गुह< *गूथ< *गोष्ठ]

गोहार—(सं०)-(१) मालगुजारी के अतिरिक्त किसानों के द्वारा जमींदार को समर्पित स्वसेवा। दे०—गोआम। (२) सम्मिलित रूप से हल्ला करना। (३) लड़ने के लिए इकट्ठा हुआ मनुष्यों का समूह (पट०-४, मग०-५)। (४) प्रार्थना करना। [देशी]

गोहाल—(सं०) गौओं के रहने का मकान (पू०, दर०-१, मुं०-२)। दे०—गोसार। [गो+ हाल< *गोशाल]

गोहुम—(सं०) एक प्रसिद्ध चैती अनाज, जो पीताभ(बादामी)वर्ण का होता है और जिसका आटा खाया जाता है (गं०-द०, उ०-पू० मुं०,

पट०-४, मग०-५)। दे०-गेहुँ। [गोधूम (संस्कृ०), गोहूम (प्रा०)]

गोहूँ—(सं०) एक प्रसिद्ध चैती अनाज, जो पीताभ (बादामी) वर्ण का होता है और जिसका आटा खाया जाता है (प०, पट०-४, मग०-५)। दे०—गेहुँ। [गोधूम]

गौँआँ—(सं०)-(१) गाँव का स्वामी, जमींदार (शाहा०)। दे०—जिमिदार। (२) एक गाँव का रहनेवाला (भाग०, दर०)। [गौँ+आँ (प्र०)< ग्राम। मिला०—ग्रामणी]

गौँछी—(सं०)-(१) एक प्रकार का जलीय झींगुर, जो पत्ते की नाव में बैठकर इधर-उधर बहता हुआ धान के पौधों को खाता चलता है (प० मुं०, पट०, गया)। [गुच्छ (?)] (२) वह जमीन, जो नदी की धारा से कटकर पानी में गिर जाती है। दे०—धसना। (३) पौधों का छोटा अंकुर, जो जड़ से अथवा पौधे के टूटने पर गिरह पर से निकलता है। (४) पौधों की एक मूठा से छोटी परिमित राशि। [देशी]

गौँजी—(सं०) वह जमीन, जो नदी की धारा से कटकर पानी में गिर जाती है। दे०—धसना। [देशी]

गौँढ़ी—(सं०) गाँव के पास की उपजाऊ भूमि (पट०-४, मग०-५)। दे०—गोएँड़। [गौँढ़ा; दे०—गोँढ़ा]

गौँत—(सं०) पशुओं का मूत्र। पर्या०—गौत, मूत (प०), गोँत (चंपा०)। [गो+ओँत < *गो+मूत्र]

गौछी—(सं०) उखाड़कर रोपने योग्य धान के पौधे। लेल=धान का रोपा समाप्त या प्रारंभ करना। —के नहाइल—खेत में रोपा होते ही वर्षा के पानी से पौछो का नहाना। [गुच्छ]

गौठि—(सं०) सूखा हुआ गोबर (उ०-पू० मुं०)। दे०—डमारा [< *गौष्ठ< *गोष्ठ].

गौत—(सं०)-(१) दे०-गौँत। [गौ+त< *गो +मूत्र] (२) बथान में एक साथ बाँधकर पशुओं को दिया जानेवाला चारा (गया, चंपा०) दे०—गवत। (३) पशुओं का चारा (पट०-४, मग०-५, चंपा०)। [गो+ओत< गवाद्य]

गौतदेल—(मुहा०) पशुओं को खिलाना, गवत देना (पट०, गया, पट०-४, मग०-५)। दे०—सानी-पानी करल। [गौत+देल]

गौतहा—(सं०)-(१) (पट०)। दे०—गवत। (२) गौत या गवत देनेवाला व्यक्ति। (३) बरसाती फसल, जिसे पशुओं को खिलाते हैं। [गौ+ओतहा< गवाद्य]

गौर—(सं०)—(उ०-पू० मुं०)। दे०—ओसर [गो]

गौरिआ—(सं०) एक प्रकार का केला, जो मझोले आकार का और मोटा होता है (चंपा०-१)। [देशी]

गौरिआ मालभोग—(सं०) एक अगहनी धान, जो सफेद और नोक पर थोड़ा-सा काला होता है (सा०-१)। [गौरिया+मालभोग]

गौरिया—(सं०)-(१) चीना का एक भेद (सा०)। पर्या०—रकसा (सा०)। (२) एक प्रकार का नींबू (दर०-१)। (३) एक प्रकार का केला (दर०-१, चंपा० तथा अन्य०)। [देशी, संभ०< *गौर]

गौरी—(सं०) चारा खिलाने के लिए मिट्टी का बना और धूप में सुखाया हुआ लंबा नाद (गया)। दे०—चरन। [मिला०—गोणा, गोणी]

गौरीसंकर—(सं०) एक शाक-विशेष। इसका पत्ता गुलाबी और लाल रंग का होता है (पट०-१)।

गौसार—(सं०) गौओं के रहने का मकान। पर्या०—गोसाला, गोहाल (पू०), गैघरा (उ०-पू० मुं०), दुरखोल (द०-प० शाहा०) दोगाह (पट०, गया, सा०, प०)। [गौ+सार < *गोशाल]

गौसिंघी—(वि०) वह बैल, जिसके दोनों सींग बीच में आकर जुड़ते हैं (द०-प० मुं०)। दे०—सिंग जुड़ा। [गौ+सिंघ < *गो+शृंग]



गौसिंघी

ग्वार—(सं०)-(१) गाय चरानेवाला व्यक्ति। (२) अहीर; एक जाति-विशेष। [ग्व+आर < गो+आर< गो+पाल, गोपाल (प्रा०)]

घ

घँघरी—(सं०) चने और ज्वार की बाल में लगने वाला एक कीड़ा (शाहा०)। पर्या०—घोँघरी, लरका (भाग०-१), घघरी, घँघरा (पट०-४)।

घइला—(सं०) दे०—घैला।

घघरा लेंबो—(सं०) बड़ा-बड़ा, करीब एक-एक सेर तक का फलनेवाला नींबू। इसका छिलका मोटा होता है और भीतर में फाँक रहती है (पट०१)। पर्या०—गागर-नीमो, गागल नीमो (चंपा, शाहा०)। [घघरा+लेंबो]

घघरी—(सं०) हेंगा या चौकी के निचले भाग में ढेलों को चूर्ण करने के लिए बनाया गया लंबा गढ़ा (गड्ढा), (द० भाग०, भाग०-१)। पर्या०—घाई (मुं० द० भाग०, भाग०-१), खद्दहा (द० मुं०), खड्डा (कहीं-कहीं), खद्धा (पट०-४)। [देशी, मिला० घर्घर (संस्कृ०), घाघर (प्रा०)=घर्घर शब्द, खोखला गला, घड़ारी]

घटबढ़—(सं०) अनाज आदि का घटना-बढ़ना। मूल्य का उतार-चढ़ाव। [घट+बढ़, घट-बढ़ (हिं०), घट-बढ़ (ने०)]

घटल—(क्रि०) घटना, कम होना। (वि०) घटा हुआ। घटल-बढ़ल (यौ०)—घटा-बढ़ा, कम-बेश। [घट+ल (प्र०) <घट<घट्ट (प्रा०) =गिरना, गाट (दरदी), गट्टुन, गोट्टु (कश्म०) =अपर्याप्त; घट (प० पहा०)=छोटा, थोड़ा, घटणो (कुमा०), घटनु (ने०), घुटना (हिं०), घाटिबा (अस०), घाटा (बं०), घटणा (पं०), घट्टण (ल०), घटणु (सि०), घटवुँ (गु०), घाटणे (मरा०)]

घटही—(सं०) वह नाव, जो घाट पर रहती है। [घट+ही (प्र०) <घाट<घट्ट] (वि०) निम्न श्रेणी का, घटिया। [घट+ही (प्र०) <घट<घटल]

घटावल—(क्रि०) घटल क्रिया का प्रे०। घटाना, कम करना। अनाज आदि का मूल्य घटाना। [घट+आवल (प्र०)<घट<*घट्ट (प्रा०), घटाना (हिं०), घटाउनु (ने०), घटुणो (कुमा०), घटाइवा (अस०), घटाउणा (पं०), घटाइणु (सि०), घटाड़वुँ (गु०), घटाविणे (मरा०)]

घटिया—(वि०) निम्न स्तर की वस्तु। निम्न श्रेणी का अनाज आदि। पर्या०—घटिहा।

घटिहन—(सं०)-(१) निम्न प्रकार का सस्ता अनाज; ऐसा कोई अन्न, जो पीसे जाने पर अधिक पानी सोखता है और शीघ्रता से पच नहीं पाता। पर्या०—घटीहन। (२) चैती अनाज (भाग०-१)। [घट+इ+हन, घटना (हिं०), हन<हान<धान्य, या घट+इहन (प्र०)]

घटिहा—(वि०) दे०—घटिया।

घटीहन—(सं०) दे०—घटिहन। [घटी+हन]

घड़ा—(सं०) दे०—घैला। [घड़ा< *घट, *घटक (संस्कृ०), घटक (पा०), घडग, घडअ (प्रा०), घड़ा (हिं०, बँ०-पं०), घार (अस०)=हाँड़ी, घड़ो (सिं०), घड़ो (गु०), घडा (मरा०)]

घड़ारी—(सं०)-(१) सींचने या बोने आदि की सुविधा के लिए बने हुए जमीन के छोटे-छोटे टुकड़े (चंपा०)। पर्या०—गड़ारी (भाग०-१)। दे०—कियारी। [घटा, कृष्ट] (२) कुएँ पर लगे खंभे की दो काबियों के बीच में पड़ी धुरी पर नाचने-वाली घिरनी (प०)। पर्या०—गड़ारी (उ०-प०, द० मुं०), घिरनी (चंपा०, द०-प० मुं०, पट०, द०-मुं०, पट०-४), गद्दा (द०-प० शाहा०), घुरनी (पट०), मकरा (चंपा०, द०-पू०, भाग०-१)। [घर्घर]


घड़ारी-२

घन—(सं०)-(१) किसी चीज का घना रहना (चंपा०-१, भाग०-१)। पर्या०—घना (पट०-४)। (२) घनी बोआई। पर्या०—गाढ़, गाढ़ा, सँजोर (गं० उ०), घन बोअल (मुहा०)= अनाज का घना बोना। (३) लोहारों का बड़ा हथोड़ा। [घन (संस्कृ०), घन (पा०), घण (प्रा०), घन (हिं०), घन् (ने०), गन (कश्म०)=लकड़ी का बल्ला, घण (कुमा०), घण (पं०), घण (गु०), घण (मरा०)]

घनगिरह—(सं०) घनी गिरहोंवाला बाँस (चंपा०-१, भाग०-१)। [घन+गिरह <घन+ग्रंथि]

घनबहा—(सं०) कोल्हू में पेरने के लिए ऊख लगानेवाला (द० भाग०, द० मुं०, भाग०-१) दे०—मोरेवाह। [घन+बहा <घानी+बहा (प्र०) अथवा <√वह्, घानी <घाटन (संस्कृ०), घायन (प्रा०), घान (=समूह)]

घनबाह—(सं०) दे०—घनबहा (पट०, गया)। [घाटन (संस्कृ०), घायन (प्रा०), घान (=समूह)]

घनबाहा—(सं०) ऊख को पेरते समय उसे हाथ से उकसानेवाला आदमी। कभी-कभी यह आदमी बैल भी हाँकता है (द० भाग०, भाग०-१)। दे०—मोरवाह। [घन+बाहा <घानी+वाहा< घानवाह]

घनबोअल—(मुहा०) अनाज का घना बोना। दे०—घन।

घमहौरी—(सं०)-(१) एक प्रकार का फल (दर०-१)। (२) गर्मी के दिनों में शरीर में होने-वाला एक चर्म रोग, जिसमें चमड़े पर फुंसियाँ हो आया करती हैं। [देशी, घमह+औरी <ग्रीष्मवटी (?)]

घर—(सं०)-(१) ऊख या तेल पेरने के कोल्हू का वह खोखला भाग, जिसमें ऊख पीसा जाता है (चंपा०)। दे०—खान। टि०—आजकल ऊख का कोल्हू तेल-कोल्हू-जैसा नहीं होता है, लोहे के तीन सिलिंडरों का बना होता है। (२) मनुष्य के निवास करने का स्थान। (३) कोठरी। [< *गृह, घर (पा०, प्रा०), घर (हिं०, पं०, ल०, अस०, ओ०), घरु (सिं०), घर (गु०, मरा०)। <*ग्वहोरो (भारो०)= आग, गर्मी —टर्नर]

घर करल—(मुहा०)-(१) खूँटा या किसी औजार का अपने स्थान पर स्थिर हो जाना। (२) किसी बीमारी का जल्द नहीं छूटना (चंपा०-१)। (३) घर कर लेना, स्थिर होना। (४) किसी स्त्री का परपुरुष से ब्याह कर लेना (चंपा०)। [घर+करल]

घरगैया—(सं०) घर में पैदा हुई तथा पाली-पोसी हुई गाय (शाहा०-१, भाग०-१)। [घर+गैया]

घरदुआर—(सं०) दे०—घरबार।

घरबार—(सं०) गृहस्थी, परिवार। [घर+बार <*गृह+द्वार वा <*गृह-परिवार, घरबार (हिं०, पं०), घर्वार (ने०), घरबारु (सि०), घरबार (गु०), घरबार (मरा०)]

घरबारी—(सं०) (१) गाँव के पास की उपजाऊ भूमि (भाग०-१)। दे०—गोएँड़। (२) घर में रहनेवाला गृहस्थ, न कि संन्यासी। (३) घरबार का कार्य। [घर+बारी <*गृहवाटिका (?), गृह+वार]

घरमुँहा—(वि०) घर की ओर तेजी से आने-वाला बैल, गाय आदि पशु (चंपा०-१, भाग०)। [घर+मुहाँ <*गृहमुख]

घाँटी—(सं०) मवेशी की गर्दन में बाँधी जाने-वाली घंटी (चंपा०-१, भाग०-१)। [<घण्टी, <घण्टिका (संस्कृ०), घंटिआ (प्रा०) घंटी, (हिं०), घौंड़ो (ने०), घानो (कुमा०) घंडा (पं०), घंड (ल०), घंडो (सिं०) घाँट (मरा०)]


घाँटी

घाइ—(सं०) हेंगा या चौकी के निचले भाग में ढेलों को चूर्ण करने के लिए बनाया गया लंबा गड्ढा (द० भाग०, भाग०-१)। दे०—घघरी। [घाइ <खाई <*खात (?)]

घाघ—(सं०)-(१) पूर्वकाल का प्रसिद्ध भविष्य-दर्शी कवि। (२) किसी कार्य में अति निपुण व्यक्ति।

घाट—(सं०)-(१) नदी, तालाब आदि का वह स्थान, जहाँ से मनुष्य या जानवर पैदल या नाव आदि से पार करते हैं अथवा जहाँ से व्यापार की वस्तुएँ पार की जाती हैं अथवा स्नान करने तथा कपड़ा धोने का स्थान। (२) हल, हेंगा आदि में बनाया गया खड्ढा (पट०-४) (वि०) वजन में कम (चंपा०)। [घट्ट (संस्कृ०), घट्ट (प्रा०), गाठ (कश्म०), घाट (हिं०, कुमा०, ने०, पं०, अस०, बं, ओ०), घाटु (सि०), घाट (गु०, मरा०), संभ०—<घाटा (संस्कृ०),—टर्नर]

घात—(सं०)-(१) चतुराई और गुप्त रूप से किसी वस्तु की प्राप्ति का प्रयास। इसका प्रयोग शत्रुता, ईर्ष्या और कभी-कभी उचित स्पर्धा में भी होता है। घात लगावल, घात में बैठल (मुहा०)=किसी वस्तु अथवा सफलता की प्राप्ति के लिए अवसर की प्रतीक्षा करना, ताक में बैठना। [घात]

घात में बैठल—(मुहा०) दे०—घात।

घात लगावल—(मुहा०) दे०—घात।

घान, घानि—(सं०)। दे०—घानी।

घानी—(सं०)-(१) ऊख की काटी हुई टुकड़ियों का वह परिमाण, जो कोल्हू में एक बार में पेरा जा सके। (२) कोल्हू, जाँता आदि में एक बार दिया जानेवाला अन्न का परिमाण (बिहा०, आज०)। [घान, घाटन (संस्कृ०), घायण (प्रा०), घानी (हिं०), घान् (ने०), घानी (बं०)=तेल का कोल्हू]

घाम—(सं०) (१) धूप। (२) शरीर से निकला हुआ पसीना (भाग०-१)। [काम< *कर्म]

घाव—(सं०) मनुष्य या पशु-पक्षी के शरीर में उत्पन्न व्रण अथवा शस्त्र से लगा आघात। [< *घात (संस्कृ०), घात (पा०), घाव्र (प्रा०), घाव (हिं०), घाउ (ने०), घाउ (कुमा०), घा (असा०, बं०, ओ०), का, घाउ (पं०), गाउ (सि०), घा, घाव (गु०), घाव, घाय (मरा०)]

घास—(सं०) तृण। खेत में अनाज के अलावा स्वयं उत्पन्न होनेवाले दूसरे पौधे। पर्या०—घासपात, दुभदाँदर (उ०-प०), धू (मै०), तिरिण (पट०-४, मग०-५)। [घास (संस्कृ०), घास (पा०, प्रा०), घास (हिं०), घाँस (ने०), खस (रोमा०), घास (दरदी), गस (कश्म०), गास (प० पहा०), घास (कुमा०), घाँह (असा०), घास (बं०), घास (ओ०), घाह (पं०, ल०), गाहु (सि०), कास (गु०), कास (मरा०)]

घिउड़ा—(सं०)-(चंपा०)। दे०—घिउरा, घिउरा।

घिउरा—(सं०) एक बरसाती तरकारी, जो लता में फलती है और आकार में लंबी होती है (चंपा०)। पर्या०—घिउड़ा (चंपा०), नेनुआँ, तरोई, परोर, परोल (गं० द०); घेरा (दर०)।

घिअहवा—(सं०) वह आम जिसके खाने में घी के जैसा स्वाद हो (पट०-१)। पर्या०—घिआही (मग०-५), घिउआ (चंपा०)। (वि०) घी-जैसा स्वादवाली वस्तु। [घिअ+हवा (प्र०) < *घृत]

घिआही—(सं०)-(मग०-५)। दे०—घिअहवा।

घिआही कदुआ—(सं०) वह कद्दू, जिसका स्वाद घी-जैसा हो और जो काफी चिकना हो (पट०-१, पट०-४, मग०-५)। [घिआ+ही (प्र०)+कदुआ]

घिउआ—(सं०)-(चंपा०)—दे०—घिअहवा।

घिउड़ा—(सं०) दे०—घिउरा, घेवड़ा।

घिउरा—(सं०)-(१) एक बरसाती तरकारी, जो लता में फलती है और आकार में लंबी होती है (चंपा०)। पर्या०—घिउड़ा, घिउरा, घिउड़ा (चंपा०)।

घियातरोई—(सं०) दे०—घेवड़ा।

घिरनी—(सं०) खंभे की दो कानियों के बीच पड़ी धुरी पर नाचनेवाली गड़ारी (पट०, चंपा०, गया, द०-प० मै०, द० मुं०, पट०-४, मग०-५)। दे०—घड़ारी। [ग्रहणी, घूर्णन, घूर्णि (?)]

घिवहा—(सं०) गुणानुसार आम का एक भेद (दर०-१)। [घिव+हा (साद० प्र०) < घी < घृत]

घुँघनी—(सं०)-(१) मड़ुए की अधपकी भूनी हुई बाल (गं० द०)। दे०—होरहा। (२) चना, मटर या किसी अन्न को भिगोकर तथा तेल या घी में तलकर बनाया गया भोज्य पदार्थ। [कुँ+कनी < *घृत+कीर्ण < √घृ (क्षरणदीप्त्यो) (?)]

घुंडी—(सं०)-(१) लकड़ी का वह गहरा बरतन, जिसमें ढेंकी के मूसल से धान कूटा जाता है (पट०)। दे०—ओखरी। (२) मवेशियों के बाँधने की रस्सी या कड़े। (३) जोशन आदि गहनों में छोर पर बनी हुई गोल, नोकदार गाँठ। [मिला०—कण्डिनी=ओखर, कण्डिन्युदूखलम्]

घुच्चा—(सं०) फल, अनाज आदि फलियों का गुच्छा। [गुच्छ]

घुनल—(क्रि०) किसी वस्तु में घुन लगना। पर्या०—घुनाएल। (वि०) घुन लगा हुआ (शाहा०-१, भाग०-१)। पर्या०—घुनाएल (चंपा०)। [घुन+ल (प्र०) < घुन < घुण]

घुनाएल—(क्रि०)-(चंपा०)। दे०—घुनल।

घुमाव—(सं०)-(१) जलप्रवाह के मार्ग का मोड़ (चंपा०, उ० पू० मै०, भाग०-१)। दे०—मोरानी। (२) खेत की मेंड़ का मोड़। (३) हेंगा या हल की जोत का मोड़। (४) रास्ते आदि का मोड़। [< √घूर्ण (संस्कृ०), घुम्म (प्रा०), घूमना (हिं०)]

घुमावल—(क्रि०) घूमल क्रि० का प्रे०। घुमाना, गाड़ी-हल के बैल आदि को एक तरफ घुमाना। [< घूर्ण (=घूर्णयति ?) (संस्कृ०), घुम्म (प्रा०), घुमाना (हिं०), घुमउणा (पं०), घुमाइणु (सि०)]

घुरकट्टा—(सं०) ऊख की खड़ी फसल को काटनेवाला (द० भाग०)। दे०—अँगेड़ीहा। पर्या०—खुटकट्टा (पट०-४, मग०-५, भाग०-१)। [घुर+कट्टा < घूर < कूरा < कूट + कट्टा < √कृत्]

घुरघुरा—(सं०)-(१) एक कीड़ा-विशेष। (२) एक बीमारी-विशेष (कंठमाला)-(शाहा०-१, पट०-४, मग०-५, भाग०-१)। [घुर्घुर]

घुरनी—(सं०) खंभे की दो कानियों के बीच की धुरी पर नाचनेवाली घिरनी (पट०)। दे०—घड़ारी। [ग्रहणी, घूर्णि (?)]

घुरी—(सं०) दौनी की वह रस्सी, जिसके द्वारा प्रधान रस्सी मेंह में बाँधी जाती है (पट०, गया)। पर्या०—मेंहौरी (पट०, गया, पट०-४, मग०-५), डोँड़ा (द० भाग०)। [देशी, मिला०—ग्रन्थि > घुंडी]

घुरौड़ा—(सं०)-(पट०-४)। दे०—घूर।

घुलल—(क्रि०)-(१) तरल पदार्थ में किसी दूसरी वस्तु का मिलना। (२) आम आदि फलों का पककर मुलायम होना। (वि०) मिला हुआ, घुला हुआ। [घुल+ल (प्र०)]

घुसावल—(वि०) घुसल क्रि० का प्रे०—घुसाना, प्रवेश कराना।

घूआ—(सं०) भुट्टे के ऊपर का केशों-जैसा गुच्छा (द०-प० शाहा०)। दे०—मूआ।

पर्या०—मोच (भाग०-१), मोचा (चंपा०)। (वि०) वह व्यक्ति, जो दूसरे की बातें सुनकर पी जाया करता है, कुछ बोलता नहीं (पट०-४)।

घून—(सं०) अन्न और लकड़ी को खानेवाला एक कीड़ा। [घुण]

घूनल—(क्रि०) दे०—घुनल।

घूमल—(क्रि०) घूमना, चक्कर काटना, गाड़ी या हल के बैल को एक तरफ घुमाना। [< √घूर्ण (?), घुम्म (प्रा०), घूमना (हिं०), घुम्नु (ने०), घुम्नो (कुमा०), घुमाइबा (असा०), घुमा (बं०), घुमाइबा (ओ०), घुम्मणा (पं०)]

घूर—(सं०)-(१) भूमि को खोदकर बनाया गया छोटा गड़ा, जिसमें लकड़ी, घास, सूखा गोबर आदि को जलाकर जाड़े में ग्रामीण लोग आग तापते हैं। पर्या०—कौर, कौड़ (प०), घुरौड़ा (पट०-४)। लोको०—"घर जरय हय, घूर बुताव"—किसी का घर जल रहा हो और वह घूर बुझावे, अर्थात् बड़ी विपत्ति के प्रति लापरवाह होकर छोटे खतरे को दूर करने के लिए सचेष्टता दिखलाना। (२) खाद का गड़ा (बिह०, आज०)। पर्या०—खाद के गड़हा, खादर के गड़हा। (३) खाद (गं० द०-प०)। दे०—खादर। [कूट]

घूर काटल—(क्रि०) ऊख काटना (द० भाग०, भाग०-१)। दे०—छोलल। [घूर+काटल (प्र०)]

घूरी—(सं०) कारखाने में गन्ने को काटकर छोटा करने का औजार (सा०-१)। पर्या०—बधरिया (पट०-४)। [देशी]

घूस—(सं०) किसी वस्तु की प्राप्ति अथवा कार्य की सफलता के लिए संबद्ध व्यक्ति को अनुचित तौर पर दिया जानेवाला द्रव्य। [गुह्याशय (हिं० श० सा०)]

घूसल—(क्रि०) घुसना, प्रवेश करना, किसी नुकीली चीज का अंदर जाना। [घूस+ल (प्र०), घूस, घूँसना (हिं०), घुसणा (पं०), घुस्नु (ने०), घुसवुँ (गु०), घुसणे (मरा०)]

घेंच—(सं०)-(१) जल में उपजनेवाला एक प्रकार का पौधा, जिसका उजला डंठल गरीब लोग खाते हैं। (२) गरदन। [देशी]

घेकुआर—(सं०) एक प्रसिद्ध औषधीय पौधा, घृतकुमारी। [घे+कुआर<घि+कुमार <*घृतकुमारी (संस्कृ०), घीकुमार (हि०)]

घेरल—(क्रि०) घेरना, बाड़ करना, किसी वस्तु की रक्षा के लिए चारों ओर बाड़ लगाना। [घेर+ल (प्र०)<घेर, घेरना (हि०), घेरिबा (ओ०), घेरा (बँ०), घेर (असo)=परिस्थिति, घेरणा (पं०), घेरणु (सि०), घेरवुँ (गु०), घरणे (मरा०), संभ०<*किरति—टर्नर]

घेरा—(सं०)-(१) नेवारी या जलावन आदि रखने के लिए बनाया हुआ घेरा (चंपा०, मुं०): दे०—घेरान। (२) पशुओं के रहने की जगह, गोष्ठ। दे०—बथान। (३) पशुओं को रोककर रखने के लिए बनाया गया घेरा (मुं०)। दे०—घेरान। (४) नदी, नहर आदि में पानी को ऊपर उठाने के लिए धारा के इस पार से उस पार तक बाँधा गया बाँध (उ०-प०, भाग०-१)। दे०—बाँध। (५) खेत, फुलवारी या घास के खेत को सुरक्षित रखने के लिए बाँस, दीवाल आदि से घिरा स्थान (पट०-४, मग०-५)। [घेरल (बिहा०), घेरना (हि०) <ग्रह<√ग्रह] (६) (बर०)। दे०—घिउरा।

घेरान—(सं०)-(१) नेवारी या जलावन आदि के रखने के लिए बनाया हुआ घेरा (प० मुं०, सा०, चंपा०)। पर्या०—घोरान (शाहा०), घेरा, ढाठ (चंपा०, मुं०), ढाठ (पू०), पखठ (प०)। (२) पशुओं को रोककर रखने के लिए बनाया गया घेरा (उ०-प०)। पर्या०—घेरानी (उ०-प०), बारी, बेंढ़ (मुं०), घोरान (गं०-द०), घेरा (मुं०), झांपा (द० मुं०), हिराँत (चंपा०, पट०-४, मग०-५, मुं०-२)। [ग्रहण]

घेरानी—(सं०) पशुओं को रोककर रखने के लिए बनाया गया घेरा (उ०-प०, भाग०-१)। दे०—घेरान। [ग्रहणी]

घेरावल—(क्रि०) घेरल क्रि० का प्रे०। घेराना, बाड़ लगवाना। [घेरा+आवल (प्र०)<घेर, घेराना (हि०), घेरान (बँ०) घेराइबा (ओ०)]

घेवड़ा—(सं०) तरोई की जाति का एक फल, जिसकी तरकारी बनती है। दे०—तरोई। पर्या०—घिउड़ा, घिँउड़ा घिउरा, घिवड़ा, नेनुआ, परोर, परोल (गं० द०), तरोई, घेरा (बर०)। [घे+वरा<घी+वड़ा<घृतपूर (संभाव्य)। घिठड़ा, घिउरा (बिहा०), घेवड़ा, घिया तोरई, बड़ी तोरई, नेनुआ (हि०), महाकोशातकी, हस्तिघोषा (संस्कृ०), हस्तिघोषा, घुँघुल, दुंदुल, घुंघुल (बँ०), घीसाले, घीसाला (मरा०), गलका, घीसोड़ा (गु०), आरहिरे, तुप्पिरी (क०), एनुगबीर, पुछावीरकाया (ते०), तरउ (ओ०), खियार (फा०)]

घैला—(सं०)-(१) वह बरतन, जिसमें ऊख के रस को उबालने के पहले इकट्ठा किया जाता है (उ०-पू० मुं०, भाग०-१)। दे०—नाद। (२) कुएँ से पानी निकालने या रखने के लिए मिट्टी का बना घड़ा (पट०-४, मग०-५, चंपा०, मुं०-२)। दे०—घड़ला। [<*घट, घटी, <*घटीर]


घैला

घोँघर—(वि०) आगे की ओर निकलकर घूमे हुए सींगोंवाला बैल (गया, भाग०-१)। दे०—घोँचा। [देशी—मिला०—घोंघ=मध्यवर्ती अवकाश (मो० वि० डि०), घुँघराल (हि०), <घुमटना <घूर्णन]

घोँघरा—(वि०)-(द० मुं०, भाग०-१, पट०)। दे०—घोँघर।

घोँघरी—(सं०) चने और ज्वार की बाल में लगनेवाला एक कीड़ा। दे०—घँघरी। [देशी, घोंघा (हि०)]

घोँघा—(सं०)-(१) वर्षा से बचने के लिए ताड़ के पत्तों की बुनी हुई एक प्रकार की बरसाती, जो सिर से लटकती हुई होती है (गया, मग०-५) [घोंघा <घोंघा <गुण्ठ (?)] (२) शंख-जाति का एक छोटा जलजन्तु, जिसके बाह्यकोष से चूना बनता है (भाग०-१, पट०-४, मग०-५, चंपा०, मुं०-२)। पर्या०—एठा, ऐंठा। (३) (सं०)-(पू० मुं०)। दे०—घोंचा। [घोंघ (मो० वि० डि०)]

घोंघाड़ी, घोंघारी—(सं०) छोटी जाति का घोंघा।

घोँघी—(सं०) वर्षा से कपड़ा बचाने के लिए कंबल के ऊपर के छोर को बाँधकर बनाई गई ओढ़नी (द०-प० शाहा०, आज०) दे०—घोघी। [घोंघी <घोघ<गुण्ठन (?)]


घोँघी

घोंचवा—(वि०) आगे की ओर निकलकर घूमे हुए सींगोंवाला बैल (शाहा०)। दे०—घोंचा। [घोंच+वा (गुच्छ)]

घोंचा—(वि०) आगे की ओर निकलकर घूमे हुए सींगोंवाला बैल (गं० उ०, पट०, द० भाग०, भाग०-१)। पर्या०—घोँघा (पू० मुं०), घोँचवा (शाहा०), घो घर (गया), घोँगरा (पट०), घोंघरा (द० मुं०, पट०-४)। (२) (सं०) दूध दुहने के लिए मिट्टी की बड़ी कटिया (शाहा०)। [गुच्छ]

घोँची—(वि०) आगे को ओर मुड़े सींगोंवाला बैल या दूसरा मवेशी (बिहा०, आज०)। यह उत्तम श्रेणी का माना जाता है।—'घोंची देखे ओहि पार, थैली खोले येहि पार।'—घाघ =घोंची बैल को उस पार देखकर नदी के इसी पार से (रुपये की) थैली खोल देनी चाहिए। [देशी, मिला०—कुंचित (=घूमा हुआ)]

घोँपल—(क्रि०) चुभाना, घुसेड़ना (मुं०-१, पट०-४, मग०-५, चंपा०, मुं०-२)। [<√क्षुभ् (संचलने), √क्षुप् (गतौ)]

घोँपा—(वि०) (१)-(पू० मुं०)। दे०—घोँचा। (२) बाजरे का रूईदार फूल (द०-प० शाहा०)। पर्या०—जावा (द० मुं०), फुलको (द० भाग०)। [क्षुप]

घोघलो—(सं०) बैलगाड़ी पर रखने के लिए बाँस, चटाई आदि का बना पर्दा (मुं०-१, भाग०-१)। [घोघ+लो <गुण्ठन]

घोघसा—(सं०) दाना-सहित भूसा (चंपा०-१)। [देशी]

घोघाड़ी—(सं०) एक प्रकार का धान (चंपा०-१)। [देशी]

घोघी—(सं०)-(१)-(चंपा०, भाग०-१, संता०) दे०—घोँघी। पर्या०—घोँघी (द०-प० शाहा०), घुक्की (पट०, उ०-पू० मुं०)। [घो+ई <घोघ <गुंठन] (२) ताड़ के पत्ते या कंबल आदि की बनी लंबी बरसाती या ओढ़नी (मुं०-१, भाग०-१)। [घोड़+ई]

घोड़जई—(सं०) घोड़े के खाने का एक चारा, जो जई से मिलता-जुलता होता है (पट०-१)। पर्या०—जई। [घोड़+जई]

घोड़सीन—(सं०) वह बैल, जिसका सीना घोड़े की तरह हो (पट०-१, भाग०-१, पट०-४, मग०-५)। [घोड़+सीन <घोड़ा+सीना]

घोड़ा—(सं०) सवारी करने का एक प्रसिद्ध चौपाया मवेशी। [घोड़ा<*घोटक (संस्कृ०), घोटक (पा०), घोड़ऊ (प्रा०), घोड़ा (हि०, ने०, पं०, बँ०, ओ०), घोड़ो (सि०), घोड़ो (गु०), घोड़ा (मरा०)]

घोरई—(सं०) मोट के मुँह के फैले और खुले रहने के लिए, आरपार कड़ियों से बँधी हुई टेढ़ी लकड़ी। पर्या०—घोरानी। [देशी]

घोरल—(क्रि०)-(१) घोरना, मिलाना। जलादि द्रव पदार्थ से किसी वस्तु को तरल करना। (२) खटिया आदि को रस्सी से बुनना। [घोर+ल (प्र०) <घोर <*घोल (संस्कृ०), <*घोट <√घुट् (परिवर्तने), √घृ (क्षरणे, सेके छादने)]

घोरान—(सं०) नेवारी या जलावन आदि रखने के लिए बनाया हुआ घेरा (शाहा०, संता०)। दे०—घेरान। (२) पशुओं को रोककर रखने के लिए बनाया गया घेरा (गं० द०)। दे०—घेरान। (३) भूसा आदि रखने के लिए चाँग (चंगेरा) जैसा बड़ा टोकरा (द० भाग०)। [ग्रहण

घोरानी—(सं०)। दे०—घोरई।

घौंका—(सं०) एक प्रकार का साग (बर०-१, मग०-५)। [देशी]

घौद—(सं०) (१) फलों का गुच्छा (चंपा०-१, भाग०-१, पट०-४, मग०-५, मुं०-२)। (२) वह ताड़, जिससे साल-भर ताड़ी निकले। (३) केलों का गुच्छा। [गुत्स]


घौद

घौर—(सं०)-(१) वह ताड़ का पेड़, जिससे बरसात में ताड़ी निकलती है। [देशी, मिला० √घृ (क्षरणे-चूना)] (२) फलों का गुच्छा (चंपा०-१)। (३) केले के फल का पूरा गुच्छा। [गुत्स]

शुद्धि-पत्र

पृष्ठ	कॉलम	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१	१	१९	कँकरीली	ककड़ीली
१	१	२१	दे० अँकड़ाह (बिहा० आज०)	(बिहा०, आज०)। दे०-अँकड़ाह
१	२-३	२	इँकड़ी, (३) अनाज में पाया जानेवाला छोटा कंकड़।	अनाज में पाया जानेवाला छोटा कंकड़। पर्या०—इँकड़ी।
१	२	२७	[अँकर+ई०< अँकरा, दे०-अँकटा]	[अँकर+ई(प्र०)< अँकरा]
२	१	१६ के बाद	..	अंकुर (सं०)-(भाग०-१) दे०—अँकुदा।
२	१	२६ के बाद	..	अंकुश (सं०) दे०—अँकुशी-२।
२	२	३७	अच्छित्] [सुश्रा	अच्छित्। सुश्रा
३	१	१८	अँगवँग	अँगँवुँग
३	१	३२	अँगरवाह	अँगर्वाह
३	१	३४	अँगार	अँगर
३	२	३२	[अग्रकांड-वा, (अँगेड़ी+हा)]	[अँगेड़ी+हा< अग्रकाड+वाह]
३	२	३७	द० मु०	द० मुँ०
४	१	१८	(चंपा०—मुँ १०—१,	[चंपा०—१, मुँ०—१,
४	२	११	दे०—अँजोरिया [अँजोरिया	[अँजोरिया,
५	२	२५	रेंडी	रेंड़ी।
५	२	३७	अँधकी रात्रि	अँधकी = रात्रि
५	२	३९	गडाढार	गंडाढार।
५	२	२५	बैलो	बैलों
६	१	२९	ढार ढाल	ढार< ढाल
६	१	३९	उष	उष्
६	२	२	पट०—४)	पट०—४)।
६	२	१२	ई >	ई<
६	१	१६	छराही	पया०—छराही
६	२	२५	(भाग—१) दे०—पाँजा	(भाग०—१)। दे०—पाँजा।
७	१	३	करता है। (द-०पू० मै०)	करता है (द०-पू० मै०)।
७	१	२१	(अ+काल)	(अ+खाल)
७	१	३६	उत्खनन उत्खनन	उत्खनन
७	२	४०	दे०—अखेना	दे०-अखैना

पृष्ठ	कॉलम	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
८	१	६	(आ०)	(आज०)
७	२	२	(द० गुँ)	(द० मुँ)
७	१	१४	(द० भाग०) दे०–फाजिल	(द० भाग०)। दे०–फाजिल।
७	१	३५	(१)	(?)
७	१	३९	(१)	(?)
७	१	१९	साओख	साओँख
७	१	२०	(प०), कनियाँ	(प०), कमियईं, कमिया
७	१	२१	लगुआजन	लगुआजन (सामा०) =
१०	१	११	अगवलि	अग्रवलि
१०	२	२९	वार। अगोरनिहार	वार।
११	१	२	अग्रौढ़	अग्रोढ़
११	१	१२	अग्रौढ़	अग्रोढ़
११	२	६	बर्तन:—	बरतन
११	२	१५	(स०)	(सं०)
११	२	२६	की	का
११	२	२६	(मुं०—१)	—(मुँ०—१)
१२	१	१६	ओड़पुष्प	ओड्पुष्प
१२	१	२१	अड़	अड
१२	१	२५	(अढ़ाई) अद्र्ध+द्वि	अढ़ाई (=अद्र्ध+द्वि)
१३	२	६	अघ	[अघ
१३	२	१०	अघ	[अघ
१४	२	१४	(चरवाहा)	(चर+वाहा)
१५	२	२९	छुटहा	छुटहा<
१६	१	२७	अब्बी [अ+बई	अब्बी। [अ+बई<
१६	१	२८	बीज,	बीज<
१६	२	९	[अबवाब]	[अबवाब
१७	१	१२	(बं)	(बँ)
१७	२	अड़तीसवीं पंक्ति उनचालीसवीं पंक्ति के बाद रहेगी।		
१९	१	३५	ऊर उपठा	ऊपर उठा
१९	२	१४	[अ+गला]	[अ+लगा]
२०	२	१४	दानवाली	दानेवाली
२२	२	१२	अँदाज	अंदाज
२२	२	१५	वृत्त	वृत्

पृष्ठ	कॉलम	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२२	२	२५	[मिला०	; मिला०
२३	१	३६	(बि०,	(बिह०,
२३	२	२८	गाँड़ासी	गँड़ासी
२३	२	३६	अर्धद्वि	अर्धद्वि
२४	२	१	(स०)	(सं०)
२५	१	२८	लोको	लोको०
२६	१	२२	है। (पर० १)	है (पट०—१)।
२६	१	३४	इकट	[इकट
२६	१	३५	(मो० वि० डि०)।	(मो० वि० डि०)]
२६	१	३९	सरकंडा]	सरकंडा
२६	२	१७	(अ०) [	(अ०)]
२७	१	७	(म०)	(मगा०),
२७	१	३७	(प्रा०)	(पा०)
२७	२	५	(प्रा०)	(पा०)
२८	१	१२	निला०	मिला०
२८	१	१३	√क्रम	√क्रम्
३०	१	११	] उच	[उच
३०	२	३२	गबैन	बैगन
३३	१	३	(स०)	(सं०)
३३	२	२०	का—	का
३४	१	१४	हुआ (सं०);	हुआ। (सं०)
३४	१	३१	जानेवाली की	जानेवाली
३४	१	३२	धारावाहिक	की धारावाहिक
३५	१	१२	(?)],	(?)]
३५	२	१	मि०	मिज़ा०
३७	१	१५	[केतारी	केतारी
४२	२	२१	(शा०–१)	(शाहा०–१)
४२	२	३४	आँकड़।	आँकड़
४३	१	९	(सा०, शाहा०)	(सा०, शाहा०),
४३	२	१७	( ) सरकंडा,	(३) सरकंडा
४३	२	२३	घूंवा	घूँवा
४४	२	३८	कैंता	[कैंता
४४	२	३९	(संस्कृ०)।	(संस्कृ०)]

पृष्ठ	कॉलम	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
४५	२	१२	तम्बाक	तम्बाकू
४५	२	३८	पट०-१-४	पट०-१, पट०-४,
४७	१	२८	गहरी	गहरा
४७	२	७	पर्या	पर्या०
४९	१	२४	करना)	करना
४९	१	२५	हुआ	हुआ)
४९	१	१०	संम०	संभ०
५२	२	९	√कृती कृती	√कृती
५३	१	१	कदबा	[कदबा
५३	२	८	संम०	संभ०
५४	२	छठी पंक्ति के बाद जोड़िए		कनखजूरा (सं०) दे०—कनगोजर।
५४	२	२२	के	का
५४	२	३३	कनवोहा (चंपा०)	कनवाहा (चंपा)।
५५	१	१०	उ० वि०)	(उ० बि०)
५५	१	१५	दे—	दे०
५७	शीर्ष टिप्पणी—कपास—कबुलियत			कपास फुटल—कबूलियत
५७	२	२८	(गं उ०)	(गं० उ०)।
५८	१	६	डाली)।[	डाली)—
५८	१	२५	कास्टेबुलों	कांस्टेबुलों
५८	२	३	ममरिशाल	कर्मारशाल
५८	२	१२	कमरिक	कर्मारक
५८	२	३१	सार०,	सा०,
५८	२	३३	(प्रा०) गड्ढा (हिं)	(प्रा०), गड्ढा (हि०)
५८	२	४०	माथी	माकी
५९	१	८	कर्मन्	<कर्मन्
५९	१	१३	अर्जिता	अर्जित।
५९	१	१८	अगवाड़	अगवड़
६०	२	२०	(विहा०)	(बिहा०)
६०	२	२५	काला	काला।
६१	२	१५	(भिगोना संभ०	भिगाना संभ०
६१	२	४०	(१)-(सं०)	(सं०)-(१)
६२	१	४०	किनारा]	किनारा
६२	२	१४-१५	आज०) [कराह+ई] (२) दे०-कराह (अल्पा०	आज०)। (२) दे०—कराह। [कराह+ई (अल्पा०

पृष्ठ	कॉलम	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
६३	१	२०	विहा०,	बिहा०,
६४	१	३०	(स०)	(सं०)
६५	१	२०	(संकृ०)	(संस्कृ०)
६६	२	१४	रात।	रातल
६६	२	१६	टा	कंटा
६६	२	२५	सी	रस्सी
६६	२	३२	क्रि०)	(क्रि०)
६७	१	२९	घस	घास
६७	२	३४	(स०)	(सं०)
६८	१	३	अश	अंश
६८	१	५	अत	अंत
६८	१	१३	हाँवने	हाँकने
६८	१	२२	जिरा	जिस
६८	१	३४	कदो	कादो
६८	२	१८	तल	ताल
६९	१	६	प·वाह	पकबाह
६९	१	२५	(शहा०)	(शाहां०)
६९	१	३०	घन	घान
७२	२	९	कुँआ	कुँआँ
७६	१	३१	(बं)	(बँ०),
७७	१	२९	का	को
७७	२	३६	पं० खुह, (पं० कं०)	खूह (पं०, ल०),
८०	२	९	√कविक,* √कविका	<कविक, *<कविका
८०	२	२४	कवाला	केवाला
८१	१	९	का	की
८१	१	१२	क+सौर	के+सौर
८२	१	८	(बं)	(बँ),
८२	२	१	काइरी	कोइरी
८३	२	१६	(त्रिहा०)	(बिहा०),
८४	१	३३	(स०)	(सं०)
८६	१	४	(सँ०)	(सं०)
८६	२	३	(स०)	(सं)
८७	१	५	(मुँ०)	(मुँ०-१)।

प्रष्ठ	कॉलम	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
८८	१	८	व्यक्तिमत	व्यक्तिगत
८८	१	१५	(मु०–१,	(मुँ०–१,
८९	१	२८	कौर जाएल	कौरा जाएल
९२	२	३६	मेर्दि०	मेदि०
९३	२	२३	खत्रा	खत्ता
९३	२	२४	खाद्	खाद
९४	१	३३	प्रा०),	पा०),
९५	२	२१	झाड़	झाड़ू
९६	२	३२	बाँस	वाँस
९७	१	१९	वैसन	वैसन
९७	१	२०	तम्बाकू	तम्बाकू]
९७	२	३०	का बन	का
१००	शीर्ष टिप्पणी—खाँड़ी			खाँड़ो
१०१	१	२०	(प्रा०)	(पा०)
१०१	२	१५	विहा०	ब्रिहा०
१०२	२	१८	जमीन । चमड़ा∠	जमीन ।
१०२	२	१६	❀ खल्ल >	∠❀खल्ल
१०३	शीर्ष टिप्पणी—खिचड़ी खिल्लत			खाहिन-खिल्लत
१०३	"	२१	< सीद√	∠सीद
१०३	२	६	एफ	एक
१०३	२	१६	कटल<	कटल
१०४	१	३५	खील	[खील
१०६	१	२५	आट	आटे
१०७	१	१६	ठीका]	ठीका
१०७	२	२५	मिट्टी	मिट्ठी
१०७	२	१६	,नः	पुनः
१०७	२	१६	(अकुर)	(अंकुर)
१०८	१	१८	खेखला	खेखशा
१०६	२	२१	(व०)	(बँ०)
१११	१	२५	१)	(१)
१११	१	२८	(मु०-१)	(मुँ०—१)।
११२	१	६	मछली।	मछलो]
११२	२	७	लने	लेने

प्रष्ठ	कॉलम	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
११२	२	२८	त्रि०	क्रि०
११२	२	२६	करवाना	करवाना।
११३	१	१७	गँडा	गंडा
११३	१	२०	गँडाढार	गंडाढार
११४	१	४	काब ना	का बना
११४	१	२३	(शाहा०—१)	(शाहा०)।
११५	१	३१	डिब्बी,	डिम्भी।
११५	२	१९	बीचों	बीचो
११६	१	२	(मो० वि० डि०)	(मो० त्रि० डि०)]
११७	१	११	[(१)	(१)
११७	२	२	गोश्रा	पर्या०—गोश्रा
११७	२	४	पर्या०—गदही	गदही
११७	२	३५	गु०)	गु०)]
११८	१	६	(मुहा०)	(मुहा०) =
११८	१	३६	(मुहा०)	(मुहा०) =
११८	२	८	पत्र मिला०	मिला०—
११८	२	१०	या	।
११८	२	१६	चंपा० । देव	(चंपा०) । दे०
११८	२	२०	लए	एल
११९	१	२४	बीचों-बीच	बीचो-बीच
११९	१	३०	घास-फूस । गरदेल,	घास । गरदेल
११९	१	३२	गरदेल	गर निकालना।
१२०	१	६	पू मै०)	पू० मै०),
१२०	१	२२	(देशी	(देशी)
१२०	१	२६	बीचोंबीच	बीचो-बीच
१२०	१	२८	गर	[गर
१२०	१	३१	(गर	[गर
१२०	१	३२	(आज०)	(आज०)]
१२०	२	२३	(नेपा०)	(नेपा०)]
१२०	२	२७	√गल +	√गल ।
१२०	२	२८	पिच् गालयति	गालयति
१२०	२	२८	गाले	गालेई,
१२१	१	२१	जमींदारों	जमींदारी

पृष्ठ	कॉलम	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१२२	२	३८	(दँ०),	(बँ०),
१२४	१	२	(सांख्य)	(संस्कृ०)
१२६	२	२५	(२)—(वि०)	(२)—दे०—गुमल (वि०)
१२६	२	२५	हुई (गुमल)	हुई ।
१२८	१	१५	√ईर	√ईर्
१२८	१	२६	√ईर	√ईर्
१२८	२	४	लगी हुई हुई	लगी हुई
१२८	२	१७	चूर्ण	चूर्ण]
१३१	२	११	(पं०)	(प०)
१३१	२	३५	√वृ]	√वृ
१३३	१	२५	गोग	गोट
१३३	१	३१	(सिं०)	(सि०) =
१३३	१	३२	(गु०)	(गु०) =
१३३	१	३३	(मरा०)	(मरा०) =
१३३	२	१९	गोटी	गोटो
१३३	२	३१	(१)	(?)
१३४	२	३३	जसे	जैसे
१३५	२	१	(चंपा० (१) ।	(चंपा०—१) । [
१३५	२	१४	(हिं०, प०),	(हिं०, पं०),
१३७	१	१५	केवाल +	केवाल <
१३८	२	४	फेंकना	फेंकन
१३९	१	३१	लेल =	—लेल =
१३९	२	१६	गौरिया	गौरिया
१४०	१	२६	घुटना	घटना
१४०	२	१५	लडो	घडो
१४२	१	२४	का,	घा,
१४२	२	२४	किव	घिव
१४२	२	२४	<की	<घी
१४४	१	२	<कि	<घि
१४४	१	३	कीकुमार	घीकुमार
१४४	१	९	घरणो	घेरणो
१४४	१	६	किरति	घिरती
१४४	१	२७	पखठ	परवठ
१४४	१	३८	(बँ०)	(बँ०),

कृषि-कोश

सम्पादक

डॉ० विश्वनाथप्रसाद

अनुसन्धान-सहायक

श्री श्रुतिदेव शास्त्री : श्री राधावल्लभ शर्मा



बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्

पटना-४